BCM-101

# संगठन एवं प्रबन्ध

# ORGANIZATION & MANAGEMENT


## उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

विश्वविद्यालय मार्ग तीनपानी बाई पास, ट्रांसपोर्ट नगर के पीछे, हल्द्वानी- 263139

फोन नं: (05946)-261122, 261123, 286055

टोल फ्री नं.: 1800 180 4025

फैक्स नं.: (05946)-264232, ई-मेल: info@uou.ac.in, som@uou.ac.in

http://www.uou.ac.in

www.blogsomcuou.wordpress.com

## अध्ययन मण्डल

**प्रोफेसर नागेश्वर राव**
**कुलपति** ,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

**प्रोफेसर आर सी मिश्र** (**सयोंजक**)
**निदेशक**, प्रबन्ध अध्ययन एवं वाणिज्य विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

**प्रोफेसर बाल कृष्ण बाली** (**सेवानिवृत्त**)
वाणिज्य विभाग,
एच पी यू, शिमला, हि. प्र.

**प्रोफेसर कृष्ण कुमार अग्रवाल**
प्रबन्ध अध्ययन विभाग,
एम जी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

**डॉ. हेम शंकर बाजपेई**,
वाणिज्य विभाग,
डी डी यू गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

**डॉ. अभय जैन,**
वाणिज्य विभाग,
श्री राम कॉलेज ऑफ़ कॉमर्स , नई दिल्ली

**डॉ. गगन सिंह**
वाणिज्य विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

**डॉ. मंजरी अग्रवाल**
प्रबन्ध अध्ययन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

**डॉ. सुमित प्रसाद**
प्रबन्ध अध्ययन विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

## पाठयक्रम समन्वयक

***डॉ. गगन सिंह*** , वाणिज्य विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

| **इकाई लेखन** | **इकाई संख्या** |
|---|---|
| **प्रोफेसर महेश गर्ग,** हरियाणा स्कूल ऑफ़ बिज़नस , जी जे यूनिवर्सिटी ऑफ़ साइंस एंड टेक्नोलॉजी, हिसार | 1- 6 |
| **ओम दीप गुप्ता,** प्रबन्ध अध्ययन विभाग, आई एम एस, देहरादून | 7-10 |
| **डॉ. एन. एल. शर्मा, (सेवानिवृत्त), एम जे पी** रूहेलखंड विश्वविद्यालय, रूहेलखंड | 11-15 |

## संपादन

***डॉ. गगन सिंह***,
वाणिज्य विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

## अनुवाद

| | |
|---|---|
| **डॉ. श्रीश कुमार तिवारी,** इलाहाबाद डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद | 1-2, 5-15 |
| ***डॉ. गगन सिंह*** , वाणिज्य विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी | 3-4 |

कॉपीराइट : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
प्रकाशन वर्ष : **2017**

आई एस बी एन : BCM-101-1(001675)
**Published by : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल – 263139**
**Printed at : Mittal Enterprises, Delhi**
सर्वाधिकार सुरक्षित l इस कार्य का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है ।

# बी सी एम -101 संगठन एवं प्रबन्ध

## BCM-101 ORGANISATION AND MANAGEMENT

**खण्ड-1 प्रबन्ध एवं नियोजन की संकल्पना (Concept of Management and Planning)**

इकाई-1 प्रबन्ध की प्रकृति (Nature of Management)

इकाई-2 प्रबन्ध के सिद्धांत, कार्य और परिकल्पना (Principles, Functions and Theories of Management )

इकाई-3 नियोजन- इसकी प्रकृति, घटक व प्रक्रिया (Planning-Its Nature, Components and Process)

**खण्ड-2 संगठन और अधिकारों का प्रत्यायोजन (Organization and Delegation of Authority)**

इकाई-4 संगठन –अवधारणा, प्रक्रिया और प्रकार Organization-Concept, Process and Types)

इकाई-5 संगठन की संरचना (Organization Structures)

इकाई-6 अधिकारों का प्रत्यायोजन व विकेन्द्रीयकरण (Delegation of Authority & Decentralization)

**खण्ड-3 निर्णयन और सम्प्रेषण (Decision Making and Communication)**

इकाई-7 निर्णयन (Decision Making)

इकाई-8 स्टाफिंग एवं निर्देशन (Staffing & Direction)

इकाई-9 समन्वय (Co-ordination)

इकाई-10 सम्प्रेषण (Communication)

**खण्ड-4 नेतृत्व, नियंत्रण और पर्यवेक्षण (Leadership, Controlling and Supervision)**

इकाई-11 नेतृत्व (Leadership)

इकाई-12 अभिप्रेरणा (Motivation)

इकाई-13 पर्यवेक्षण (Supervision)

इकाई-14 नियंत्रण एवं नियंत्रण की तकनीकें (Controlling and Techniques of Controlling)

इकाई-15 संगठनात्मक परिवर्तन एवं विकास का प्रबन्ध (Management of Organizational Change and Development)

# इकाई–1 प्रबन्ध की प्रकृति

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 प्रबन्ध की परिभाषा
1.3 प्रबन्ध की विशेषतायें
1.4 प्रबन्ध की प्रकृति
1.5 प्रबन्ध बनाम प्रशासन
1.6 प्रबन्ध स्तर
1.7 प्रबन्धकीय कौशल
1.8 प्रबन्ध एवं उसके कार्य
1.9 प्रबन्ध की महत्ता
1.10 सारांश
1.11 शब्दावली
1.12 बोध प्रश्न
1.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.14 स्वपरख प्रश्न
1.15 सन्दर्भ पुस्तकें

## उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- प्रबन्ध को परिभाषित कर सकें तथा प्रबन्ध की विशेषताओं का वर्णन कर सकें।
- प्रबन्ध की प्रकृति का वर्णन कर सकें।
- प्रबन्ध एवं प्रशासन को समझ सकें।
- प्रबन्धक द्वारा निर्वाहित भूमिका का वर्णन कर सकें।
- प्रबन्ध की महत्ता को जान सकें।

## 1.1 प्रस्तावना

एक व्यवसाय समय के साथ में जटिलताओं के साथ विकसित होता है। इन बढ़ती जटिलताओं के साथ व्यावसाय करना कठिन हो जाता है। प्रबन्ध के अस्तित्व (होने) की आवश्यकता व्यापक रूप से बढ़ी है। प्रबन्ध केवल व्यवसायिक उपक्रमों के लिये ही नहीं वरन् बैंकों, स्कूलों, कॉलेजों, अस्पतालों, होटलों धार्मिक निकायों, सहायतार्थ न्यासों, इत्यादि के लिये भी आवश्यक है। प्रत्येक व्यावसायिक इकाई के अपने कुछ उद्देश्य होते है। ये उद्देश्य कई व्यक्तियों के समन्वयित प्रयास से प्राप्त किये जा सकते है। विभिन्न व्यक्तियों के कार्यों को उद्देश की प्राप्ति हेतु प्रबन्ध की प्रक्रिया द्वारा समन्वयति किया जाता है। प्रबन्ध का कार्य (प्रबन्ध–प्रक्रिया) महज एक बटन दबाना नहीं, उत्तोलक खींचना नहीं, आदेश निर्गत करना ही नहीं, लाभ हानि खाते का परीक्षण नहीं, नियम एवं नियमनों का प्रवर्तन नहीं है, वरन यह निर्धारित करने की शक्ति है कि सम्पूर्ण (सभी) व्यक्तियों के व्यक्तित्व एवं प्रसन्नता का क्या होगा, तथा राष्ट्र के भाग्य जो कि विश्व का निर्माण करते है, निर्माण की शक्ति है। प्रबन्ध मानव के आर्थिक जीवन का बहुमूल्य

पक्ष है जो कि एक संगठित समूह गतिविधि है। इसे वैज्ञानिक विचारों तथा तकनीकी खोंजो से चिन्हित आधुनिक संगठन में अपरिहार्य संस्थान के रूप में विचारित किया जाता है। प्रबन्ध अन्य रूप में उस स्थान पर आवश्यक है जहाँ–जहाँ मानव प्रयास सामूहिक रूप से आवश्कताओं की सन्तुष्टि हेतु कुछ उत्पादक गतिविधियों, व्यवसाय अथवा पेशे द्वारा की जाती है।

यह प्रबन्ध ही है जो मानव की उत्पादक गतिविधियों को सामग्री–संसाधन के समन्वयित प्रयोग के द्वारा नियमित करता है। प्रबन्ध द्वारा प्रदत्त नेतृत्व के अभाव में उत्पादन के संसाधन, संसाधन ही रह जायेंगे तथा कभी भी उत्पादन नहीं बन पायेंगे।

## 1.2 प्रबन्ध की परिभाषा

यद्यपि विषय के रूप में प्रबन्ध आठ दशकों से अधिक प्राचीन है, तथापि प्रबन्ध के विशेषज्ञों एवं पेशेवरों के मध्य इसकी संक्षिप्त परिभाषा के सम्बन्ध में आम सहमति नहीं बन पायी है। वस्तुतः यह समस्त सामाजिक विज्ञानों, यथा मनोविज्ञान, समाज शास्त्र, नृ–विज्ञान, अर्थ शास्त्र, राजनीतिक विज्ञान इत्यादि में इसी प्रकार ही है। अभूतपूर्व एवं विस्मयकारी तकनीकी परिवर्तनों के कारण व्यवसायिक संगठनों के आकार एवं जटिलता में वृद्धि हुई है, जिसके फलस्वरूप प्रबन्ध व्यवहार में परिवर्तन हुये है। प्रबन्ध शैली एवं व्यवहार में परिवर्तनों ने प्रबन्ध विचार (सिद्धान्त) में परिवर्तन को नीत किया है। इसके अलावा प्रबन्ध अंर्तविषयी प्रकृति को प्राप्त कर रहा है, क्योंकि यह व्यवसायिक विज्ञान, परिमाणात्मक तकनीकों, अभियाँत्रिकी एवं प्रोद्योगिकी इत्यादिमें हुये विकासों के कारण कई परिवर्तनों से गुजरा है। चूँकि प्रबन्ध वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन एवं वितरण से सम्बन्ध रखता है, अतः इसके वातावरण, यथा सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक मूल्य उपभोक्ता वरीयता (पसन्द) एवं रूचि, शिक्षा एवं सूचना–विस्फोट, सरकारों का लोकतांत्रिकरण आदि की गत्यात्मकता ने भी इसके सिद्धान्त एवं व्यवहार में परिवर्तन किया है।

फिर भी प्रबन्ध के शिक्षण एवं शोध तथा इसके व्यवहारों (पेशे) में सुधार हेतु प्रबन्ध की परिभाषा आवश्यक है। विभिन्न प्रबन्ध शास्त्रियों ने प्रबन्ध को परिभाषित करने का प्रयास किया है, किन्तु कोई भी प्रबन्ध की परिभाषा सर्वमान्य नहीं है। आइये हम प्रबन्ध की कुछ परिभाषाओं पर विमर्श करें;

**पीटर एफ ड्रकर** :–''प्रबन्ध एक अंग है; अंग का वर्ण एवं परिभाषित केवल उसके कार्यों के द्वारा किया जा सकता है।''

**टैरी के अनुसार** :–प्रबन्ध व्यक्ति नहीं है, यह चलने, पढ़ने तैरने अथवा दौड़ने के समान एक कार्य है। जो व्यक्ति प्रबन्ध का कार्य करते है, वे सदस्यों के रूप में, प्रबन्धन सदस्य अथवा अधिशाषी नेता, पदस्थ किये जा सकते है।

**मैक्सफाटलैण्ड** :–''संकल्पनात्मक, सैद्धांतिक एवं विश्लेषणात्मक उद्देश्यों के लिये प्रबन्ध को उस प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसके द्वारा प्रबन्धक, व्यवस्थित (प्रणालीकृत), समन्वयित एवं सहकारी मानवीय प्रयासों के द्वारा सोद्देश्य संगठन का निर्माण, निर्देशन, अनुरक्षण एवं संचालन करते है।''

**हेराल्ड कूण्टन** :–''प्रबन्ध औपचारिक व्यवस्थित समूहों के द्वारा एवं इसके अन्तर्गत कार्य कराने की कला है।''

**ई0एफ0एल0 ब्रेच** :–''प्रबन्ध कार्य कराने से सम्बन्धित है, इसका प्रधान कार्य उद्यम में चल रही क्रियाओं का नियोजन एवं मार्गदर्शन करना है।''

**कूण्टन एवं ओ डोनल** :–इन्होंने प्रबन्ध को उद्यम में एक ऐसे आन्तरिक वातावरण के निर्माण एवं अनुरक्षण के रूप में परिभाषित किया है, जहाँ समूह में कार्यरत व्यक्ति समूह लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु दक्षतापूर्वक एवं प्रभावी ढ़ंग से कार्य कर सकते हों। यह औपचारिक रूप से व्यवस्थित (गठित) समूह के व्यक्तियों के द्वारा एवं उनके साथ कार्य कराने की कला है।''

**मेरी पार्कर फोले** :–इन्होंने प्रबन्ध को दूसरों से कार्य कराने (लेने) की कला के रूप में परिभाषित किया है।

यह परिभाषा संगठन में प्रबन्धक एवं अन्य कार्मिकों के मध्य मूलभूत अन्तर की ओर ध्यान खींचती है। एक प्रबन्धक वह होता है, जो संगठन के लक्ष्यों में अपना अप्रत्यक्ष योगदान दूसरों के प्रयत्नों को निर्देशित करके देता है, न कि स्वयं कार्य करके। दूसरी ओर वह व्यक्ति जो प्रबन्धक नहीं है, वह सांगठनिक लक्ष्यों मे अपना योगदान प्रत्यक्षतः स्वयं कार्य निष्पादित करके देता है।

हालाँकि कभी–कभी संगठनों में कोई व्यक्ति इन दोनों भूमिकाओं का एक साथ (एक समय में ही) निर्वहन कर सकता है। उदाहरणार्थ एक विक्रय–प्रबन्धक उस समय प्रबन्धकीय कार्य का सम्पादन (निष्पादन) कर रहा होता है, जब वह अपने विक्रय–बल के सदस्यों को संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने को कह रहा होता है, किन्तु जब वह स्वयं विशाल उपभोक्ता समूह से सम्पर्क कर रहा हो एवं विक्रय हेतु सौदेबाजी करता है तो वह अ–प्रबन्धकीय कार्य कर रहा होता है। पहले (पूर्व के) की भूमिका में वह दूसरों के प्रयत्नों को निर्देशित कर रहा होता है तथा संगठन के लक्ष्यों में अप्रत्यक्षतः योगदान कर रहा होता है, जबकि पश्चात भूमिका में वह प्रत्यक्षतः अपने कौशल का प्रयोग संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु कर रहा है।

कुछ हद तक अधिक विस्तार रूप में प्रबन्ध की परिभाषा जार्ज आर0 टैरी ने दी है। उन्होंने प्रबन्ध को परिभाषित करते हुये कहा है, कि ''प्रबन्ध एक पृथक प्रकिया है, जिसमें नियोजन, संगठन, क्रियान्वयन एवं नियंत्रण का समावेश व्यक्तियों एवं अन्य संशासधनों की सहायता से उद्देश्यों के निर्धारण एवं प्राप्ति हेतु किया जाता है।''

इस परिभाषा के अनुसार प्रबन्ध एक प्रक्रिया कार्य करने का व्यवस्थित ढंग है। जिसमें नियोजन, संगठन (प्रेरण), निर्देशन, नियंत्रण ाअिद एक निश्चित अनुक्रम में किये जाते है। नियोजन से आशय प्रबन्धकों द्वारा अपने कार्य के बारे में अग्रिम रूप से सोचने (विचार) से है।

सांगठनीकरण अर्थात प्रबन्धक द्वारा संगठन के मानवीय एवं सामग्री–संसाधनों को समन्वयित करना। प्रेरण (उकसाना) अर्थात प्रबन्धक अधीनस्थों को अभिप्रेरित एवं निर्देशित करते है। नियंत्रण से आशय यह है कि प्रबन्धक यह सुनिश्चित करने का प्रयत्न करते है, कि मानक या योजना से कोई विचलन नहीं है। यदि उनके संगठन का कुछ (कोई) भाग गलत पथ पर है, तो प्रबन्धक स्थिति के उपचार हेतु कार्यवाही करते है। अंततः हम कह सकते है कि प्रबन्ध की विभिन्न परिभाषायें एक दूसरे के विरूद्ध नहीं चलती (होना है) है। प्रबन्ध उन समस्त गतिविधियों (कार्यों) का अन्तिम परिणाम है, जो

- उद्देश्यों, योजनाओं नीतियों तथा कार्यक्रमों का निर्धारण करती है;
- मानव, सामगी, मशीन की सस्ती आपूर्ति सुनिश्चित करती है;
- सुदृढ़ संगठन के माध्यम से इन समस्त संसाधनों को परिचालन में करती (रखती) है;
- कार्यरत व्यक्तियों को अभिप्रेरित एवं निर्देशित करती है;
- उनके निष्पादन को पर्यवेक्षित एवं नियंत्रित करती है;
- नियोक्ता, कर्मचारी एवं समग्र रूप में जनता को अधिकतम समृद्धि एवं प्रसन्नता प्रदान करती है।

## 1.3 प्रबन्ध की विशेषतायें

प्रबन्ध एक विशेष (पृथक) गतिविधि है तथा निम्नलिखित प्रमुख विशेषताओं को धारण करती हैः—

**1. आर्थिक संसाधन :—**

प्रबन्ध, भूमि, श्रम एवं पूँजी के साथ उत्पादन का एक घटक है। जैस—जैसे औद्योगिकीकरण बढ़ा है, प्रबन्धक की आवश्यकता भी वैसे—वैसे बढ़ी है। कुशल प्रबन्ध किसी भी समूह गतिविधि (कार्य) की सफलता हेतु सर्वाधिक महत्वपूर्ण (गुणागुणज्ञ) आगत है, इस प्रकार यह वह बल है जो उत्पादन के अन्य साधनों, यथा श्रम, पूँजी एवं सामग्री को एकत्रित तथा एकीकृत करता है। श्रम, पूँजी एवं सामग्री आगत, स्वयं उत्पादन को सुनिश्चित नहीं कर सकते, समाज द्वारा आवश्यक वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन हेतु वे एक उत्प्रेरक की आवश्कता रखते है। इस प्रकार प्रबन्ध संगठन का एक आवश्यक उपादान है।

**2. लक्ष्यों—मुखी :—**

प्रबन्ध एक उद्देश्यपूर्ण गतिविधि (कार्य) है। यह संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु श्रमिकों (कर्मचारियों) के प्रयत्नों को समन्वयित करता है। संगठन की सफलता इससे मापी जाती है, कि किस मात्रा (स्तर तक) में संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति की गयी है। यह अति—आवश्यक है, कि संगठनात्मक लक्ष्य सु—परिभाषित हों तथा प्रबन्ध के विभिन्न स्तरों द्वारा उचित रूप से समझे गये हों।

**3. विशिष्ट प्रकिया :—**

प्रबन्ध एक विशिष्ट प्रक्रिया है जो नियोजन, सांगठनीकरण, स्टाफिंग, निर्देशन एवं नियंत्रण को सम्मिलित करता है। ये कार्य एक प्रकार गुथे हुये है, कि यह सम्भव नहीं है, कि इन कार्यों के अनुक्रम एवं उनके महत्व का अचूक (ठीक—ठाक) निर्धारण किया जा सके।

**4. सम्पूर्णात्मक (एकीकृत) बल :—**

प्रबन्ध का सार इच्छित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु मानवीय एवं अन्य संसाधनों का एकीकरण है। इन समस्त संसाधनों को उनको उपलब्ध कराना जो प्रबन्ध कर रहे होते है, प्रबन्ध का प्रधान भाव (कार्य) है। प्रबन्धक अपने ज्ञान, अनुभव एवं प्रबन्ध सिद्धान्तों का प्रयोग गैर मानवीय संसाधनों के प्रयोग द्वारा व्यक्तियों के माध्यम से इच्छित परिणाम की प्राप्ति हेतु करता है। प्रबन्धक संगठन के निर्वाध (सुचारू/निविध) संचालन हेतु व्यक्तिगत लक्ष्यों के सांगठनिक लक्ष्यों के साथ सामंजस्य स्थापन का भी प्रयास करते है।

**5. प्राधिकार की प्रणाली :—**

प्रबन्धकों के दल (समूह) के रूप में प्रबन्ध प्राधिकार की एक प्रणाली (व्यवस्था) को निरूपित होता है। आदेश एवं नियंत्रण के पदसोपान का निरूपण प्रबन्ध प्राधिकार की एक विशेषता है। विभिन्न स्तरों पर कार्यरत प्रबन्धक प्राधिकार की विभिन्न मात्रा को धारण करते है। सामान्यतः जैसे–जैसे हम प्रबन्धकीय पदानुक्रम में निम्न स्तर की ओर बढ़ते है, प्राधिकार की मात्रा वैसे–वैसे अल्प होती जाती है। प्राधिकार प्रबन्धकों को उनके प्रभावी कार्य–निष्पादन हेतु सक्षम बनाता है।

**6. बहुविषयक विषय :–**

प्रबन्ध अध्ययन के एक विषय मे अन्य कई विषयों यथा अभियांत्रिकी, नृ–विज्ञान, समाज शास्त्र, एवं मनोविज्ञान, की सहायता से विकासित हुआ है अधिकांश प्रबन्ध साहित्य इन विषयों के संघ का (समामेलन) परिणाम है। उदाहरणार्थ उत्पादन उन्मुखीकरण, औद्योगिक अभियंत्रण से प्रेरित है तथा मानव सम्बन्ध उन्मुखीकरण मनोविज्ञान से। इसी प्रकार समाज शास्त्र एवं परिचालन शोध ने भी प्रबन्ध विज्ञान के विकास में योगदान दिया है।

**7. सार्वत्रिक अनुप्रयोग :–**

प्रबन्ध की प्रकृति सार्वत्रिक है। प्रबन्ध के सिद्धान्त एवं तकनीकें समान रूप से व्यवसाय, शिक्षा, सेना (रक्षा) सरकार एवं चिकित्सालय में लागू होते हैं। हेनरी फेयोल ने सुझाया था कि प्रबन्ध के सिद्धान्त कमोवेश समस्त परिस्थितियों में लागू होते हैं ये सिद्धान्त कार्यकारी दिशा–निर्देश है, जो कि उन समस्त संगठनों के जहाँ मानवीय प्रयत्नों को समन्वयित किया जाना है, अपनाने हेतु लोचशील एवं सक्षम है।

## 1.4 प्रबन्ध की प्रकृति

पूर्व से इस इकाई में एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया के रूप में संकल्पित किया गया है, जिसके द्वारा उद्यम के प्रबन्धक इसके संसाधनों को समान, व्यक्त लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु एकीकृत एवं समन्वयित करते है। पिछले 06 दशकों में प्रबन्ध एक ज्ञान के निकाय तथा एक पृथक पहचानने योग्य विषय के रूप में विकसित हुआ है। पेशे (व्यवहार) के रूप में प्रबन्ध उतना ही प्राचीन है, जितना कि समान उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु व्यवस्थित मानवीय प्रयत्न। प्रबन्ध ने कुछ वर्षों में (समय में) पेशे की कुछ विशेषतायें ग्रहण की हैं। भारत में एवं अन्य जगह के विशाल व मध्यम आकार के उद्यमों का प्रबन्धन पेशेवर प्रबन्धकों, वे प्रबन्धक जो उद्यम में अत्यल्प अथवा शून्य स्वामित्व रखते है, तथा एक वृत्ति के रूप में प्रबन्ध की ओर देखते है। प्रबन्ध की एक विज्ञान, एक कला एवं एक पेशे के रूप में प्रकृति का विशद् वर्णन निम्नलिखित हैः–

**क प्रबन्ध विज्ञान के रूप में :–**

विज्ञान के रूप में प्रबन्ध की हाल ही मे उत्पत्ति हुयी है, भले ही व्यवहार में यह अति–प्रचीन है। फ्रेडरिक विन्सलो टेलर प्रथम प्रबन्धक सिद्धान्तकार थे जिन्होंने प्रबन्ध को विज्ञान के रूप में विकसित करने में महत्वपूर्ण (उल्लेखनीय) योगदान दिया। उन्होने उत्पादन कार्यों में वैज्ञानिक विधियों (पद्धतियों) द्वारा विश्लेषण, प्रेक्षण एवं अनुप्रयोग का प्रयोग प्रबन्ध हेतु किया। एक अनुभवी (अनुबोधक) प्रबन्धक, जो कि वो थे, उन्होंने कतिपय आधारभूत सिद्धान्तों को आसवित किया तथा वैज्ञानिक प्रबन्ध के नियमों एवं सिद्धान्तों को प्रतिपादित

किया। उनके कार्य को कई अन्य प्रबन्ध विशेषज्ञों यथा ग्रेण्ट, इमर्सन, फ्योल, बर्नाड इत्यादि द्वारा अनुगमित किया गया। पिछले कुछ दशकों में प्रबन्ध को ज्ञान की व्यवस्थित शाखा (निकाय) के रूप में विकसित करने हेतु विभिन्न प्रयास हुये जो कि सीखी, पढ़ाई एवं शोध की जा सकती है, तथा इनसे पेशेवर प्रबन्धको को विश्लेषण, पूर्वानुमान एवं नियंत्रण हेतु एक सशक्त (शक्तिशाली) अस्त्र भी प्रदान किया है। प्रबन्धक, वैज्ञानिक चरित्र विशेषतः प्रबन्ध वैज्ञानिकों द्वारा मजबूत (सुदृढ़) किया गया है, जिन्होंने निर्णयन के गणितीय प्रतिमानों को विकसित किया।

प्रबन्ध में विज्ञान की एक अन्य विशेषता यह है कि यह प्रेक्षण एवं प्रयोग की वैज्ञानिक पद्धतियों का तथा प्रयोगशाला शोध का प्रयोग करता है। प्रबन्ध के सिद्धान्त दृढ़ रूप में प्रेक्षित घटनाओं तथा आँकड़ो के व्यवस्थित वर्गीकरण एवं विश्लेषण पर आधारित होते है। ये विश्लेषण एवं देखी गयी घटनाओं का प्रयोग दो या अधिका चरों के मध्य कारण–प्रभाव सम्बन्ध सिद्ध करने हेतु प्रयोग में लाये जाते है। इन सम्बन्धों के विषय में सामान्यीकरण परिकल्पना के रूप में फलित होता है। परिकल्पना जब परीक्षित की जाती है एवं सत्य पायी जाती है तो सिद्धान्त कहलाती है। जब ये सिद्धान्त व्यावहारिक स्थितियों में प्रयुक्त किये जाते है तो प्रबन्ध पेशेवरों की समस्याओं को परिभाषित एवं विश्लेषण करने में तथा समस्याओं के समाधान एवं परिणाम का अनुमान (भविष्यवाणी) लगाने में सहायता करते है।

प्रबन्ध चूँकि ज्ञान की एक शाखा के रूप में विद्यमान है तथा शोध की वैज्ञानिक पद्धतियों का भी प्रयोग करता है, अतः यह इस दृष्टि से विज्ञान है, किन्तु यह यथार्थ विज्ञान नहीं है, जैसे कि प्राकृतिक विज्ञान। यह इसलिये है, क्योंकि प्रबन्ध एक सामाजिक विज्ञान है तथा संगठन में मानव के व्यवहार से सम्बन्ध रखता है। व्यक्ति का व्यवहार अचेतन (जड़) चीजों यथा प्रकाश अथवा ऊष्मा, की तुलना में अधिक जटिल एवं परिवर्तनशील है। इसके कारण नियंत्रित प्रयोग अत्यधिक कठिन हो जाता है। फलतः प्रबन्ध के सिद्धान्त उस दृढ़ता एवं परिशुद्धता का अभाव रखते हैं, जो भौतिकी एवं रसायन विज्ञान में होता है। वस्तुतः बहुत से प्राकृतिक विज्ञान जो जीवित तथ्य (गोचर वस्तु) से सम्बन्धित है यथा वनस्पति विज्ञान एवं औषधि शास्त्र भी यथा विज्ञान नहीं है। प्रबन्ध, अर्थशास्त्र अथवा मनोविज्ञान की भांति सामाजिक विज्ञान है, तथा उन्हीं सीमाओं से युक्त है, जो अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान अथवा अन्य सामाजिक विज्ञानों में पायी जाती है। किन्तु यह किसी भी प्रकार से प्रबन्ध के एक मात्रा एवं विषय के रूप में महत्व को गिराता (कम नहीं) नहीं है। प्रबन्ध ने विश्लेषण, अनुमान, एवं नियंत्रण का शक्तिशाली अस्त्र पेशेवर प्रबन्धकों को उनके भौतिक कार्यों को दक्षतापूर्वक एवं प्रभावी ढ़ंग से निष्पादित करने हेतु प्रदान किया है।

**ख. प्रबन्ध कला के रूप में :–**

जिस प्रकार एक अभियन्ता सेतु निर्माण करते समय अभियांत्रिकी विज्ञान का प्रयोग करता है, एक प्रबन्धक अपने प्रबन्धकीय कार्यों के निष्पादन के दौरान प्रबन्ध सिद्धान्तों के ज्ञान का प्रयोग करता है। अभियांत्रिकी एक विज्ञान है, व्यवहारिक समस्याओं में इनका प्रयोग कला है। इसी प्रकार प्रबन्ध ज्ञान का एक निकाय (शाखा) है तथा विज्ञान का विषय है, सांगठनिक समस्याओं के समाधान हेतु इसका प्रयोग 'कला' है। प्रबन्ध का कार्य (पेशा) औषधि (चिकित्सा) के पेशे के समान है, जो कि दृढ़ रूप से पहचानने योग्य संकल्पनाओं, सिद्धान्तों एवं वाद पर

अवस्थित होते है। एक चिकित्सक जिसकी जाँच (परीक्षण) एवं इलाज औषधि विज्ञान पर आधारित नहीं होती है, अपने रोगी के जीवन को खतरे में डालता है। इसी प्रकार वह प्रबन्धक जो प्रबन्ध के ज्ञान के बिना संगठन का प्रबन्ध करता है, वह संगठन में राजकता उत्पन्न (उथल–पुथल) करता है तथा संगठन के हित को खतरे में डालता है।

प्रबन्ध के सिद्धान्त औषधि के सिद्धान्त की भाँति है जो पेशेवरों द्वारा 'अंगूठे के नियम' के रूप में नहीं वरन् व्यावहारिक समस्याओं के समाधान में मार्गदर्शक की भाँति प्रयुक्त किये जाते है। प्रायः यह कहा जाता है कि प्रबन्धकीय निर्णयन में न्याय निर्णय का दीर्घ तत्व सम्मिलित रहता है। यह अत्याधिक सत्य है। यह विवाद उठाना कि प्रबन्ध विज्ञान है अथवा कला निरर्थक है। यह विज्ञान एवं कला दोनों है। प्रबन्धक के ज्ञान के क्षेत्र में हुये विकास ने इस पेशे के उन्नयन में सहायता की है, तथा प्रबन्ध पेशे (व्यवहार) के उन्नयन ने आगे के शोध एवं अध्ययन को प्रोत्साहित किया है परिणामतः प्रबन्ध विज्ञान का और विकास हुआ है।

**ग प्रबन्ध एक वृत्ति (पेशे) के रूप में :–**

प्रायः हम अपने देश में प्रबन्ध के व्यवसायीकरण के बारे में सुनते रहते है। एक पेशेवर प्रबन्धक से प्रायः हमारा आशय ऐसे प्रबन्धक से है जो प्रबन्ध को एक वृत्ति के रूप में अपनाता है तथा उस उद्यम में जिसमें वह कार्य कर रहा होता है, अंश–स्वामित्व पाने (लेने) में रूचि नहीं रखता है। किन्तु क्या प्रबन्ध पेशे शब्द के सही अर्थ (भाव) में पेशा है? अथवा प्रबन्ध विधि एवं औषधि पेशे की भाँति एक पेशा है?

मैक्फाटलेण्ड के अनुसार :– एक पेशा निम्नलिखित विशेषताओं से युक्त होता है,

(i) सिद्धान्तों, तकनीकों, कौशल एवं विशिष्ट ज्ञान का निकाय है;

(ii) प्रशिक्षण एवं अनुभव प्राप्त करने की औपचारिक पद्धतियां;

(iii) एक लक्ष्य के रूप में व्यवसायीकरण के साथ प्रतिनिधि संगठन की स्थापना;

(iv) आचार के मार्ग–दर्शन हेतु नैतिक–संहिता का निर्माण;

(v) सेवाओं की प्रकृति के आधार पर शुल्क (फीस) का प्रभार।

प्रबन्ध उसी स्तर पेशा है जहाँ तक वह इन शर्तों/दशाओं को पूण्र करता है। यह एक पेशा इस अर्थ में है, कि यह प्रबन्ध का व्यवस्थित निकाय है, तथा यह एक विशिष्ट एवं अभिज्ञेय (पहचान–योग्य) विषय है। इनसे अधिक संख्या में उपकरण एवं तकनीकों का विकास किया है। किन्तु औषधि एवं विधि के विपरीत प्रबन्ध की उपाधि प्रबन्धक होने की पूर्व–आवश्यकता नहीं है। वस्तुतः भारत में एवं अन्यत्र कार्यरत अधिकांश प्रबन्धक प्रबन्ध की औपचारिक शिक्षा नहीं रखते है। यह दृष्टिगत करते हुये कि निकट भविष्य में ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि प्रबन्ध की उपाधि शिक्षा एक वृत्ति के रूप में प्रबन्ध को अपनाने हेतु पूर्व–आवश्यकता नहीं होगी। यह उचित प्रतीत होता है।

प्रबन्ध इस अर्थ में भी पेशा है कि प्रशिक्षण की औपचारिक पद्धतियां (विधियां) उनके लिये उपलब्ध है, जो प्रबन्धक बनना चाहते है। कई प्रबन्ध संस्थान तथा विश्वविद्यालयों के प्रबन्ध विभाग है, जो इस क्षेत्र में औपचारिक शिक्षा प्रदान करते है। कई कम्पनियों में प्रशिक्षण सुविधाये उनके प्रशिक्षण खण्ड द्वारा प्रदान की जाती है। विभिन्न संगठन यथा भारतीय प्रशासनिक स्टाफ कालेज, भारतीय प्रबन्ध

संस्थान, प्रबन्ध विकास संस्थान, अखिल भारतीय प्रबन्ध एंसोशियेसन भारत में, अमेरिकन प्रबन्ध संस्थान अमेरिका में इत्यादि है, तथापि इनमें से कोई प्रबन्ध के पेशेवर होने (व्यवासायीकरण) को अपना लक्ष्य नहीं मानता। इस प्रकार प्रबन्ध पेशे की तृतीय शर्त (दशा) को अंशतः पूर्ण करता है।

प्रबन्ध पेशे की अंतिम दो आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं करता है। प्रबन्धकों के लिये, चिकित्सकों एवं अधिवक्ताओं की भाँति, कोई नैतिक आचार संहित नहीं है। हालांकि कुछ संगठनों ने व्यक्तिगत स्तर पर अपने प्रबन्धकों के लिये संहिता बनाने का प्रयास किया किन्तु उसे समस्त प्रबन्धकों पर समान्यीकृत नहीं किया जा सकता है। वस्तुतः लोक–अधिकारी को पक्ष में करने हेतु रिश्वत देना, श्रम–संधो को तोड़ना, कीमतों तथा बाजार को अनुचित ढंग से अपने पक्ष में करना एक आम विशेषता है जो वर्तमान प्रबन्ध जगत में सरलता से दृष्टगम्य होती है। इसके अतिरिक्त सामान्य रूप से प्रबन्धक सेवा स्वयं से श्रेष्ठ के सिद्धान्त का पालन करते नहीं प्रतीत होते है। तथापि मैट्रिक क्षतिपूर्ति के परे कार्य को छोड़ने को थोड़ा सम्मान दिया जाता है, यह प्रबन्धकों द्वारा एक कार्य (कम्पनी/संगठन) से दूसरे कार्य में जाने से उद्‌घृट किया जा सकता है। वस्तुतः ये चलनशील (सचल) प्रबन्धक अन्य की तुलना में अधिक प्रगतिशील एवं आधुनिक समझे जाते है।

## 1.5 प्रबन्ध बनाम प्रशासन

प्रबन्ध एवं प्रशासन, इन दोनों पक्षों का प्रयोग, प्रबन्ध साहित्यों में एक विवाद का मुद्‌दा रहा है। कुछ लेखक उपरोक्त दोनों में कोई अन्तर नहीं देखते अर्थात् दोनों को एक समान पाते है, जबकि अन्य लेखकों का यह मानना है कि प्रबन्ध एवं प्रशासन दो अलग (पृथक) कार्य है। ओलिवर शेल्डन, फ्लोरेंस व टीड स्प्रीगल एवं लांसबर्ग इत्यादि यह मानते है कि प्रबन्ध एवं प्रशासन पृथक है। इनके अनुसार प्रबन्ध एक निम्न स्तरीय कार्य है तथा प्राथमिक रूप से (मुख्य रूप से) प्रशासन द्वारा निर्मित नीतियों के कियान्वयन से सम्बन्धित होता है, किन्तु कतिपय अंग्रेजी लेखक, यथा ब्रेच का यह मानना है कि प्रबन्ध एक व्यापक अवधारणा है जो प्रशासन को अपने में सम्मिलित करता है। इस विवाद को निम्नलिखित तीन शीर्षकों में अन्तर्गत विमर्शित किया गया है;

(i) प्रशासन नीतियों के निर्माण से तथा प्रबन्ध उन नीतियों के क्रियान्वयन से सम्बन्धित है। इस प्रकार प्रशासन उच्च स्तीय कार्य्र है।

(ii) प्रबन्ध एक सामान्य (व्यापक) पद है, जिसमें प्रशासन सम्मिलित है।

(iii) प्रबन्ध एवं प्रशासन में कोई अन्तर नहीं है तथा वे विनिमयेता के अनुसार प्रयुक्त किये जाते है।

**1. प्रशासन एक उच्च स्तरीय कार्य है:–**

ओलिवर शेल्डन, जिन्होंने प्रथम दृष्टिकोण को अपनाया है, के अनुसार, ''प्रशासन व्यावसायिक नीतियों के निर्धारण, वित्त, उत्पादन एवं वितरण के समन्वयन, संगठन के विस्तार के निश्चयीकरण (समाधान) तथा अधिशाषियों के सर्वाच्च नियंत्रण से सम्बन्धित है। प्रबन्ध प्रशासन द्वारा निश्चित की गयी सीमाओं के भीतर नीतियों के क्रियान्वयन से सम्बन्धित है तथा संगठन का उद्‌देश्य विशेष के लिये नियोजित करने से सम्बन्ध रखता है। प्रशासन संगठन का निर्धारण करता है, प्रबन्ध इसका प्रयोग करता है। प्रशासन लक्ष्यों को परिभाषित करता है, प्रबन्ध इसकी प्राप्ति की ओर बढ़ता है।

प्रशासन नीति–निर्माण से सम्बन्धित है जबकि प्रबन्ध प्रशासन द्वारा निर्मित नीतियों के कियान्वयन से सम्बन्धित है। टीड स्प्रिगल एवं वॉल्टर ने इस दृष्टिकोण को अपनाया है प्रशासन व्यावसयिक उद्यम का एक चरण (पक्ष) है जो अपने को संस्थानात्मक उद्देश्यों के निर्माण तथा इन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु आवश्यक नीतियों के निर्माण से सम्बन्धित है, प्रशासन एक निश्चयात्मक कार्य है जबकि दूसरी ओर प्रबन्ध एक प्रशासनिक कार्य है, जो मूल रूप से प्रशासन द्वारा निर्धारित व्यापक नीतियों के कियान्वयन (पालन) से सम्बन्धित है। इस प्रकार प्रशासन व्यापक नीतियों के निर्माण से तथा प्रबन्ध इस नीतियों के कियान्वयन से सम्बन्धित है। इसे सारणी 01 से स्पष्टतः समझा जा सकता है।

**सारणी–01**

| क. सं. | आधार | प्रशासन | प्रबन्ध |
|---|---|---|---|
| 01 | अर्थ | प्रशासन संगठनकारी नीतियों, उद्देश्यों तथा योजनाओं के निर्धारण से सम्बन्धित है। | प्रबन्ध अन्य के साथ एवं उनसे कार्य कराने से सम्बन्धित है। |
| 02 | कार्य की प्रकृति | यह निर्णयन से सम्बन्धि है। यह विचार प्रक्रिया है। | यह निर्णयों के कियान्वयन से सम्बन्धित है। यह करने योग्य कार्य है। |
| 03 | निर्णयन | क्या और कब किया जाना है; यह निर्णय प्रशासन करता है। | प्रशासनिक निर्णयों को कौन कियान्वित करेगा यह निर्णय प्रबन्ध करता है। |
| 04 | स्थिति | प्रशासन उच्च स्तरीय प्रबन्ध से सम्बन्धित हे। | प्रबन्ध संगठन के निम्न स्तरों पर व्यवहारिक, उपयोगी है। |

**2. प्रबन्ध एक व्यापक पद है :–**

प्रबन्ध का द्वितीय सिद्धान्त वर्णित करता है कि प्रबन्ध एक व्यापक पद है जिसमें प्रशासन समाहित होता है।

ब्रेच के अनुसार, प्रबन्ध क सामाजिक प्रकिया है जो दिये गये कार्य अथवा उद्देश्य की प्राप्ति में एक उद्यम के परिचालन में प्रभावकारी एवं मितव्ययी नियोजन एवं नियमन के उत्तरदायित्व पर जोर देता है। प्रशासन प्रबन्ध का वह भाग है जो प्रक्रियाओं के स्थापन एवं पालन से सम्बन्धित है, जिसके द्वारा निर्धारित एवं सम्प्रेषित कार्यक्रमों तथा कार्यों की प्रगति योजनाओं के सापेक्ष नियमित की जा सकती है एवं जांची जा सकती है।

इस प्रकार ब्रेच मानते है कि प्रशासन, प्रबन्ध का एक भाग है। किम्बाल एवं किम्बाल ने भी इस मत को अपनाया है। इनके अनुसार प्रशासन, प्रबन्ध का एक भाग है। प्रशासन, क्रियान्वयन के वास्तविक कार्य से सम्बन्धित है अथवा उद्देश्यों की पूर्ति से सम्बन्ध रखता है।

**3. प्रबन्ध एवं प्रशासन पर्यायवाची है :–**

प्रबन्ध का तृतीय दृष्टिकोण प्रबन्ध एवं प्रशासन में कोई भेद नहीं मानता। इनका प्रयोग भी इन दोनों पदों में कोई अन्तर प्रदान नहीं करता है। प्रबन्ध पद का प्रयोग उच्च अधिशाषी कार्यों यथा नीतियों का निर्धारण, नियोजन, सांगठनीकरण, निर्देशन एवं नियंत्रण के व्यवसायिक वृत्तों में उपयोग के सन्दर्भ में

किया जाता है, जब कि प्रशासन पद का प्रयोग सरकारी वृत्तों में इन्हीं (उपरोक्त) कार्यों के समुच्चय हेतु किया जाता है। अतः इन दोनों पदों में कोई अन्तर नहीं है तथा इनका प्रयोग विनियमेयता के आधार पर होता है।

उपरोक्त संकल्पनाओं के आधार पर यह प्रतीत होता है कि प्रशासन, उद्देश्यों के निर्धारण योजनाओं व नीतियों के निर्माण तथा यह सुनिश्चित करने की, कि लक्ष्यों के अनुरूप ही प्राप्ति हो रही है, प्रकिया है।

प्रबन्ध, प्रशासन द्वारा निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु योजनाओं एवं नीतियों के क्रियान्वयन की प्रक्रिया है। यह अन्तर बहुत साधारण एवं सतही प्रतीत होता है। यदि हम अध्यक्ष, प्रबन्ध निदेशकों तथा महा प्रबन्धकों का सम्मान करते है, तो यह नहीं कहा जा सकता कि वे सभी महज लक्ष्यों की निर्धारण की योजना निर्माण, नीति–निर्माण का कार्य करते है, तथा अन्य कार्य करते है, तथा अन्य कार्यों यथा स्टाफिंग, क्रियाओं यथा चयन एवं पदोन्नति नेतृत्व के निर्देशन कार्य, सम्प्रेषण एवं अभिप्रेरण आदि कार्यों को नही सम्पादित करते है। दूसरी ओर हम यह नहीं कर सकते कि प्रबन्धक जो योजनाओं के क्रियान्वयन तथा योजना व नीति के निर्माण का उत्तरदायित्व निभाते है, लक्ष्य निर्धारण तथा योजना व नीति–निर्माण के प्रशासनिक कार्यों में अपना योगदान नहीं देते है। वस्तुतः चाहे वे मुख्य अधिशाषी ही करते है, तथा अन्य कार्यों यथा स्टाफिंग, क्रियाओं यथा चयन एवं पदोन्नति नेतृत्व के निर्देशन कार्य, सम्प्रेषण एवं अभिप्रेरण आदि कार्यों को नही सम्पादित करते है। दूसरी ओर हम यह नहीं कर सकते कि प्रबन्धक जो योजनाओं के क्रियान्वयन तथा योजना व नीति के निर्माण का उत्तरदायित्व निभाते है, लक्ष्य निर्धारण तथा योजना व नीति–निर्माण के प्रशासनिक कार्यों में अपना योगदान नहीं देते है। वस्तुतः चाहे वे मुख्य अधिशाषी हों या प्रथम पंक्ति के पर्यवेक्षक किसी न किसी रूप में सभी प्रबन्ध का कार्य करते है। अथवा अन्य प्रबन्धकीय कार्यों के निष्पादन में सम्मिलित रहते है। यह अवश्य है कि जो संगठनात्मक पदानुक्रम में उच्च स्थान रखते है वे काफी हद तक लक्ष्यों के निर्धारण, योजना व नीति–निर्धारण तथा संगठन के निचले स्तर पर कार्यरत लोगों के सांगठनीकरण का कार्य करते है।

## 1.6 प्रबन्ध के स्तर

किसी उद्यम में प्रबन्ध के कई स्तर हो सकते है। प्रबन्ध के स्तर से सन्दर्भ उद्यम में विभिन्न प्रबन्धकीय स्थितियों (पदों) के मध्य विभेदक रेखा से है। प्रबन्ध का स्तर उद्यम के आकार, तकनीकी, सुविधाओं तथा उत्पादन की सीमा (क्षेत्र) पर निर्भर करती है। सामान्यतया हमारा सामाना प्रबन्ध के दो व्यापक स्तरों; प्रशासनिक प्रबन्ध उच्च स्तरीय प्रबन्ध तथा परिचालन प्रबन्ध निम्न स्तर का प्रबन्ध, से होता है। प्रशासनिक प्रबन्ध 'विचार' किया (कार्य) से सम्बन्धित है अर्थात नीतियों का निर्धारण नियोजन तथा मानकों का निश्चितीकरण आदि प्रशासनिक प्रबन्ध के अन्तर्गत आते है।

परिचालन प्रबन्ध 'करने' से अर्थात नीतियों के क्रियान्वयन तथा उद्यम के उद्देश्य की प्राप्ति हेतु परिचालन को निर्देशित करने से सम्बन्धित है। किन्तु वास्तविक व्यवहार में 'विचार प्रकिया' तथा 'कार्य प्रक्रिया' के बीच में स्पष्ट विभेदक रेखा खींच पाना सम्भव नहीं है। क्योंकि मूल (प्राथमिक) प्रबन्धकीय कार्यों का

सम्पादन समस्त प्रबन्धकों के द्वारा किया जाता है, चाहें वे किसी भी स्तर, श्रेणी (पद) पर पदस्थ हों।

उदाहरणार्थ, कम्पनी का मजदूरी व वेतन निदेशक, संचालक मण्डल के सदस्य के रूप में मजदूरी एवं वेतन निर्धारण में सहायता कर सकता है, किन्तु मजदूरी एवं वेतन विभाग के मुखिया के रूप में उसका कार्य यह देखना है कि ये निर्णय क्रियान्वयित हो रहें है।

स्तरों की वास्तविकता महत्ता यह है कि वे संगठन में प्राधिकार सम्बन्ध को वर्णित करता है। प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व के पदसोपान को विचारित करते हुये प्रबन्ध के निम्नलिखित तीन स्तरों की पहचान की जा सकती है :–

**(a)** **उच्च प्रबन्धनः–** इसके अन्तर्गत कम्पनी के स्वामी/अंश धारक, संचालक मण्डल (निदेशक मण्डल), इसका सभापति प्रबन्ध निदेशक, अथवा मुख्य अधिशाषी अथवा महा प्रबन्धक अथवा प्रधान अधिकारियों की अधिशाषी समिति सम्मिलित होते है।

**(b)** **मध्य प्रबन्धनः–** किसी कम्पनी के मध्य प्रबन्ध के अन्तर्गत कार्यात्मक विभागों के मुखिया/अध्यक्ष यथा क्रय–प्रबन्धक, उत्पादन प्रबन्धक, वित्त–नियंत्रक इत्यादि तथा इन मुखियाओं के अन्तर्गत कार्यरत खण्डीय व अनुभागीय अधिकारी सम्मिलित होते है।

**(c)** **निम्न स्तर अथवा परिचालन प्रबन्धः–** इसके अन्तर्गत अधीक्षक, फोरमैन (प्रकार्य अधिकारी) तथा पर्यवेक्षकों को सम्मिलित किया जाता है।

**(1)** **उच्च–प्रबन्धन (प्रबन्ध):–** उच्च–प्रबन्ध प्राधिकार का अन्तिम स्त्रोत (प्रधान/सर्व प्रमुख) होता है, तथा यह उद्यम की नीतियों, लक्ष्यों एवं योजनाओं का निर्धारण करता है। इसका अधिकांश समय नियोजन एवं समन्वय कार्यों में व्यतीत होता है। यह सम्पूर्ण प्रबन्ध हेतु कम्पनी के स्वामी के प्रति उत्तरदायी होते है। इन्हें सम्पूर्ण कम्पनी सम्बन्धी गतिविधियों (कार्यों) के निर्देशन एवं सफलता हेतु नीति–निर्माता समूह के रूप में भी परिभाषित किया जाता है। उच्च–प्रबन्धन के प्रमुख कार्यों में निम्नलिखित को सम्मिलित किया जा सकता हैः–

(a) उद्यम के उद्देश्य अथवा लक्ष्यों को स्थापित कराना।

(b) निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु नीति निर्माण।

(c) नियोजन के अनुसार कार्यों (संलचान) के सम्पादन हेतु ढ़ाँचा तैयार करना।

(d) योजना के कार्य रूप में परिवर्तन हेतु (रूपान्तरण हेतु) मुद्रा, मानव, सामग्री, मशीन तथा पद्धतियों को एकत्रित करना।

(e) संचालन क्रियाओं पर प्रभावी नियंत्रण करना।

(f) उद्यम को सम्पूर्ण नेतृत्व प्रदान करना।

**(2)** **मध्य–स्तर प्रबन्धनः–** उच्च प्रबन्धन द्वारा निर्मित नीतियों एवं योजनाओं को क्रियान्वित करना ही मध्य–स्तरीय प्रबन्धन का प्रमुख कार्य है। मध्य प्रबन्धन, उच्च स्तरीय प्रबन्धन तथा परिचालन स्तर (निम्न स्तर) प्रबन्धन के मध्य एक कड़ी के रूप में कार्य करता है। अपने विभागों के कार्य हेतु वे उच्च–प्रबन्धन के प्रति उत्तरादायी होते है। ये प्रबन्ध के सांगठनीकरण एवं अभिप्रेरण पर अधिक ध्यान देते है तथा अपना समय देते है। वे उद्देश्यपरक उद्यम हेतु मार्ग दर्शन एवं संरचना प्रदान करते है। मध्य–स्तर प्रबन्ध के सहायोग के बगैर उच्च प्रबन्धन की

योजनायें तथा महत्वाकांक्षी अपेक्षायें प्राप्त नहीं की जा सकती है। मध्य–स्तरीय प्रबन्धन के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैः–

(a) उच्च–प्रबन्धन द्वारा निर्मित नीतियों का निर्वचन।
(b) विभिन्न व्यावसायिक नीतियों में विवक्षित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु अपने विभागों में सांगठनिक संरचना (ढ़ांचा) प्रदान करना।
(c) परिचालन तथा पर्यवेक्षक स्टाफ की भर्ती एवं चयन।
(d) योजनाओं के समयानुसार सम्पादन हेतु काग्र, कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व को सौंपना।
(e) समस्त निर्देशों को संकलित करना तथा उन्हें अपने नियंत्रणाधीन पर्यवेक्षकों को निर्गत करना।
(f) कर्मचारियों को उच्च–उत्पादकता प्राप्त करने हेतु अभिप्रेरित करना तथा उन्हें उचित ढंग से पुरस्कृत करना।
(g) सम्पूर्ण संगठन के सुगम संचालन हेतु अन्य विभागों से सहयोग करना।
(h) अपने विभागों के प्रतिवेदनों एवं सूचना को एकत्रित करना।
(i) उच्च–प्रबन्धन को प्रतिवेदन सौंपना।
(j) योजनाओं एवं नीतियों के श्रेष्ठतर क्रियान्वयन हेतु उच्च–प्रबन्धन को उपयुक्त संस्तुतियां देना।

**(3) निम्न अथवा परिचालनात्मक प्रबन्धकः–** यह प्रबन्ध के पदानुक्रम में सबसे निचले स्तर पर अवस्थित होता है तथा वास्तविक परिचालन का दायित्व इन्हीं का होता है। इसके अन्तर्गत फोरमैन, पर्यवेक्षक, विक्रय–अधिकारी, लेखाधिकारी आदि सम्मिलित होते है। वे श्रेणी, फाइल तथा कर्मचारी के प्रत्यक्ष सम्पर्क में रहते है। उनका प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व समिति होता है। ये मध्य–स्तर प्रबन्धन के निर्देशों को श्रमिकों तक पहुंचाते है।

ये प्रबन्धक की योजनाओं को अल्प–अवधि की परिचालन योजनाओं में विभाजित करते है। ये निर्णयन प्रक्रिया में भी सम्मिलित रहते है। इनका कार्य श्रमिकों के माध्यम से कार्य करवाना होता है। ये कर्मचारियों को विभिन्न कार्य आवंटित करते हैं, उनके निष्पादन का मूल्यांकन करते हैं, तथा मध्य प्रबन्धन को प्रतिवेदन भेजते है। ये प्रबन्ध के निर्देशन एवं नियंत्रण कार्यों पर अधिक ध्यान देते है। इनका अधिकांश समय कर्मचारियों (श्रमिकों) के पर्यवेक्षण में लगता है।

## 1.7 प्रबन्धकीय कौशल

कौशल किसी व्यक्ति की ज्ञान को क्रिया (कार्य) के रूप में रूपान्तरित करने की योग्यता होती है। अतः यह व्यक्ति के निष्पादन में अवतरित होती है। कौशल आवश्यक रूप से जन्मजात ही नहीं होती वरन इसे नियमित अभ्यास एवं किसी के स्वयं के व्यक्तिगत अनुभव एवं पृष्ठभूमि के द्वारा विकसित किया जा सकता है। अपने भूमिका के सफल निर्वहन हेतु किसी प्रबन्धक में तीन प्रमुख कौशल का होना आवश्यक है। ये तीन कौशल हैः–

(1) सैद्धान्तिक कौशल
(2) मानव–सम्बन्ध कौशल
(3) तकनीकी कौशल

जहाँ सैद्धान्तिक एवं तकनीकी कौशल उचित निर्णयन हेतु आवश्यक है, वही मानव सम्बन्ध कौशल अच्छे नेता हेतु आवश्यक है।

सैद्धान्तिक कौशल :– एक प्रबन्धक की निम्नलिखित योग्यताओं से सन्दर्भित है:–

(a) संगठन तथा उसके भविष्य के बारे में व्यापक एवं दूरदर्शिता पूर्ण निर्णय लेने की योग्यता।

(b) संक्षेप में विचारण की योग्यता।

(c) किसी स्थिति में कार्यरत शक्तियों के विश्लेषण की योग्यता।

(d) प्रबन्ध की रचनात्मक एवं अभिनवीकरण (अभिनव) योग्यता।

(e) पर्यावरण एवं इसमें हो रहे परिवर्तनों तक पहुँचने की योग्यता।

संक्षेप में अपने वातावरण, संगठन एवं अपने कार्य के मनस–चित्रण की योग्यता जिससे कि वह अपने संगठन, स्वयं के लिये तथा अपने दल के लिये उचित लक्ष्य–निर्धारण कर सके।

यह कौशल एक प्रबन्धक को संगठन में उच्च पद (दायित्व) प्राप्त करने में उसके महत्व को बढ़ाने वाली प्रतीत होती है। तकनीकी कौशल, प्रबन्धक की अपने अधीन कार्य करने वाले कर्मचारियों के कार्य की प्रकृति को समझने का कौशल है। यह एक व्यक्ति की किसी प्रकार की प्रक्रिया एवं तकनीक में उसके ज्ञान एवं दक्षता से सन्दर्भित है। एक उत्पादन विभाग में इसका आशय उत्पादन प्रकिया की तकनीकियों को समझने से होगा। जहां तक इन निम्न स्तर प्रबन्धन के क्षेत्र में अधिक महत्वपूर्ण होती है, तथा जैसे–जैसे प्रबन्धक उच्च पदों की ओर अग्रसर होता जाता है, प्रबन्धकीय दायित्वों में इन कौशलों का महत्व कम होता जाता है। उच्च कार्यात्मक पदों, यथा विपणन प्रबन्धक अथवा उत्पादन प्रबन्धक, इन कार्यात्मक क्षेत्रों में सैद्धान्तिक कौशल का महत्व बढ़ता जाता है, तथा तकनीकी कौशल (घटन) कम महत्वपूर्ण होते जाते है।

मानव सम्बन्ध कौशल समस्त स्तरों पर कार्यरत व्यक्तियों के साथ प्रभावी ढ़ंग से अंर्तक्रिया करने की योग्यता है। यह कौशल प्रबन्धक में निम्नलिखित योग्यताये संतोषजनक मात्रा में विकसित करता है।

(a) दूसरों की भावनाओं एवं संवेदनाओं को पहचानने (मान्यता प्रदान करने) की योग्यता।

(b) अपने द्वारा लिये जा रहे कार्य श्रृंखला के सम्भावित कार्यों एवं उनके परिणामों के सम्बन्ध में निर्णय (अभिनिर्णय) की।

(c) अपने सिद्धान्तों एवं मूल्यों के परीक्षण की जो उसे अपने स्वयं के विषय में अधिक उपयोगी अभिरूख के विकास हेतु सक्षम बनायेगी। कौशल का यह प्रकार समस्त स्तर के प्रबन्धकों के लिये महत्वपूर्ण रहती है।

सारणी–2 प्रबन्धक के स्तर में परिवर्तन की दशा में कौशल–मिश्रण में आवश्यक परिवर्तनों के सम्बन्ध में एक विचार प्रदान करती है;

उच्च स्तर पर तकनीकी की कौशल कम महत्वपूर्ण हो जाता है, इसी कारण उच्च स्तर पर कार्यरत व्यक्ति सरलता से एक उद्योग से दूसरे उद्योग में स्थानान्तरित हो जाते है, बगैर अपनी दक्षता में किसी गिरावट (कमी) के, उनकी सैद्धान्तिक एवं मानव–सम्बन्ध योग्यता नवीन कार्य के तकनीकी पहलू के साथ अपरिचितता को पूर्ति कर देती है।

**सारणी–2**

विभिन्न प्रबन्ध–स्तरों पर कौशल–मिश्रण

| | | |
|---|---|---|
| उच्च–प्रबन्ध | → | सैद्धान्तिक कौशल |
| मध्य–प्रबन्ध | → | मानव–सम्बन्ध कौशल |
| निम्न–प्रबन्ध | → | तकनीकी कौशल |

## 1.8 प्रबन्धक एवं उसका कार्य

प्रबन्धन (प्रबन्ध) सांगठनिक लक्ष्यों की प्रप्ति हेतु नियोग सांगठनीकरण, स्टाफिंग, निर्देशन एवं नियंत्रण कार्यों का सम्पादन करता है। कोई व्यक्ति जो इन कार्यों को करता है, प्रबन्धक कहलाता है। प्रथम पंक्ति के प्रबन्धक अथवा पर्यवेक्षक या फोरमैन भी प्रबन्धक होते है क्यों कि वे इन कार्यों का सम्पादन करते है। उच्च मध्य एवं निम्न स्तर के प्रबन्ध के मध्य अन्तर उनकी मात्रा (परिणाम) का होता है।

उदाहरणार्थ उच्च स्तरीय प्रबन्ध अधिकांशतः दीर्घावधि (विशाल सीमा) नियोजन एवं संगठन पर केन्द्रित रहता है, मध्य स्तर प्रबन्ध मुख्यतः समन्वयन एवं नियंत्रण पर केन्द्रित रहता है, वही निम्न–स्तर प्रबन्ध अन्य से कार्य करवाने हेतु निर्देशन कार्य केन्द्रित रहता है।

प्रत्येक प्रबन्धक विचार, वस्तु, एवं व्यक्ति से सम्बन्धित होता है। प्रबन्ध निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु संसाधनों के उपयोग (प्रयोग) को एकीकृत करने की रचनात्मक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में विचार, वस्तुयें (चीजें) तथा व्यक्ति बहुमूल्य आगत होते है, जिन्हें लक्ष्यों के अनुरूप निर्गत में रूपान्तरित किया जाना होता है।

विचारों के प्रबन्ध से तात्पर्य सैद्धान्तिक कौशल के प्रयोग से है। इसके तीन संकेतार्थ है, प्रथम अर्थ में यह प्रबन्ध को एक विशेष एवं वैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में मानने हेतु प्रबन्ध के व्यवहारिक दर्शन की आवश्कता से सम्बन्धित होता है। द्वितीय रूप में विचारों का प्रबन्ध से तात्पर्य प्रबन्ध प्रक्रिया के नियोजन चरण से है। अन्ततः विचारों का प्रबन्धन से आशय पृथकता (विशिष्टता) एवं नवोन्मेष से है। रचनात्मकता विचारों के सृजन तथा नवोन्मेष विचारों को साध्य सम्बन्धों एवं उपयोगिताओं में रूपान्तरित करने से सम्बन्धित है। आगे की योजना निर्माण तथा नवीन विचारों के सृजन हेतु प्रबन्धक को कल्पनादर्शी होना चाहिये।

वस्तुओं का प्रबन्ध (गैर–मानवीय संसाधन) उत्पादन–प्रणाली के अभिकल्पन, एवं अधिग्रहण, निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु भौतिक संसाधनों के आवंटन एवं सपरिवर्तन (रूपान्तरण) से सरोकार रखता है। व्यक्तियों (मानवों) का प्रबन्ध संगठन में मानव–संसाधनों की अधिदाप्ति, विकास, अनुरक्षण एवं एकीकरण से सम्बन्धित है। संगठनात्मक योजनाओं को व्यवहार रूप में लाने के लिये प्रत्येक प्रबन्धक को अपने अधीनस्थों का निर्देशन करना होगा।

प्रत्येक प्रबन्धक के समय का एक बड़ा भाग संप्रेषण एवं व्यक्तियों के साथ व्यवहार करने (निबटने में) में व्यय होता है। उसके प्रयत्न, उसके द्वारा निश्चित किये गये उद्‌देश्यों के सन्दर्भ में सूचनाओं की प्राप्ति एवं प्रगति मूल्यांकन की ओर निर्देशित होते है तथा आवश्यक होतो सुधारात्मक कार्यवाही लेना भी उसके प्रयत्नों की श्रृंखला का एक कार्य होता है। इस प्रकार प्रबन्धक के प्राथमिक कार्य में व्यक्तियों का प्रबन्ध करना सम्मिलित होता है। हालांकि यह उसका कर्तव्य है कि वह उत्पादन के समस्त साधनों का प्रबन्ध करे किन्तु मानव संसाधन सर्व प्रमुख एवं महत्वपूर्ण है। प्रबन्धक कच्चे माल (उत्पादन के अन्य संसाधनों को) को स्वयं

अन्तिम उत्पादन में नहीं परिवर्तित कर सकता, इस हेतु उसे अन्य की सहायता लेनी होगी। प्रत्येक प्रबन्धक के सामने यह बड़ी समस्या होती कि तो अपने कार्मिकों का सर्वश्रेष्ठ सम्भव उपयोग किस प्रकार करें। वर्तमान प्रबन्धकों को उन व्यक्तियों में जो सांगठनिक लक्ष्यों की प्राप्ति में प्रभावी योगदान दे सकें, कुशलतापूर्वक निबटना चाहिये।

पी0एफ0ड्रकर ने अभिमत दिया कि कार्मिकों एवं कार्य को संचालित करने का प्रबन्धकीय दृष्टिकोण व्यवहारिक (व्यवहारमूलक) तथा गतिक (गत्यात्मक) होना चाहिये। प्रत्येक कार्य को एक संक्रियाओं के एकीकृत समुच्चय के रूप में अभिकल्पित करना चाहिये। प्रत्येक कर्मचारी अपने कार्य वातावरण के नियंत्रण एवं संगठन की सन्तोषजनक (पर्याप्त) स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिये। प्रत्येक प्रबन्धक का यह कर्तव्य है कि वह अपने से नीचे कार्यरत व्यक्तियों को शिक्षित, प्रशिक्षित एवं विकसित करें, जिससे वह अपने द्वारा सौंपे गये कार्य को उत्तम ढ़ंग से सम्पादित करने में उनकी क्षमता ढ़ंग से सम्पादित करने में उनकी क्षमता एवं योग्यता का सर्वश्रेष्ठ ढ़ंग से उपयोग कर सके। प्रबन्धक को अपने अधीनस्थों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने एवं अपने अन्तर्गत कार्य करने मं सहायता करनी चाहिये, तथा इस हेतु उसे उचित वातावरण का प्रबन्ध करना चाहिये। प्रबन्धक को एक ऐसा वातावरण विकसित करना चाहिये जो व्यक्तियों के भीतर सन्तोष एवं अनुशासन का विकास एवं अनुरक्षण कर सके।

वर्तमान में यह प्रश्न का विषय रहा है, कि क्या नियोजन, सांगठनीकरण निर्देशन, एवं नियन्त्रण प्रबन्ध प्रक्रिया का पर्याप्त विवरण देते है? कुछ दिनों के एक कार्य में पाँच उच्च अधिशाषियों के गहन प्रेक्षण के उपरान्त, हेनरी मिट्ज बर्ग ने उद्घृत किया कि ये नाम–पत्र (लेबल) पर्याप्त रूप से प्रबन्धक जो करते है, उसे समाहित नहीं करते है। उन्होंने सुझाया कि इसके स्थान पर प्रबन्ध को निम्नलिखित दस विभिन्न भूमिकाओं, बिना किसी क्रम–विशेष के, को निभाने वाले के रूप में पहचाना जाना चाहिये;

1. **अन्तर्वैक्तिक भूमिकायें :–**

(a) **कतिपय सरदार (नाम मात्र का शासक):–** इस भूमिका में प्रत्येक प्रबन्धक को कुछ रस्मी प्रकृति के कर्तव्यों का निष्पादन करना चाहिये यथा भ्रमण पर आये पदाधिकारियों को बधाई, स्वागत, कर्मचारी के विवाह में सम्मिलित होना, महत्वपूर्ण उपभोक्ता के साथ दोपहर का भोजन करना इत्यादि।

(b) **नेता :–** नेता के रूप में प्रत्येक प्रबन्धक को अपने कर्मचारी को अभिप्रेरित एवं प्रोत्साहित करना चाहिये। उसे कर्मचारियों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं के संगठन के लक्ष्यों के साथ सामंजस स्थापित करने का प्रयास करना चाहिये।

(c) **मेज जोल (सम्पर्क):–** सम्पूर्ण भूमिका के अन्तर्गत प्रत्येक प्रबन्धक को उसके संगठन हेतु उपयोगी सूचनाओं के एकत्रण हेतु अपने निर्देशन की उर्द्ध–श्रृंखला के बाहर (परे) नवीन सम्बन्धों के उत्पादन (बनाने) हेतु प्रयास करना चाहिये।

2. **सूचनात्मक भूमिकायें :–**

(a) **अनुश्रवक** :– एक अनुश्रवक की भूमिका में प्रबन्धक को अपने उद्देश्यों हेतु आवश्यक सूचनाओं, मेज–जोल (सम्पर्क) द्वारा सम्बन्धो तथा अपने अधीनस्थों के वातावरण उद्देश्यपूर्ण जांच (छानबीन) निरीक्षण करते रहना चाहिये तथा अनचाही सूचनाओं की प्राप्ति का पुनरीक्षण करना चाहिये, ये सभी अधिकांशतः उसके द्वारा विकसित व्यक्तिगत सम्बन्ध संजाल के परिणाम होते है।

(b) **प्रसारक** :– एक प्रसारक के रूप में प्रबन्धक अपनी कुछ विशिष्ट (विशेष रूप से सिर्फ उसे प्राप्त) सूचनाओं को अपने अधीनस्थों को प्रसारित करता है, जो अन्य ढंग से अधीनस्थ नहीं प्राप्त कर सकते।

(c) **प्रवक्ता** :– अपनी इस भूमिका में प्रबन्धक उन व्यक्तियों एवं समूहों को जो उसके संगठन को प्रभावित करते है, सूचित एवं संतुष्ट करता है। इस प्रकार वह अंश धारकों को मशविरा प्रदान करता है, कि संगठन का वित्तीय निष्पादन कैसा है, उपभोक्ताओं को आश्वसत करता है, कि संगठन (कम्पनी) अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों की पूर्ति कर रहा है, सरकार को संतुष्ट करता है, कि संगठन विधि से बाध्य है।

3. **निर्णयात्मक भूमिकायें** :–

(a) **उद्यमी** :– अपनी इस भूमिका में प्रबन्धक सतत रूप से नवीन विचारों हेतु उद्यत रहता है, तथा अपनी इकाई को परिवर्तनशील वातावरण में अनुकूल बनाने का भी प्रयास करता है।

(b) **व्यवधान प्रबन्धक (संचालक)** :– इस भूमिका में प्रबन्धक को अग्नियोद्धा की भांति कार्य करना चाहिये। उसे विभिन्न अनापेक्षित समस्याओं यथा, दीर्घकाल तक जारी रहने वाली हड़ताल, प्रमुख (बड़े) उपभोक्ता का दिवालिया हो जाना, आपूर्तिकर्ता का अपने अनुबन्ध (संविदा) की पूर्ति में असफल हो जाना इत्यादि, के समाधान हेतु प्रयत्नशील रहना चाहिये।

(c) **संसाधन आवंटक** :– अपनी इस भूमिका में प्रबन्धक को अपने अधीनस्थों में कार्य विभाजन तथा प्राधिकार का प्रत्यायोजन करना चाहिये। उसे यह आवश्यतः निर्णीत करना चाहिये कि किसे क्या प्राप्त करना है।

(a) **मध्यस्थ (वार्ताकार)** :– प्रबन्धक को वार्ता (मध्यस्थता) में पर्याप्त समय व्यतीत करना चाहिये। इस प्रकार कम्पनी का सभापति नयी हड़ताल के विषय पर संघ–नेताओं के साथ वार्ता कर सकता है, फोरमैन किसी परिवेदना सम्बन्धी मामले पर कर्मचारियों से वार्ता कर सकता है, इत्यादि।

इसके अतिरिक्त संगठन में कार्यरत विभिन्न प्रबन्धक संगठन के दीर्घावधि/प्रमुख लक्ष्यों के निर्धारण हेतु एक साथ कार्य कर सकते हैं तथा इन्हें प्राप्त करने की योजना निर्मित कर सकते हैं। वे एक–दूसरे को उनके कार्य–निष्पादन में आवश्यक सूचनाओं का आदान–प्रदान में भी साथ–साथ कार्य कर सकते है। इस प्रकार प्रबन्धक संगठन के साथ सम्प्रेषण श्रृंखला के रूप में कार्य करता है।

**पेशेवर प्रबन्धक की विशेषतायें** :–

पेशेवर (व्यावसायिक) प्रबन्धक की विशेषतायें निम्नलिखि हैः–

**1. प्रबन्धक उत्तरदायी एवं हिसाबदेह होते है** :– प्रबन्धक यह देखने के लिये उत्तरदायी होते है, कि कार्य–विशिष्ट सफलता पूर्वक किये गये है, कि नहीं। उनका मूल्यांकन इस आधार पर किया जाता है कि वे लक्षित कार्यों के लिये वे

कितना भली–भांति व्यवस्थित किये गये है। प्रबन्धक अपने अधीनस्थों के कार्य के लिये उत्तरदायी होता है। अधीनस्थों की सफलता या असफलता प्रबन्धक की सफलता या असफलता का प्रत्यक्ष परावर्तन है। संगठन के सभी सदस्य वे भी जो प्रबन्धक नहीं है, अपने कार्य विशेष हेतु उत्तरदायी होते अन्तर यह है कि प्रबन्धक न सिर्फ अपने कार्यों हेतु वरन् अपने अधीनस्थों के कार्यों हेतु भी उत्तरदायी/जवाबदेह होते है।

**2. प्रबन्धक प्रतिर्स्पधी लक्ष्यों एवं तय प्राथमिकताओं में संतुलन स्थापित करते है :–** किसी निर्दिष्ट समय में प्रबन्धक अनेकों संगठनात्मक लक्ष्यों, समस्याओं एवं आवश्यकताओं को सामना करता है, जो कि प्रबन्धक के समय एवं संसाधनों (मानवीय एवं सामग्री) को व्यय करते है। क्योंकि ये संसाधन सदैव सीमित होते है, अतः प्रबन्धक को विभिन्न लक्ष्यों एवं आवश्यकताओं में संतुलन बनाने का प्रयास करना चाहिये।

उदाहरणार्थ कई प्रबन्धक प्रत्येक दिवस के कार्य को वरीयता के क्रम में व्यवस्थित करते हैं, सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य तत्क्षण (तुरन्त) किये जाते है, जबकि निम्न महत्वपूर्ण कार्य बाद में सम्पादित किये जाते है। इस प्रकार प्रबन्धकीय समय का प्रभावी उपयोग किया जाता है।

एक प्रबन्धक को यह अवश्य निर्णय करना चाहिये कि अमुक कार्य कौन करेगा तथा एक उपयुक्त व्यक्ति को ही वह कार्य सौंपना चाहिये। हालां कि आदर्श रूप से प्रत्येक व्यक्ति को वह कार्य आवंटित किया जाना चाहिये जिसे करना वह पसन्द करता है, किन्तु यह सदैव सम्भव नहीं होता है। कभी–कभी व्यक्तिगत योग्यता एक निर्णायक घटक होती है, तथा कार्य उस व्यक्ति को आवंटित किया जाता है, जो उसे करने के लिये सर्वाधिक योग्य होता है। किन्तु कभी–कभी एक अल्प योग्य कर्मचारी को एक सीखने के अनुभव के रूप में कार्य आवंटित किया जाता है। किसी समय सीमित व्यक्ति के अलावां अन्य संसाधन कार्य–आवंटन के निर्णयों को शाषित करते हैं, प्रबन्धक प्रायः मानवीय एवं सांगठनिक आवश्यकताओं के मध्य संघर्षशील रहते है, अतः उन्हें प्राथमिकताओं को चिन्हित करना चाहिये।

**3. प्रबन्धक विश्लेषित एवं सैद्धान्तिक विचारण करते है :–** एक विश्लेषण विचारक बनने हेतु एक प्रबन्धक को किसी समस्या को उसके घटकों में तोड़ने, उन घटकों के विश्लेषण तथा तत्पश्चात एक व्यवहारिक (संभाव्य) समाधान ढूढ़ने में योग्य होना चाहिये। किन्तु यह अधिक आवश्यक है कि प्रबन्धक सैद्धान्तिक विचारक हो। उसे सम्पूर्ण कार्य का अवलोकन करने एवं इसे अन्य कार्यों से सम्बन्धित करने वाला होना चाहिये। किसी कार्य विशेष के बारे में सोचते हुये इसके व्यापक क्रियान्वयन के बारे में सोचना आसान कार्य नहीं है। किन्तु यदि प्रबन्धक को संगठन के लक्ष्य एक सम्पूर्ण रूप में तथा एक इकाई के व्यक्तिगत इकाई के लक्ष्यों के लिये कार्य करना चाहता है तो यह आवश्यक है।

**4. प्रबन्धक मध्यस्थ होते है :–** संगठन मानव निर्मित होते है तथा मनुष्य प्रायः विवाद करते है, अथवा असहमत होते है। इकाई अथवा संगठन के भीतर विवाद मनोबल एवं उत्पादकता दोनों को अल्प कर सकते है तथा वे अप्रिय एवं गड़बड़ी करने वाले दिख सकते है। अतः दक्ष/योग्य कर्मचारी संगठन त्यागने का निर्णय ले लेते है। ऐसी घटनायें संगठन अथवा इकाई के लक्ष्यों में बाधा उत्पन्न करती है,

अतः प्रबन्धक को तत्क्षण मध्यस्थ की भूमिका निभानी चाहिये तथा विवादों को हाथ से परे जाने के पूर्व सुलझा लेना चाहिये। विवाद समाधान हेतु कौशल एवं चतुराई आवश्यक है। विवाद के संचालन में लापरवाह प्रबन्धक कालान्तर में मामले को और गम्भीर (खराब) करने वाले ही सिद्ध होते है।

**5. प्रबन्धक कठिन निर्णयों को लेते है :–** कोई भी संगठन सदैव सुगमता पूर्वक संचालित नहीं हो सकता। उन समस्याओं एवं प्रकारों की कोई सीमा नहीं है, जो घट सकती है। वित्तीय समस्यायें, कर्मचारियों के साथ समस्यायें अथवा सांगठनिक नीतियों के सन्दर्भ में असहमति उनमें से कुछ प्रमुख हैं। प्रबन्धकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे इन कठिन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करें, उसे अपने निर्णयों द्वारा अनुगमित करें भले ऐसा करना अलोकप्रिय हों।

प्रबन्धकीय भूमिकाओं एवं उत्तरदायित्वों का यह वर्णन बताता है कि प्रबन्धकों को अपनी टोपी (हैट) शीघ्रतः (आवर्ती क्रम से) बदलते रहना चाहिये तथा समय विशेष में दी गयी भूमिका का निर्वहन करने हेतु सतर्क रहना चाहिये। उपयुक्त भूमिका जो निभानी है उसको पहचानने एवं शीघ्रतापूर्वक भूमिका परिवर्तित कर लेने की योग्यता एक प्रभावी प्रबन्धक की निशानी है।

## 1.9 प्रबन्ध की महत्ता

प्रबन्ध अल्प प्रयास में (कम प्रयासों के द्वारा) अधिकतम समृद्धि प्राप्त करने से सम्बन्धित है। जहाँ पर समूह प्रयासों को समान लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु निर्देशित किया जाना है, वहां प्रबन्ध आवश्यक होता है। वर्तमान के प्रबन्ध संचेतन (प्रबन्ध जागरूक) युग में प्रबन्ध के बारे में कुछ भी कहना अतिशयोक्ति न होगी। यह कहा जाता है कि प्रबन्ध रहित कोई भी कार्य (कुछ भी) कुछ नहीं (अर्थहीन) होता है।

कुण्टज एवं ओ डोनलः– ने सही प्रेक्षित किया था (आकलन किया था) कि प्रबन्ध से अधिक महत्वपूर्ण मानवीय गतिविधि का कोई क्षेत्र नहीं है, क्योंकि इसका कार्य अन्य व्यक्तियों से कार्य कराना है।

व्यवसाय के क्षेत्र में प्रबन्ध की महत्ता तुलनात्मक रूप से अधिक है। श्रम, पूँजी, एवं कच्चे माल के आंगत प्रबन्ध उत्प्रेरक के अभाव में कभी भी उत्पादक नहीं हो सकते है। अब यह व्यापक रूप से स्वीकार्य है, कि प्रबन्ध किसी भी देश की संवृद्धि (विकास) हेतु एक महत्वपूर्ण घटक है। प्रबन्ध की महत्ता को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से रेखांकित किया जा सकता हैः–

**1. समूह लक्ष्यों की प्राप्ति :–** प्रबन्ध समूह लक्ष्यों को और प्रभावी बनाता है। समूह सम्पूर्णतः अपने उद्देश्यों को तब तक नहीं प्राप्त कर सकता जब तक कि समूह के सदस्यों के मध्य परस्पर सहयोग एवं समन्वयन हो। प्रबन्ध सुदृढ़ संगठन ढ़ाँचे के विकास के द्वारा किसी संगठन में समूह कार्य एवं समूह भावना का सृजन करता है। यह मानवीय एवं सामग्री संसाधनों को एक साथ लाता है तथा संगठन में कार्यरत व्यक्तियों को समूह उद्देश्य प्राप्त करने हेतु अभिप्रेरित करता है।

**2. संसाधनों का अनुकूलतम संदोहण :–** प्रबन्ध सदैव उद्यम के लक्ष्यों/उद्देश्यों की प्राप्ति पर केन्द्रित रहता है। उत्पादन के उपलब्ध संसाधनों को इस प्रकार साथ रखा जाता है कि सभी बर्बादियों एवं अदक्षता की न्यूनतम किया जा सके। प्रेरणादायी नेतृत्व के द्वारा कर्मचारी अपना सर्वश्रेष्ठ निष्पादन (योगदान) देने हेतु अभप्रेरित होते है। प्रबन्धक उच्चतम निष्पादन एवं कुशलता को संचालित करने

वाले वातावरण का निर्माण एवं अनुरक्षण करते है। संसाधनों के कुशलतम संदोहण के द्वारा प्रबन्ध आर्थिक विकास की प्रक्रिया को त्वरित ढ़ंग से सम्पादित करता है।

**3. लागत में कमी** :— गहन प्रतिर्स्पधा के वर्तमान युग में प्रत्येक व्यवसायिक उद्यम को उत्पादन एवं वितरण की लागत कमी करनी चाहिये। केवल वही उपक्रम बाजार में टिक सकते है, जो श्रेष्ठतर गुणवत्ता की वस्तु (उत्पाद) न्यूनतम लागत में उत्पादित कर पायेंगे। प्रबन्ध के सिद्धान्तों का अध्ययन लागत कम करने की कतिपय तकनीकों को जानने में सहायता करता है। उत्पादन नियंत्रण, बजटरी—नियंत्रण, लागत—नियंत्रण, वित्तीय—नियंत्रण, सामग्री—नियंत्रण आदि कुछ प्रमुख लागत कम करने की तकनीके है।

**4. परिवर्तन एवं संवृद्धि (विकास)** :— व्यवसायिक उद्यम सतत परिवर्तनशील वातावरण में संचालित होता है। व्यापार में परिवर्तन अनिश्चितता एवं जोखिम को जन्म देते हैं, तथा विकास हेतु अवसर भी प्रदान करते है। उद्यम को सतत परिवर्तनशील करना होगा। स्वयं को परिवर्तित एवं समायोजित करना होगा। सुदृढ़ प्रबन्धन व्यावसाय की सफलता को सुनिश्चित करने हेतु न केवल उद्यम को ढ़ालता (साँचे में ढ़ालना, आकार देना) है वरन् पर्यावरण को भी परिवर्तित करता है। वर्तमान के केई (अनेक) विशाल व्यावसायिक निगम छोटे (धीमी/विनम्र) स्तर से शुरूआत की थी तथा प्रभावी प्रबन्ध से सतत विकसित होते गये।

**5. व्यवसाय का कुशल एवं सुगम संचालन** :— उत्पादन के विभिन्न साधनों के श्रेष्ठतर नियोजन, सुदृढ़ संगठन एवं प्रभावी नियंत्रण से प्रबन्ध व्यवसाय का कुशल एवं सुगम (सरल) संचालन सुनिश्चित करता है।

**6. उच्च—लाभ** :— किसी उद्यम में लाभ को या तो विक्रय आगम को बढ़ाकर अथवा लागत को कम करके बढाया जा सकता है । विक्रय आगम (राजस्व) बढ़ा पाना सदैव उद्यम के वश में नहीं होता है अर्थात् यह उद्यम के नियंत्रण के परे होता है। प्रबन्धन लागतों को न्यून करके अपना लाभ बढ़ाता है और इस प्रकार भारी विकास एवं संवृद्धि का अवसर प्रदान करता है।

**7. नव प्रवर्तन (नव—मेष) प्रदान करता है** :— प्रबन्ध, उद्यम को नवीन विचार कल्प(ना शक्ति तथा दर्शन प्रदान करता है।

**8. सामाजिक लाभ** :— प्रबन्ध महज व्यवसाय ही नहीं वरन समाज के लिय भी (सम्पूर्णतः) उपयोगी होता है। यह उच्च उत्पादन एवं दुर्लभ (तुच्छ) संसाधनों के अति—कुशल प्रयोग के द्वारा समाज के व्यक्तियों के जीवन—स्तर को उन्नत बनाता है। विभिन्न सामाजिक समूहों के मध्य आत्मिक सम्बन्धों के निर्माण के द्वारा प्रबन्ध समाज में शान्ति व समृद्धि स्थापित करता है।

**9. विकासशील देशों के लिये उपयोगी** :— प्रबन्ध विकासशील देशों यथा भारत, के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। विकासशील देशों में उत्पादकता निम्न व संसाधन सीमित है। यह सत्य ही प्रेक्षित (अवलोकित) किया गया है कि, ''कोई भी देश अल्प—विकसित (अविकसित) नहीं है, वे सिर्फ अल्प—प्रतिबन्धित है।''

**10. सुदृढ़ संगठन संरचना** :— प्रबन्ध उचित संगठन संरचना स्थापित करता है, तथा उच्चस्थ एवं अधीनस्थ के मध्य संघर्षों को समाप्त करता है। यह सहयोग एवं परस्पर समझदारी की भावना के विकास में सहायता करता है। प्रबन्ध संगठन में अनुकूल वातावरण का निर्माण करने में सहायक होता है।

## 1.10 सारांश

प्रबन्ध एक शक्ति है जो विभिन्न संसाधनों को एकीकृत करती है, तथा प्रक्रिया है जो उन्हें साथ लाती है, तथा सांगठनिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु उनका समन्वयन करती है। प्रबन्ध कला व विज्ञान दोनों है। यह अयथार्थ विज्ञान है। तथापि इसके सिद्धान्त जो व्यवहार (अभ्यास) से विख्यात है, सर्वाधिक अनुप्रयोग के है। प्रबन्ध के तीन स्तर है, उच्च, मध्यम एवं निम्न। संगठन में विभिन्न स्तरों पर कार्यरत प्रबन्धकों के लिये विभिन्न प्रकार के कौशल आवश्यक है, तथा वे इनका प्रयोग भी करते है। निम्न स्तर के प्रबन्धक उच्च स्तर प्रबन्धक की तुलना में प्रायः तकनीकी कौशल का अधिक प्रयोग करते है। जबकि उच्च स्तर के प्रबन्धक सैद्धान्तिक कुशलता (कौशल) का अधिक मात्रा में प्रयोग करते है। मानव कौशल, प्रबन्ध के समस्त स्तरों में महत्वपूर्ण है।

## 1.11 शब्दावली

**प्रबन्धः**— प्रबन्ध अन्य से तथा अनौपचारिक समूहों से कार्य करवाने की कला है।

**उच्च प्रबन्ध** :— किसी संगठन में प्राधिकार का उच्चतम (अन्तिम) स्त्रोत।

**प्रशासन** :— प्रशासन नीतियों का निर्माण है तथा एक अभिनिश्चियात्मक (निर्धारण) किया है।

**सैद्धान्तिक कौशल** :— यह संगठन के व्यापक एवं दूरदर्शिता पूर्ण अवलोकन की प्रबन्धक की योग्यता है।

**नियोजन** :— कार्य अथवा इकाई के उद्देश्यों का निर्धारण।

## 1.12 बोध प्रश्न

**A. रिक्त स्थान की पूर्ति करें :—**

1. प्रबन्धक एक साधन है (घटक है) ..................... पूँजी, श्रम एवं भूमि को साथ रखने की।
2. प्रबन्ध की सफलता .......................... सांगठनिक लक्ष्यों की प्राप्ति किस मात्र में हुयी।
3. ....................... प्रथम प्रबन्ध—विचारक थे जिन्होंने प्रबन्ध के विज्ञान के रूप में विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।
4. प्रबन्ध एक सामाजिक विज्ञान है, तथा संगठन में व्यक्तियों के ...................... से सरोकार रखता है।

B. **सत्य / असत्य :—**

1. प्रबन्ध लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु कर्मचारियोयं के प्रयासों को समन्वित करता है।
2. प्रबन्ध नीति—निर्माण से तथा प्रशासन, प्रबन्ध द्वारा निर्मित नीतियों के क्रियान्वयन से सम्बन्धित है।
3. परिचालनात्मक प्रबन्ध 'विचार' कार्य से सम्बन्धित है यथा नीतियों की स्थापना, मानकों का निर्धारण एवं नियोजन।
4. अधीनस्थ की सफलता अथवा असफलता प्रबन्ध की सफलता अथवा असफलता का प्रत्यक्ष परावर्तन है।

## 1.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

A. 01. उत्पादन; 02. मापित, 03. एफ0डब्लू0 टेलर, 04. व्यवहार

B. 01. सत्य; 02. असत्य, 03. असत्य, 04. सत्य

## 1.14 स्वपरख प्रश्न

1. ''प्रबन्ध के अतिरिक्त मानवीय गतिविधि का कोई क्षेत्र महत्वपूर्ण नहीं हैं, क्योंकि इसका कार्य अन्य से कार्य करवाना है।'' स्पष्ट कीजिये।
2. ''प्रबन्ध कला एवं विज्ञान दोनों है!'' उचित उदाहरणों से इस कथन की व्याख्या कीजिये।
3. प्रबन्ध को परिभाषित कीजिये! यह प्रशासन से किस प्रकार भिन्न है?
4. ''प्रबन्ध के स्तर'' से आप क्या समझते है? अपने किसी परिचित संगठन के सन्दर्भ में इसकी व्याख्या कीजिये।
5. प्रबन्ध की प्रकृति एवं क्षेत्र का वर्णन कीजिये।
6. प्रबन्ध के क्या कार्य है? क्या प्रबन्ध का अधिक ज्ञान सफल प्रबन्धक बनने के लिये पर्याप्त है?

## 1.15 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Kootnz & O'Donnell, Principles of Management.
2. J.S. Chandan, Management Concepts and Strategies.
3. Arun Kumar and R. Sharma, Principles of Business.
4. Management. Sherlerkar and Sherlerkar, Principles of Management.
5. Tripathi and Reddy, Principles of Management.
6. Kimball and Kimball, Principles of Industrial Organisation.

# इकाई–2 प्रबन्ध के सिद्धान्त, वाद एवं कार्य

**इकाई की रुपरेखा**


2.1 प्रस्तावना
2.2 प्रबन्ध के कार्य
2.3 प्रबन्ध के सिद्धान्त
2.4 प्रबन्ध के वाद (मत)
2.5 सारांश
2.6 शब्दावली
2.7 बोध प्रश्न
2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.9 स्वपरख प्रश्न
2.10 सन्दर्भ पुस्तकें


## उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- प्रबन्ध के कार्यों की व्याख्या कर सकें ।
- प्रबन्ध के सिद्धान्त के वर्णन कर सकें ।
- प्रबन्ध के विका में प्रमुख योगदान करने वाले को जान सकें ।

## 2.1 प्रस्तावना

प्रबन्ध व्यवहार उतना ही पुराना है जितना कि मानव सभ्यता, जब लोगों ने समूह में साथ रहना आरम्भ किया, तब प्रत्येक मानव–समूह हेतु प्रबन्ध की आवश्यकता महसूस की गयी तथा मानव का इतिहास सांगठनिक गतिविधियों (कार्यों) से भरा हुआ है। यहाँ तक कि हमारे समाज की सबसे छोटी इकाई, परिवार, को भी प्रबन्ध की आवश्यकता होती है। गृह–स्वामी उच्च–प्रबन्धन की भांति तथा गृहणी गृह–प्रबन्धक के रूप में कार्य करते है। वह किये जाने वाले कार्यों के बारे में योजना बनाती है, कार्य कैसे किया जाना है, कौन कार्य करेगा तथा कार्य अच्छे ढंग से किये गये कि नहीं। वह प्रबन्ध के समस्त चारों कार्यों, बजट एवं दैनदिन कार्यों का नियोज, वस्तुओं एवं विभिन्न व्यक्तियों के कार्यों का सांगठनीकरण, गृह–सेवकों एवं परिवार के अन्य सदस्यों को निर्देशित करना, तथा परिवार के विभिन्न सदस्यों के कार्यों को नियन्त्रण का सम्पादन करती है।

परिवार मानव समूह का एक महत्वपूर्ण अनौपचारिक प्रकार है। यहां तक कि यदि यह अनौपचारिक मानव समूह उचित ढंग से प्रबन्धित नहीं किया गया तो यह भ्रम एवं अकर्मण्यता की ओर अग्रसर हो जायेगा।

पिछले पाँच दशकों में प्रबन्ध ने एक विषय के रूप में अकादमिक एवं पेशेवरों को काफी हद तक आकर्षित किया है। इस घटना के पीछे मूल कारण व्यक्ति के जीवन में दिन–प्रतिदिन बढ़ती प्रबन्ध की महत्ता है। वर्तमान में समाज में विशाल व जटिल संगठन अस्तित्व में है, जिसमें बहुत से व्यक्ति एक साथ कार्य करते है। पुराने स्वामी व सेवक की तुलना में आज प्रबन्ध एवं प्रबन्धित (जिनका प्रबन्ध किया जाता है) के मध्य के सम्बन्ध परिवर्तित हो गये है, जो इसे और जटिल बनाते है। व्यक्ति अपने कार्य बहुत अपेक्षायें रखते है। समस्त कार्यों के

उचित रीति से सम्पादन हेतु व्यक्ति कुछ विधियां एवं तकनीक विकसित करने का प्रयास करते है। इन प्रयत्नों ने प्रबन्ध के एक पृथक विषय के रूप में विकसित होने में सहायता की है। यह समय के साथ प्रभावी ढ़ंग से विकसित हुआ है, तथा आज यह सर्वाधिक आदरणीय विषय के रूप में प्रस्तुत हुआ है। वर्तमान में प्रबन्ध का अध्ययन मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण सत्य (तथ्य) है।

## 2.2 प्रबन्ध के कार्य

प्रबन्ध प्रक्रिया बताती है कि संगठन में प्रत्येक प्रबन्धक अन्य से कार्य करवाने के कार्य निष्पादन करते है। हालांकि वे कौन से कार्य है, जो प्रबन्ध प्रक्रिया में समाहित होते है, यह स्पष्ट नहीं है, तथा इस विषय में विभिन्न मत प्रस्तुत किये गये है। प्रबन्ध के कार्यों की संख्या विद्वानों (लेखकों)– विद्वानों के अनुसार परिवर्तित (भिन्न होती रहती) होती रहती है जो उसे 08 कार्यों के बीचव होती है। प्रबन्धकीय कार्यों के विषय में लेखको के मध्य अधिक असहमति है।

**न्यूमन एवं समर :–** ने केवल चार कार्यों–सांगठनीकरण, नियोजन, नेतृत्व एवं नियंत्रण को मान्यता दी है।

**हेनरी फ्योल :–** ने प्रबन्ध के पाँच कार्यों यथा नियेजन, संगठनीकरण, समादेशन (आदेश) समन्वयन, एवं नियंत्रण की पहचान की है।

**लूथर गुलिक एवं उर्विकः–** ने पोस्डकार्ब (PoSDCoRB) शब्द (पद) के अन्तर्गत सात कार्यों का वर्णन किया है, जो क्रमशः नियोजन, संगठनीकरण, स्टाफिंग, निर्देशन, समन्वयन, प्रतिवेदनीकरण तथा बजटिंग है।

**वारेन हेन्स एवं जोसेफ मैसीः–** ने प्रबन्ध के कार्यों को, निर्णय, संगठनीकरण, स्टाफिंग, नियोजन, नियंत्रण, सम्प्रेषण एवं निर्देशन में वर्गीकृत किया है।

**कूण्टज एवं ओडोनलः–** ने इन कार्यों को नियोजन, संगठनीकरण, स्टाफिंग, निर्देशन एवं नियंत्रण में विभाजित किया है। **अर्नेस्टडेल** ने नवोन्मेष (नव प्रवर्तन) को प्रवर्तित किया/सुझाया तथा इसे अन्य कार्यों के अतिरिक्त महत्वपूर्ण प्रबन्धकीय कार्य बताया। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि प्रबन्ध के विभिन्न कार्यों के सम्बन्ध में कोई सहमति नहीं है। ये कार्य समय के साथ विधिक प्रकार से व्यवहार में लिये गये। **इर्विन विलियम्स** ने समय के साथ (विभिन्न समयावधि में) विकसित प्रबन्धकीय कार्यों को सारांशित किया।

अपने उद्देश्य के लिये हम निम्नलिखित 06 कार्यों को प्रबन्धक के कार्य के रूप में व्यकत कर सकते है, नियोजन, संगठनीकरण, स्टाफिंग, निर्देशन, समन्वयन एवं नियंत्रण।

**1. नियोजन :–** नियोजन प्रबन्ध का प्राथमिक कार्य है। नियोजन लक्ष्य स्थापना एवं उन लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु उपयुक्त कार्य–विधि अपनाने की प्रक्रिया है। यदि व्यक्ति समूह में कार्य कर रहे है, तो उन्हें प्रभावी निष्पादन करना होगा, उन्हें ज्ञात होना चाहिये कि क्या किया जाना है? जो कार्य किया जाना है, उसमें उन्हें क्या कार्य–निष्पादन करना है? तथा कब किया जाना है। नियोजन क्या, कैसे तथा कब किया जाना है, से सम्बन्धित है। यह भावी उद्देश्यों तथा उनकी प्राप्ति हेतु उपयुक्त कार्य विधि के वर्तमान में निश्चयन (निणर्य) से सम्बन्धित है। सांगठनिक, नेतृत्व तथा नियंत्रण सभी नियोजन कार्य से ही व्युत्पत्ति हुये है।

संगठन के लिये लक्ष्यों का चयन नियोजन का प्रथम चरण है। संगठन की प्रत्येक उप–इकाई उसके खण्ड, विभाग के लिये शीघ्र लक्ष्य स्थापित किये जाते है। एक बार ये लक्ष्य निर्धारित हो गये तब लक्ष्यों की व्यवस्थित ढ़ंग से प्राप्ति हेतु कार्यक्रम बनाये जाते है।

संगठनात्मक उद्देश्य उच्च–प्रबन्धन द्वारा संगठन के मूल लक्ष्य, ध्येय, वातावरणीय घटकों, व्यावसायिक पूर्वानुमानों तथा उपलब्ध एवं सम्भावित लक्ष्यों के सन्दर्भ में निश्चित किये जाते है। ये उद्देश्य दीर्घावधि एवं अल्पावधि, दानों, प्रकार के होते है। ये खण्डीय, विभागीय, अनुभागीय तथा व्यक्तिगत उद्देश्य अथवा लक्ष्यों में विभाजित होते है। इसके तुरन्त पश्चात प्रबन्ध के विधिक स्तरों एवं संगठन के विभिन्न वृत्त–खण्डों में अपनायी जाने वाली (लागू होने वाली) नीतियों, एवं कार्य–विधियों को विकसित किया जाता है। नीतियां, विधियां एवं नियम निर्णयन ढ़ांचा प्रदान करते है तथा इन निर्णयों को लागू करने हेतु पद्धति एवं क्रम प्रदान करते है।

प्रत्येक प्रबन्धक इन समस्त नियोजन कार्यों को करता है, अथवा इनके निष्पादन में सहयोग करता है। कुछ संगठनों में जो कि परम्परागत विधि से प्रबन्धित होते है, अथवा लघु आकार के है, नियोजन प्रायः उद्देश्यपूर्वक एवं व्यवस्थित ढ़ंग से नहीं किया जाता किन्तु फिर भी किया जाता है। योजनायें इन प्रबन्धकों के मस्तिष्क में रहती है न कि स्पष्ट अथवा संक्षिप्त रूप से अभिव्यक्त होती है। वे धुंधली (अस्पष्ट) हो सकती है, न कि स्पष्ट किन्तु वे सदैव रहती है। नियोजन, इस प्रकार प्रबन्ध का परम मूल कार्य है। यह समस्त प्रकार के संगठन में, सभी प्रन्धकों द्वारा पदसोपान के समस्त स्तरों में निष्पादित होता है।

सम्बन्ध एवं समय नियोजन कार्य का केन्द्र है। नियोजन एच्छिक भावी परिस्थितियों के चित्र को प्रस्तुत करता है यथा दिये गये वर्तमान में उपलब्ध संसाधन, पूर्व–अनुभव इत्यादि। नियोजन का कार्य सभी प्रबन्धकों द्वारा संगठन के समस्त स्तरों पर सम्पादित होता है। योजनाओं के द्वारा प्रबन्धक यह खाका खींचते है, कि सफल होने के लिये क्या किया जाना आवश्यक है। केन्द्र–बिन्दु में योजनायें भिन्न–भिन्न हो सकती है, किन्तु ये सभी अल्पावधि या दीर्घावधि में सांगठनिक लक्ष्यों की प्राप्ति से सम्बन्धित नहीं हैं। अन्ततः यह कहा जा सकता है, कि संगठन की योजनायें संगठन के वातावरण में परिवर्तनों की तैयारी एवं उनसे निबटने हेतु प्राथमिक उपकरण (औजार) है।

**<u>2. सांगठनीकरणः–</u>** लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु उद्देश्यों एवं योजनाओं के निर्माण के पश्चात् प्रबन्धकों को अश्वय ही एक ऐसा संगठन अभिकल्पित एवं निर्मित (विकसित) करना चाहिये जो लक्ष्यों की प्राप्ति में सक्षम (योग्य) हो। इस प्रकार सांगठनीकरण का उद्देश्य कार्य एवं प्राधिकार सम्बन्ध के ढ़ांचे की रचना करना होता है। जो उनके उद्देश्यों की पूर्ति कर सकें। सांगठनीकरण संगठन के सदस्यों के मध्यम कार्य व्यवस्थित करने एवं वितरित करने की प्रक्रिया है, जिससे वे (सदस्य) संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त कर सकें।

**<u>स्टोनर के अनुसार :–</u>** ''सांगठनीकरण विशिष्ट लक्ष्यों या लक्ष्य समुच्चय की प्राप्ति हेतु दा या दो से अधिका व्यक्तियों को जो साथ कार्य करते हों, व्यवस्थित करने की प्रक्रिया है।''

सांगठनीकरण कार्य उन कार्यों को लेता है, जो नियोजन के समय चिन्हित किये गये थे, तथा उन्हें, संगठन के भीतर व्यक्तियों एवं समूहों को सौंपता है, जिससे नियोजन द्वारा निश्चित उद्देश्य प्राप्त किये जा सकत है। सांगठनीकरण इस प्रकार योजनाओं को कार्य रूप में (क्रिया/कार्यवाही) परिवर्तित करने के कार्य से सम्बन्धित है। सांगठनीकरण को निर्माण में विकसित विचारों एवं नियोजन तथा इन विचारों की प्राप्ति हेतु विशिष्ट साधनों की प्राप्ति को जोड़ने वाले सेतु के रूप में देखा जा सकता है।

सांगठनीकरण कार्य एक सांगठनिक ढ़ांचा भी प्रदान करता है, जो संगठन को प्रभावी ढ़ंग से कार्य करने में सक्षम बनाता है। प्रबन्धक को संगठनात्मक अभिकल्प प्रक्रिया के द्वारा संगठनात्मक संरचना को उसके लक्ष्यों एवं संसाधनों से मिलान करना चाहिये। इस प्रकार सांगठनीकरण में निम्नलिखित उप–कार्य सम्मिलित होते हैः–

A. उद्देश्य की प्राप्ति एवं योजनाओं के क्रियान्वयन हेतु आवश्यक कार्यों (गतिविधियों) की पहचान करना।

B. कार्यों को स्व–विषयवस्तु कार्य के रूप में समूहित करना।

C. कर्मचारियों को कार्य सौपना।

D. अधिकारों का प्रत्यायोजन इस प्रकार करना कि कर्मचारी अपने कार्य के निष्पादन एवं अनके कार्यों के निष्पादन में आवश्यक संसाधनों को समादेशित करने में सक्षम (योग्य) हो सकें।

E. सम्बन्धों के समन्वयन हेतु नेटवर्क (संजाल) की रचना करना।

सांगठनीकरण प्रक्रिया से संगठन का ढ़ांचा फलित होता है। इसके अन्तर्गत संगठनात्मक पद (प्रस्थिति) कार्यों एवं उत्तरदायित्वों को संगत कराना, तथा भूमिकाओं एवं प्राधिकार–उत्तरदायित्व सम्बन्ध का संजाल सम्मिलित होते हैं। सांगठनीकरण इस प्रकार उद्यम के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु मानवीय, भौतिक एवं वित्तीय संसाधनों को उत्पादक सम्बन्ध के रूप में संयुक्त एवं एकीकृत करने की मूल प्रक्रिया है। इसका उद्देश्य कर्मचारियों एवं अंर्त सम्बन्धित कार्यों को व्यवस्थित रूप में संयुक्त करना है, जिससे संगठन के कार्य का निष्पादन समन्वयित ढ़ंग से हो सके तथा समस्त प्रयत्नों एवं कार्यों को एक साथ सांगठनिक लक्ष्यों की दिशा में खींचा जा सकें।

<u>3. स्टाफिंगः–</u> स्टाफिंग प्रबन्ध की सतत एवं प्राणाधार (महत्वपूर्ण) प्रक्रिया है। उद्दश्यों के निर्धारण, उनकी प्राप्ति हेतु रणनीतियों, नीतियों, कार्यक्रमों, प्रक्रियाओं, एवं विधियों के निर्माण तथा इन सबके क्रियान्वयन हेतु कार्य–विधियों (कार्यों की) पहचान तथा इन्हें कार्य रूप में समूहित करने के पश्चात प्रबन्ध प्रक्रिया का अगला तार्किक कदम (चरण) कार्यों में व्यक्तियों को भरने हेतु उपयुक्त कार्मिकों को जुटाना (प्राप्त करना, आकर्षित करना) होता है। चूंकि संगठन की कुशलता एवं दक्षता प्रमुखतः अपने कार्मिकों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है और क्योंकि यह प्रबन्ध का एक प्राथमिक कार्य है, कि वह विभिन्न पदों को भरने के लिये योग्य एवं प्रशिक्षित व्यक्ति को प्राप्त करें, स्टाफिंग को प्रबन्ध के एक विशिष्ट (पृथक) कार्य के रूप में पहचाना (माना) गया है। स्टाफिंग के अन्तर्गत निम्नलिखित उप कार्य सम्मिलित होते हैः–

A. श्रम–शक्ति नियोजन– इसके अन्तर्गत आवश्यक कार्मिकों की संख्या एवं प्रकार का निर्धारण सम्मिलित है।

B. भर्ती– उद्यम में कार्य पाने (प्राप्त करने) हेतु संभावित कर्मचारियों को आकर्षित करने हेतु।

C. विचारधीन कार्यों हेतु सर्वाधिक उपयुक्त व्यक्तियों का चयन करना।

D. पदस्थापन, प्रवर्तन (अधिष्ठानपन) एवं उन्मुखीकरण।

E. स्थानान्तरण, पदोन्नति, अवसान (निष्कासन) एवं नौकरी से मुक्त करना।

F. कर्मचारियो का प्रशिक्षण एवं विकास।

जैसे–जैसे सांगठनिक प्रभावशीलता में मानव घटक का महत्व बढ़ता जा रहा है, (सराहा/पहचाना जाना) वैसे–वैसे स्टाफिंग प्रबन्ध के एक विशिष्ट (पृथक) कार्य के रूप में स्वीकृति प्राप्त कर रहा है। यह करने की आवश्यकता नहीं है, कि कोई भी संगठन अपने व्यक्तियों से बेहतर नहीं हो सकता है तथा प्रबन्धकों को अन्य किसी कार्य की ही भांति स्टाफिंग के कार्य को सावधानीपूर्वक, एवं ध्यान से करना चाहिये।

**4. निर्देश :–** निर्देशन, कर्मचारियों को दक्षतापूर्वक निष्पादन करने संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति में उनके अनुकूलतम योगदान हेतु नेतृत्व (मार्ग दर्शन) करने का कार्य है। अधीनस्थों को सौंपे गये कार्य को स्पष्टतः वर्णित किया जाना चाहिये। कार्य–निष्पादन में उन्हें मार्ग दर्शन प्रदान किया जाना चाहिये तथा अपने अनुकूलतम (सर्वश्रेष्ठ) को प्रदान करते हुये उत्साह एवं प्रसन्नता के साथ कार्य करने को अभि प्रेरित किया जाना चाहिये। निर्देशन कार्य के अन्तर्गत ये उप–कार्य समाहित होते हैः–

A. सम्प्रेषण;

B. अभिप्रेरण;

C. नेतृत्व;

एक बार उद्देश्यों को निर्मित हो जाने तथा सांगठनिक ढ़ांचे के अभिकल्पित होने एवं स्टाफिंग कार्य होने के पश्चात अगला चरण आरम्भ होता है, जो है उद्देश्यों की ओर बढ़ना। निर्देशन इस उद्देश्य की पूर्ति करता है। यह कर्मचारियों को आवश्यक कार्य सम्पादन हेतु निर्देशन, प्रभावित करने, तथा अभिप्ररित करने के कार्य को समाहित करता है।

नियुक्त सर्वश्रेष्ठ मानव–संसाधन निष्क्रिय (निष्प्रयोजन, अकार्यशील, अप्रभावी) रहेंगे, यदि उन्हें संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सही दिशा में अभिप्रेरित एवं मार्गदर्शित नहीं किया जायेगा। प्रबन्धको का नेतृत्व व्यक्तियों को (अन्य को) नियोजन एवं सांगठनीकरण से उत्पन्न (उपजे, जन्में) भविष्य का अनुसरण (अनुगमन) करने हेतु राजी करता है। उचित वातावरण के निर्माण से प्रबन्धक कर्मचारियों को अपना सर्वश्रेष्ठ योगदान देने में सहायता करता है।

संगठनों में प्रभावी नेतृत्व एक बहुमूल्य योग्यता तथा कौशल है, जो कई प्रबन्धक विकसित करने में कठिनाई का अनुभव करते है। इस योग्यता हेतु कार्य–उन्मुख क्षमता (सामार्थ्य) तथा व्यक्तियों को सम्प्रेषित करने, समझने एवं अभिप्रेरित करने की योग्यता आवश्यक है।

**5. समन्वयनः–** समन्वयन संगठन के विभिन्न भागों के मध्य इस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करने का कार्य है, जिससे उन सभी को सांगठनिक उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में एक साथ लाया (रखा/खींचा) जा सके। इस प्रकार यह समस्त संगठनात्मक निर्णयों, परिचालनों कार्यों (गतिविधियों) तथा प्रयासों को इस प्रकार बांधने (गूथने) की प्रक्रिया है जिससे संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सके।

समन्वय प्रक्रिया के महत्व को पुरजोर तरीके से **मेरी पार्कर फोले** द्वारा रेखांकित किया गया है। उनके विचार से, ''प्रबन्धक को सुनिश्चित करना चाहिये कि उसके संगठन के सभी भाग समन्वयित है, अतः अपने समायोजन कार्यों एवं निकटता से बंधी गतिविधियों श्रृंखलित एवं एक साथ जोड़ी गयी, अंर्त सम्बन्धित क्रिया जो एक कार्यकारी इकाई बनाती है, वह पृथक टुकड़ों का ढ़ेर नहीं है, वरन् मैं कहना चाहूँगी कार्यात्मक समष्टि अथवा सम्पूर्णात्मक एकता'' प्रबन्ध के कार्य के रूप में समन्वय निम्नलिखित उप–कार्यों को समाहित करता हैः–

A. प्राधिकार– उत्तरदायित्व सम्बन्ध की स्पष्ट परिभाषा।

B. निर्देश की एकता।

C. आदेश की एकता।

D. प्रभावी सम्प्रेषण।

E. प्रभावी नेतृत्व।

**6. नियंत्रण :–** अंत में प्रबन्धक को निश्चित होना चाहिये कि संगठन के सदस्य संगठन को उसके द्वारा वर्णित (कथित/निर्धारित) उद्देश्यों की ओर अग्रसर (ले जाना) कर रहे है। यह संगठन की नियंत्रण प्रक्रिया है। नियंत्रण यह सुनिश्चित करने की प्रक्रिया है, कि वास्तविक गतिविधियां (कार्य) नियोजित गतिविधियों के अनुसार ही सम्पादित हो रही है। नियंत्रण के अन्तर्गत चार प्रमुख तत्व सम्मिलित होते हैं, जो निम्नलिखित हैः–

A. निष्पादन मानकों की स्थापना।

B. वर्तमान निष्पादन का मापन।

C. वर्तमान निष्पादन की स्थापित मानकों से तुलना।

D. सुधारात्मक कार्यवाही करना, यदि विचलन ज्ञात होता है तो।

नियंत्रण से तात्पर्य यह है कि निष्पादन के उद्देश्य, लक्ष्य, एवं मानक अस्तित्व में है, तथा कर्मचारी एवं उनकें उच्चस्थों को ज्ञात हैं। यह एक लोचशील एवं गतिक संगठन की ओर संकेत करता है, जो उद्देश्यों, योजनाओं, कार्यक्रमों, रणनीतियों, नीतियों, सांगठनिक अभिकल्पों, स्टाफिंग एवं व्यवहार, नेतृत्व इत्यादित में परिवर्तन की अनुमति देता है, यह इसके कर्मचारियों के लिये असामान्य बात नहीं है, कि वे उपरोक्त प्रबन्ध के विभिन्न आयामों में से किसी एक या अधिक के कारण पूर्व–निर्धारित मानकों को प्राप्त करने में असफल हो जायें।

यह ध्यान दिया जा सकता है कि हालांकि प्रबन्ध के कार्यों को एक अनुक्रम–नियोजन, संगठनीकरण, स्टाफिंग, निर्देशन, समन्वयन एवं नियंत्रण में विचारित किया जाता है, किन्तु वे एक अनुक्रमिक व्यवस्था में सम्पादित नहीं किये जाते है। प्रबन्ध एक एकीकृत प्रक्रिया है, तथा यह कठिन है, कि इसके कार्यों को

एकदम से (सफाई से) अलग–अलग सन्दूकों में व्यवस्थित किया जा सके। प्रबन्ध के कार्य संगठित होने की प्रवृत्ति रखते है, तथा कभी–कभी यह कठिन होता है, कि एक कार्य को दूसरे पृथक (अलग) किया जा सके।

उदाहरणार्थः– जब एक उत्पादन प्रबन्धक अपने अधीनस्थ के साथ कार्य–समस्या विमर्शित कर रहा है, तो यह कह पाना कठिन है, कि वह मार्गदर्शन कर रहा है, विकसित कर रहा है, अथवा सम्प्रेषित कर रहा है, या इन समस्त कार्यों को एक साथ कर रहा है। इसके अतिरिक्त प्रकबन्धक प्रायः एक समय में ही एक से अधिक कार्यों को सम्पादित करते है।

नियंत्रण प्रक्रिया के द्वारा प्रबन्धक संगठन को पथ (रास्ते) पर रखते है। नियंत्रण कार्य के बिना बन्य कार्य अपना औचित्य खो देंगे। यदि समस्त गतिविधियां (कार्य) उचित रूप से नियोजित संगठित, एवं निर्देशित है, किन्तु गतिविधियों पर कोई नियंत्रण नहीं है, तो इसकी पूर्ण सम्भावना है, कि संगठन नियोजित लक्ष्यों को नहीं प्राप्त कर सकेगा। नियंत्रण कार्य हमे विचलनों की जानकारी करने में सहयोग करता है, किन्तु इन विचलनों का कारण तथा लिये जाने वाले सुधारात्मक कार्य प्रबन्धक के ऊपर निर्भर करते है। अतः प्रबन्धकों की व्यक्तिगत योग्यता नियंत्रण कार्य को प्रभावी अथवा अ–प्रभावी बनाती है।

## 2.3 प्रबन्ध के सिद्धान्त

प्रबन्ध के सिद्धान्तों की एक शाखा (निकाय) आधुनिक प्रबन्ध के पिता हेनरी फ्योल द्वारा विकसित की गयी। फ्योल ने अपने प्रबन्धक के रूप में प्राप्त अनुभव को सिद्धान्त रूप में व्यक्त किया (लिखा)। यद्यपि उन्होंने प्रबन्ध के एकीकृत सिद्धान्त को नहीं विकसित किया किन्तु उनके सिद्धान्त आश्चर्यजनक ढ़ंग से समकालीन प्रबन्ध सिद्धान्तों के सुर (ध्वनि) में है।

फ्योल ने विचार किया (संघटित करना, विचार रखना) कि एक एकल प्रशासनिक सिद्धान्त है, जिसके सिद्धान्त समस्त प्रबन्ध परिस्थितियों में प्रयोग किये जा सकते है, यह मायने नहीं रखता कि किस प्रकार के संगठन का प्रबन्ध किया जा रहा है। इसे उन्होने 'सार्वभमिकता' (विश्व व्यापकता) का शीर्षक दिया। तथापि उन्होंने कहा कि (जोर दिया/बल दिया) उनके सिद्धान्त अचल (अपरिवर्तनशील) विधि नहीं है, किन्तु आवश्यकतानुसार (यथा मांग की दशा में) **'अंगूठे के नियम'** के रूप में प्रयुक्त किये जा सकते है। फ्योल ने मत दिया कि औद्योगिक उद्यम के कार्यों (गतिविधयों) को 06 वर्गों में विभाजित (समूहित) किया जा सकता है।

A. तकनीक (उत्पादन)।

B. वाणिज्यक (क्रय–विक्रय एवं विनिमय)

C. वित्तीय (पूँजी के अनुकूलतम उपयोग की खोज एवं करना)

D. सुरक्षा (सम्पत्ति एवं व्यक्तियों की सुरक्षा)

E. लेखांकन (सांख्यिकीय भी समाहित)

F. प्रबन्धकीय।

उन्होंने अपना अधिकांश ध्यान प्रबन्धकीय गतिविधि पर दिया।

इन्होंने प्रबन्ध के निम्नलिखित चौदह (14) सिद्धान्त विकसित किये जो समस्त प्रकार के संगठनों के लिय मूलभूत हैः–

1. **प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व सम्बन्धित है:–** फ्योल के मतानुसार प्राधिकार, उत्तरदायित्व से प्रवाहित होता है। वे प्रबन्धक जो अन्य व्यक्तियों पर प्राधिकर स्थापित करते है, उन्हें निर्णय एवं परिणामों का उत्तरादयित्व वहन (उठाना) चाहिये। उन्होंने प्राधिकार को उत्तरदायित्व की स्वाभाविक परिणाम (उपनिगमन) के रूप में पहचाना है। प्राधिकार, अधिकारित एवं व्यक्तिगत, दोनों होता है।

अधिकारिक प्राधिकार संगठन में प्रबन्धक के पद तथा पदसोपान में स्थिति तथा व्यक्तिगत प्राधिकार बुद्धिमतः अनुभव, नैतिक मूल्य, पूर्व सेवायें इत्यादि से संयोजित एवं चालित होता है।

कोइ भी प्रबन्धक उत्तरदायित्व विहीन प्राधिकार नहीं रखेगा के सिद्धान्त का उप सिद्धान्त यह है, कि जो लोग उत्तरदायित्व धारण किये है, उन्हें अवश्य ही आनुपातिक प्राधिकार प्रदान किये जाने चाहिये जिससे कि वे अन्य पर कार्यवाही आरम्भ करने तथा उनके कार्यों के निष्पादन हेतु आवश्यक संसाधनों के समादेशन में समर्थ (सक्षम) हो सकें। उत्तरदायित्व एवं प्राधिकार के सम्बन्ध का यह पहलू भारत में विशेषकर के महत्वूपर्ण है जहाँ प्राधिकार प्रबन्ध की उच्च टोली (विभाग) पर संकेन्द्रित होने को अग्रसर होता है।

2. **आदेश की एकता :–** इस सिद्धान्त के अनुसार एक कर्मचारी का सिर्फ एक स्वामी होना चाहिये तथा उसे सिर्फ उसी से आदेश प्राप्त होना चाहिये। फ्योल ने पाया कि (अवलोकित किया) यदि इस सिद्धान्त का उल्लंघन किया गया तो प्राधिकार कमजोर हो जायेगा, अनुशासन खतरे में पड़ जायेगा, क्रम अव्यवस्थित हो जायेगा तथा स्थायित्व भय युक्त हो जायेगा। दोहरा आदेश संघर्ष का (विवाद) स्थायी स्त्रोत है। इसलिये प्रत्येक संगठन में प्रत्येक अधीनस्थ के ऊपर एक ही वरिष्ठ (उच्चस्थ) होना चाहिये, जिसके आदेश का उसे पालन करना हो।

3. **निर्देश की एकता :–** इसका आशय यह है, कि समस्त प्रबन्धकीय एवं परिचालन कार्य (गतिविधियाँ) जो पृथक (विशिष्ट/विशेष) समूहों को एक (समान) उद्देश्य से जोड़ती है, एक शीर्ष, एक योजना के द्वारा निर्देशित होनी चाहिये। फ्योल के अनुसार समान उद्देश्य रखने वाली विभिन्न गतिविधियो के लिये (समूह कार्य, कार्य के एक समूह) एक शीर्ष, एक नियोजन होना चाहिये।

हाँलांकि इसका अर्थ यह कदापि नहीं है, कि समस्त निर्णयों का निर्देशन एक व्यक्ति द्वारा ही किया जाना चाहिये।

उदाहरणार्थः– समस्त गतिविधियाँ (कार्य) यथा उत्पाद रणनीति, एवं नीति, विज्ञापन एवं विक्रय–संवर्द्धन, वितरण–श्रृंखला नीति, उत्पाद–मूल्यन नीति, विपणन शोध इत्यादि एक प्रबन्धक के अन्तर्गत होनी चाहिये तथा एक एकीकृत योजना के द्वारा निर्देशित होना चाहिये। यह कार्यों की एकता, शक्तियों के समन्वयन तथा प्रयत्नों के केन्द्रण हेतु आवश्यक है। इस सिद्धान्त का उल्लंघन कार्यों एवं प्रयत्नों के विखण्डन तथा संसाधनों के अपव्यय का कारण बनेगा।

4. **आदेश (समादेश) की आदिश श्रृंखला :–** फ्योल के अनुसार अदिश–श्रृंखला अंतिम प्राधिकार प्राप्त उच्चस्थ से निम्नतम श्रेणी तक की श्रृंखला है। प्राधिकार की पंक्ति एक पथ है (मार्ग) है जो श्रृंखला की प्रत्येक कड़ी द्वारा प्रत्येक सम्प्रेषण में अनुगमित होता है जो या तो अन्तिम प्राधिकारी से आरम्भ होता है, अथवा उस तक पहुँचता है।

5. **कार्य विभाजन :–** यह विशेषज्ञता का सिद्धान्त है, जो कि फयोल के अनुसार समस्त प्रकार के कार्यों, प्रबन्धकी एवं तकनीकी दोनों, में लागू होता है। यह व्यक्ति को योग्यता एवं सटीकता (उपयुक्तता) पाने में सहायता करता है, जिसके द्वारा वे समान प्रयत्न से ही और अधिक उत्तम (श्रेष्ठ) कार्य कर सकते हैं। इसलिये संगठन में प्रत्येक व्यक्ति का कार्य संगठन में एकल नेतृत्व कार्य, जहाँ तक सम्भव हो, तक सीमित रखना चाहियें।

6. **अनुशासन :–** अनुशासन किसी संगठन को सुचारू रूप से चलाने हेतु अनिवार्य है। संगठन के सदस्यों के लिये यह आवश्यक है, कि वे अपने कार्य एवं कर्तव्यों का निर्वहन दूसरे के साथ सम्बन्ध में नियमों, मानकों एवं परिपाटियों के अनुसार करें। फयोल के अनुसार अनुशासन को सर्वश्रेष्ठ प्रकार से स्थापित निम्न प्रकार से किया जा सकता है;

(i) समस्त स्तरों पर उचित (श्रेष्ठ) उच्चस्थ स्थापित करके।

(ii) अनुबन्ध (चाहें वे व्यक्तिगत कर्मचारी से बने हों अथवा संघ से, जो भी दशा हों) स्पष्ट हों जितना कि उचित व स्पष्ट सम्भव हों।

(iii) न्यायपूर्वक आरोपित आर्थिक दण्ड (शसक्तियां)

7. **व्यक्तिगत हित पर सामान्य हितों (सांगठनिक हितों) की वरीयता :–** संगठन का हित व्यक्ति अथवा समूह के हित से उच्च होता है। यह तभी प्राप्त किया जा सकता है जब संगठन में उच्च पदों पर आसीन प्रबन्धक सत्य निष्ठा, पवित्रता, निष्पक्षता एवं न्याय का उदाहरण स्थापित करें। इसके लिये प्रबन्धकों में त्याग की भावना का एवं रवैये को सम्मिलित होना होगा जबकि ऐसा प्रतीत हो रहा हो कि व्यक्तिगत हित, सांगठनिक हितों से संघर्ष की स्थिति में हैं। हालांकि यह सन्दर्भित है, कि सामाजिक एवं राष्ट्रीय हित सांगठनिक हित से अधिक महत्वपूर्ण होता है यदि कभी दोनों संघर्ष की (तुलना) स्थिति में आये तो सामाजिक एवं राष्ट्रीय हित वरीयता पायेंगे।

8. **पारिश्रमिक :–** कर्मचारियों को निष्पक्षता एवं समता के आधार पर भुगतान करना चाहियें। पारिश्रमिक में विभेद, कार्य विभाजता, कर्मचारी की गुणवत्ता, अनुप्रयोग, उत्तरदायित्व, कार्य–दशाओं एवं कार्य में कठिनाई के आधार पर होना चाहिये। पारिश्रमिक निर्धारण एवं भुगतान में जीवन–लागत, सामान्य–आर्थिक दशाएँ, श्रम की माँग, तथ व्यवसाय की आर्थिक स्थिति (दशा) का भी विचारण करना चाहिये।

9. **केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण :–** फयोल केन्द्रीयकरण में विश्वास रखते थे। हालांकि उन्होंने कभी यह इच्छा नहीं रखी कि समस्त निर्णयन प्राधिकर उच्च प्रबन्ध में ही सकेन्द्रीत हों। वे यद्यपि विचार करते थे कि केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण अनुपात का प्रश्न है। एक लघु संगठन में जहाँ सीमित संख्या में कर्मचारी कार्य करते हों वहाँ स्वामी–प्रबन्धक सीधे–सीधे प्रत्येक को आदेश दे सकते है, जबकि विशाल संगठन में जहाँ कर्मचारियों की संख्या अधिक है, तथा वे लम्बी अदिश श्रृंखला द्वारा अधिशाषी से पृथक है, निर्णयन प्राधिकार को विभिन्न स्तरों के प्रबन्धकों के मध्य विभिन्न मात्रा में वितरित किया जाना चाहिये। यहां पर व्यक्ति का सामना केन्द्रित नियंत्रण के साथ विकेन्द्रीकरण की स्थिति से होता है।

केन्द्रीकरण एवं विकेन्द्रीयकरण की मात्रा प्रबन्धकों की योग्यता (गुणवत्ता) पर भी निर्भर करती है।

10. **व्यवस्था (क्रम) :–** फयोल के विचार से (संकल्पना में) क्रम से तात्पर्य उचित व्यक्ति स्थान पर (उचित कार्य पर) तथा प्रत्येक वस्तु अपनी उचित स्थान पर ही व्यस्थित होनी चाहिये। क्रम का यह प्रकार (भेद) मानवीय आवश्यकताओं एवं सम्बन्धित उपक्रमों के संसाधनों तथा इनके बीच के स्थायी संतुलन के ज्ञान के ऊपर निर्भर करता है।

11. **समता :–** समता से यह अभिप्राय है, कि कर्मचारियों के साथ न्याय पूर्ण एवं दयालुता के साथ व्यवहार किया जाना चाहिये। उनकी लगन एवं उद्यम के प्रति निष्ठा को प्रकाश में लाने (खींचने) हेतु यह आवश्यक है। अतः मुख्य अधिशाषी का यह कर्तव्य है कि अदिश श्रृंखला के प्रत्येक स्तरों पर न्याय एवं समता की भावना स्थापित करें।

12. **कार्मिकों के पदावधि की सुरक्षा :–** प्रबन्धकीय नीतियां व्यवहारिक कार्य–सुरक्षा प्रदान करने वाली होनी चाहिये। कर्मचारियों को लेना (भर्ती) व निष्काषन उच्चस्थों की मर्जी (सनक) पर नहीं वरन् सुनियोजित, सुविचारित, कार्मिक नीतियों पर आधारित होना चाहिये। उन्होंने रेखांकित किया कि किसी कर्मचारी को अपना कार्य सीखने में बहुत समय लगता है, यदि वे अल्पावधि में ही कार्य त्याग देते है या हटा दिये जाते है, तो उनको सीखने में लगा समय व्यर्थ हो जाता है। उसी प्रकार जो कार्मिक अयोग्य पाये जाये उन्हें हटा दिया जाना चाहिये तथा जो कुशल पाये जाने उन्हें पदोन्नत किया जाना चाहिये। हालांकि एक मध्यम कुशलता का प्रबन्धक जो दीर्घ अवधि तक संगठन में कार्य करता है उस अति दक्ष (समुजत) प्रबन्धक से अनन्त गुना श्रेष्ठर है जो आता है और चला जाता है।

13. **अगुआई (पहल) :–** यह बिना दुसरे के कहे (उस कहे) कार्य करने की योग्यता, रवैये, तथा संसाधन–सम्पन्नता पर केन्द्रित होता है, प्रबन्धकों को ऐसे वातावरण का निर्माण करना चाहिये जो उनके अधिनस्थों को पहल करने एवं उत्तरदायित्व लेने (उठाने) को प्रोत्साहित करें। चूंकि यह बुद्धिमान कर्मचारियों को अत्यधिक सन्तोष प्रदान करता है, अतः प्रबन्धकों को अपने अधिनस्थों को उनके पहल को दिखाने हेतु अपने व्यक्तिगत दंभ (गरूर) का त्याग करना चाहिये। हालांकि फयोल के अनुसार यह प्राधिकार एवं अनुशासन के सम्मान (आदर) में सीमित होनी चाहिये।

14. **सहयोग की भावना :–** कर्मचारियों के मध्यम सामंजस्य एवं दल–भावना को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। यह संगठित कार्य की (गतिविधि) एक प्रमुख विशेषता है, कि अनेक व्यक्ति, पूर्ण सहायोग की भावना के साथ समान लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु कार्य करते है। संगठन में ऐसे वातावरण का निर्माण किया जाना चाहिये जो कि व्यक्तियों को एक दूसरे के कार्य में सहायोग करने को इस प्रकार उछीपित करे, जिससे कि उन सबका सम्मिलित प्रयास उद्यम को सम्पूर्ण उद्‌देश्य की प्राप्ति को प्रोत्साहित करें।

फयोल ने सहायोग की भावना के दो शत्रुओं (a) बांटो और शासन करों तथा (b) लिखित सम्प्रेषण का अप्रयोग के प्रति आगाह किया है, यह कदाचित उद्यम के हित में हो सकता है, कि वह अपने शत्रुओं को विभाजित करें किन्तु यह निश्चित ही उद्यम हेतु खतरनाक होगा कि वह अपने कार्मिकों को विभाजित करें।

वरन् यहां (उद्यम में) सामंजस्य में बंधे (जुड़े हुये) तथा उच्च अंर्तक्रियात्मक कार्य–समूह होने चाहिये। लिखित सम्प्रेषण पर अत्यधिक विश्वास भी समूह भावना को तोड़ने वाला हो सकता है। यथा आवश्यक, लिखित सम्प्रेषण सदैव मौखिक सम्प्रेषण द्वारा पूरित होना चाहिये क्योंकि आमने–सामने का सम्बन्ध गति को उन्नत करने वाला, स्पष्टता एवं सामंजस्य को बढ़ावा देने वाला होता है। प्रबन्ध के अग्रगामी विचारकों द्वारा प्रबन्ध के सिद्धान्तों के विषय पर दिये गये सिद्धान्त निम्नलिखित है :–

(a) व्यवसायिक परिचालन के नियोजन एवं क्रियान्वयन का पृथककरण

(b) व्यावसायिक समस्याओं के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण

(c) तकनीकी परिवर्तनों को आत्मसात करना

(d) उत्पादन लागत को मितव्ययी करना एवं संसाधनों के अपव्यय को रोकना

(e) परिचालन क्षमता का पूर्ण संदोहण तथा उच्च–उत्पादन पर जोर

(f) उपकरणों, मीशनों, सामग्रियों, विधियों, समय तथा उत्पादों का मानकीकरण

(g) निस्पादन के मानक–स्तर के मानकों के अनुरूप परिणामों का मूल्यांकन करना

(h) संगठन के सदस्यों के मध्य समझ (तालमेल) एवं सहयोग बढ़ाना

## 2.4 प्रबन्ध के वाद (सिद्धान्त)

यद्यपि कार्य (गतिविधि) के रूप में प्रबन्ध उतना ही प्राचीन है, जितना कि स्वयं समाज किन्तु एक अकादमिक विषय के रूप में इसका महत्व 19वीं शताब्दी के अन्त एवं 20वीं शताब्दी के आरम्भ में औद्योगीकरण एवं बड़े पैमाने के उत्पादन के साथ बढ़ा है। इस त्वरित औद्योगीकरण के परिणाम स्वरूप संगठन एवं इसके प्रबन्ध का उद्य हुआ जो कि नैत्यिक, व्यवसायिक कार्यों की तुलना में अधिक जटिल थी जिसने इसे आघात पहुंचाया। फलतः प्रबन्ध के विभिन्न पक्षों (पहलुओं) में व्यापक शोध एवं गहन अध्ययन आरम्भ हुये। प्रारम्भिक भाग में शोध का अधिक ध्यान कुशलता एवं उत्पादकता तथा प्रबन्ध को एक विज्ञान के रूप में विकसित करने पर था। अतः अनेक सिद्धान्त इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उदय हुये। इस इकाई में हम प्रमुख सिद्धान्तों तथा प्रबन्ध विचारों के अभ्युदय में हुये विकास का अध्ययन करेंगे।

प्रबन्ध के प्रमुख वादों (सिद्धान्तों) को निम्नांकित रूप में व्यक्त किया जा सकता है :–

- वैज्ञानिक प्रबन्ध सिद्धान्त
- शस्त्रीय (परम्परागत) सिद्धान्त
- मानव–सम्बन्ध सिद्धान्त
- व्यवहार वादी सिद्धान्त
- प्रणाली सिद्धान्त
- आकस्तिकता सिद्धान्त

1. <u>वैज्ञानिक–प्रबन्ध संद्धान्त :–</u>

फ्रेडरिक विन्सलो टेलर द्वारा 20वीं शताब्दी के प्रथम दशक में प्रतिपादित वैज्ञानिक–प्रबन्ध सिद्धान्त प्रशासन का प्रथम सुसंगत (बद्ध) सिद्धान्त है। हालांकि टेलर के पूर्व कई प्रबन्ध विचारकों, यथा चार्ल्स बैबेज, हेनरी टाउने, एवं हेनरी मेटकाफ ने वैज्ञानिक प्रबन्ध शब्द का प्रयोग किया किन्तु ये टेलर ही थे जिन्होंने इस पद का प्रयोग सांगठनिक कुशलता एवं मितव्ययता को बढ़ाने हेतु वैज्ञानिक विधियों एवं तकनीकों के पूर्ण एवं व्यवस्थित वर्णन के लिये किया। अतः इन्हें वैज्ञानिक प्रबन्ध का पिता कहा जाता है।

जैसा कि पूर्ण विमर्शित है, कि औद्योगिक समाज की प्रमुख चिन्ता कुशलता वृद्धि उत्पादन लागत को कम करना तथा लाभ को बढ़ाना था। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु कुशल प्रबन्धन के अतिरिक्त प्रोद्योगिकी एवं कार्य की तकनीकों को उन्नत करना भी प्रमुख कन्द्र का विषय था। टेलर ने पाया कि वर्तमान प्रबन्ध प्रणाली में कई खामियां थी, यथाः यह अंगूठे के नियम का अनुगमन करता था, कार्य एवं उत्पादन के मानकों का अभाव, तथा प्रबन्ध एवं श्रमिकों के मध्य सहयोग का अभाव था। टेलर ने इन समस्त बुराईयों को वैज्ञानिक प्रबन्ध के द्वारा दूर करने का विचार किया।

**वैज्ञानिक प्रन्ध के सिद्धान्त :–**

टेलर ने वैज्ञानिक प्रबन्ध के चार सिद्धान्त दिये। टेलर के अनुसार ये सिद्धान्त संयुक्त होकर जिस सिद्धान्त का निर्माण करते है, उसे वैज्ञानिक–प्रबन्ध के नाम से जाना जाता है।

**(i) कार्य के वास्तविक विज्ञान का विकास :–**

टेलर ने पुराने अंगूठे के नियम को कार्य करने की सर्वश्रेष्ठ विधि से प्रतिस्थापित कर दिया। कार्य करने का यह सर्वश्रेष्ठ तरीका कार्य के व्यवस्थित अध्ययन एवं कार्य करने हेतु एक वैज्ञानिक विधि के विकास से प्राप्त हुआ। इसने एक श्रमिक द्वारा किये जाने वाले मानक उत्पादन को प्राप्त करने में समर्थता प्रदान की तथा इस प्रकार श्रमिक एवं प्रबन्धन के मध्य उत्पादन स्तर को लेकर व्याप्त तनाव को कम करने में सहायता की।

**(ii) कामगारों का वैज्ञानिक नीति से चयन एवं क्रमिक (प्रगतिशील) विकास :–**

वैज्ञानिक प्रबन्ध के प्रभावी निष्पादन हेतु कार्मिकों का चयन वैज्ञानिक आधार पर होता है जिससे उनकी योग्यता (दक्षता) एवं किये जाने वाले कार्यों में मिलान होता है। वैज्ञानिक चयन में सही (उपयुक्त) कार्य हेतु सही (उपयुक्त) व्यक्ति का चुनाव सम्मिलित होता है। वैज्ञानिक रीति से चयन के उपरान्त कर्मचारियों को व्यवस्थित रूप से प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिये। साथ ही कर्मचारी के कार्य वर्धन हेतु भी पर्याप्त अवसर होने चाहिये जिससे उनकी क्षमताओं का पूर्ण संदोहण हो सके।

**(iii) कार्य के विज्ञान एवं वैज्ञानिक रूप से चयनित कर्मचारियों/कार्मिकों/कामगारों को साथ लाना :–**

वैज्ञानिक प्रबन्ध का तीसरा (तृतीय) सिद्धान्त कार्य के विज्ञान एवं वैज्ञानिक ढंग से चयनित एवं प्रशिक्षित कर्मचारियों को साथ लाना (रखना) है। टेलर ने अनुभव किया कि यह प्रबन्ध का अनन्य उत्तरदायित्व है।

**(iv) कर्मचारियों एवं प्रबन्ध के मध्य कार्य एवं उत्तरदायित्व का विभाजन :–**

टेलर ने कर्मचारियों एवं प्रबन्ध के मध्य कार्यों एवं उत्तरदायित्वों के समान विभाजन पर बल दिया पूर्व में कर्मचारी प्रबन्ध की तुलना में अधिक उत्तरदायित्व रखते थे। टेलर ने कहा वैज्ञानिक प्रबन्ध की विशेषता सामंजस्य (सौहार्द) होना चाहिये न कि संघर्ष।

टेलर ने वैज्ञानिक प्रबन्ध को लागू करने एवं सुगम बनाने हेतु कतिपय तकनीके विकसित की जो निम्नलिखित है :–

**1. मानसिक क्रान्ति :–**

टेलर के अनुसार वैज्ञानिक प्रबन्ध का सार (मर्म) मानसिक क्रान्ति है। कर्मचारियों के भाग से (पक्ष) उनके कर्तव्यों के प्रति, कार्य के प्रति, सह–कर्मियों के प्रति तथा अपने पर्यवेक्षकों के प्रति जब कि प्रबन्धकों के पक्ष से मानसिक क्रान्ति से आशय उनके कर्मचारियों एवं समस्याओं के प्रति उनके रवैये से है। टेलर ने विचार रखा कि इस सम्पूर्ण मानसिक क्रान्ति के बगैर, दोनों पक्षों से, वैज्ञानिक प्रबन्ध सम्भव नहीं है। टेलर ने तर्क दिया कि अधिक्य के विभाजन पर अधिक ध्यान देने की अपेक्षा उन्हें अपना ध्यान अधिक्य की मात्रा को बढ़ाने पर देना चाहिये जब तक कि अधिक्य इतना अधिक न हो जाय कि इसके विभाजन को लेकर संघर्ष अनावश्यक हो जाये। दोनों पक्षों को अधिक्य बढ़ाने की दिशा में साथ कार्य करना चाहिये। टेलर विश्वास रखते है कि कर्मचारियों, कामगारों एवं उपभोक्ताओं के हितों में कोई टकराव नहीं है। उनकी प्रधान चिन्ता यह थी कि उच्च उत्पादन के परिणामों से कर्मचारी, श्रमिक एवं उपभोक्ता को समान लाभ लेना चाहिये।

**2. क्रियात्मक (कार्यात्मक फोरमैनशिप) :–**

टेलर रेखीय प्रणाली के संगठन के पक्ष में नहीं थे जिसमें प्रत्येक कर्मचारी एक ही स्वामी से मार्गदर्शित होता था। इसके स्थान पर उन्होंने कार्यात्मक फोरमैनशिप की वकालत की जिसके अन्तर्गत एक कर्मचारी आठ (08) प्रकार्यात्मक फोरमैन से मार्गदर्शित एवं पर्यवेक्षित होता है। इस प्रकार कार्यात्मक फोरमैनशिप के अन्तर्गत एक कर्मचारी आठ अलग–अलग विशेषज्ञ पर्यवेक्षकों से आदेश प्राप्त करता है। 08 (आठ) कार्यात्मक पर्यवेक्षकों में से चार (04) कार्यात्मक फोरमैन, (रूट लिपिक, निर्देश लिपिक, समय एवं लगत लिपिक तथा प्राथमिक अनुशासन कर्मचारी) नियोजन पहलू के पश्चात देखभाल करेंगे तथा शेष चार (04) (गैंग बॉस, रिपेयर बॉस, स्पीड बॉस तथा निरीक्षक) कार्य के क्रियान्वयन इस प्रकार यह विशेषज्ञता को सुगम बनायेगा एवं नियोजन को क्रियान्वयन से पृथक करेगा।

**3. गति–अध्ययन :–**

गति अध्ययन कार्य विधियों के मानकीकरण में सहायता करता है। यह कार्य–विशेष में सम्मिलित समस्त गतियों को अवलोकित (प्रेक्षित) करता है, तथा तत्पश्चात गतियों के सर्वश्रेष्ठ समुच्चय को निर्धारित करता है। यह वरीय कार्य–विधि के निर्धारण में सहायता करता है। इससे आशय कार्य करने के सर्वश्रेष्ठ ढ़ंग को प्राप्त करने से है।

**4. समय–अध्ययन :–**

एक बार गति–अध्ययन द्वारा एक कार्य को करने के सर्वश्रेष्ठ ढ़ंग की प्राप्ति के पश्चात् समय–अध्ययन दृश्यमान होता है, जिसके अन्तर्गत विराम घड़ी की सहायता से कार्य सम्पादन हेतु मानक समय को निर्धारित किया जाता है।

**5. विभेदात्मक इकाई दर योजना :–**

टेलर ने पाया कि वर्तमान प्रबन्ध व्यवस्था में श्रमिकों को कठोर परिश्रम के बदले कुछ नहीं प्राप्त हो रहा था। इस समस्या को दूर करने तथा कर्मचारियों (श्रमिकों) की कुशलता बढ़ाने के उद्देश्य से टेलर ने एक नवीन मजदूरी भुगतान प्रणाली का सुझाव दिया जिसके अन्तर्गत मजदूरी का भुगतान श्रमिकों को गति एवं समय अध्ययन के आधार पर निर्धारित मानको के अनुसार उनके द्वारा निर्मित इकाइयों (प्रतियों) की संख्या के आधार पर किया जाता है। इसे विभोदात्मक पीस रेट प्लान (विभेदात्मक प्रति/इकाई दर योजना) के नाम से जाना जाता है। इस पद्धति के अन्तर्गत श्रमिक मानक स्तर तक निम्न पीस दर योजना के तहत भुगतान पाते है, मानक प्राप्त करने पर अधिक बोनस (अधिलाभ) तथा मानक से ऊपर उत्पादन की दशा में उच्च पीस दर योजना के तहत भुगतान प्राप्त करते है। टेलर ने कहा कि प्रत्यक्ष एवं त्वरित होने के कारण पीस (इकाई) दर योजना, लाभ–वितरण (साझा) योजना की तुलना में वर्षांत में कर्मचारियों (श्रमिकों) को अभिप्रेरित करने हेतु अधिक प्रभावकारी है। किन्तु वह यह भी मानते थे कि वे श्रमिक (जो वैज्ञानिक रीति से चयनित, प्रशिक्षित एवं विकसित हुआ है) जो मानक स्तर का उत्पादन करने में अनिच्छा दिखा रहे हों या असफल हों उन्हें हटा दिया जाना चाहिये।

**(vi) कतिपय अन्य तकनीकें :–**

उपरोक्त तकनीकों के अतिरिक्त टेलर ने कतिपय अन्य तकनीकें विकसित की जिसने आगे वैज्ञानिक प्रबन्ध की ओर बढ़ने में सहाया की। ये तकनीकें निम्नलिखित हैः–

- विशिष्ट कार्यों के अनुसार (अनुरूप) समस्त उपकरणों का मानकीकरण
- पृथक नियोजन प्रकोष्ठ अथवा विभाग का गठन
- विनिर्माण में स्मृति सहायक प्रणाली का उपयोगीकरण जिसमें उत्पादों को वर्गीकृत किया जा सके।
- समय की बचत करने वाले अस्त्रों, यथा परिकलन पट्टिका का प्रयोग करना
- संगणकों को जोड़ने वाले लागत नियंत्रण का
- राउटिंग सिस्टम
- श्रमिकों के लिये निर्देश पत्र (संदेश पत्र)

**2. पारम्परिक (शास्त्रीय) सिद्धान्त :–**

शास्त्रीय (परम्परागत) सिद्धान्त बीसवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में विकसित हुआ तथा यह कुछ हद तक वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा के समान्तर है, तथा इसे प्रबन्ध प्रक्रिया सम्प्रदाय अथवा प्रशासनिक प्रबन्ध सिद्धान्त के नाम से भी जाना जाता है। इसे शास्त्रीय सिद्धान्त इसलिये कहा जाता है, क्योंकि संगठन के प्रणालीकृत (व्यवस्थित) विश्लेषण पर आधारित प्राचीनतम (प्राथमिक) सिद्धान्तों में से एक है।

इस वाद (सिद्धान्त) कि विद्वानों (अध्येता) ने यह विश्वास किया कि कतिपय सिद्धान्तों तथा प्रशासको के अनुभव के आधार पर प्रशासन के विज्ञान को विकसित किया जा सकता है। उनके अनुसार ये सिद्धान्त सार्व भौमिक रूप से मान्य (प्रमाणिक) है। इनका मत था कि ये सिद्धान्त गहन (कड़े) मूलक प्रेक्षण पर

आधारित है, अतः वैज्ञानिक रूप से मान्य है। उनका यह मत था कि इन सिद्धान्तों का अनुप्रयोग संगठन में उच्च मितव्ययिता तथा कुशलता स्थापित करेगा। इस प्रकार प्रशासन जो अब तक कला समझाा (माना) जा रहा था, अंशतः विज्ञान के रूप में परम्परागत सिद्धान्त के विचारकों के प्रयास से परिवर्तित हो सका। शास्त्रीय विचारकों ने संगठन की संरचना पर भी अधिक महत्व दिया। उनके अनुसार संरचना, किसी समूह का आधार है। उनके विचार से संरचना के अभाव में संगठन कार्य नहीं कर सकता। चूंकि उन्होंने संरचना पर अधिक जोर दिया अतः इन्हें **संरचनावादी** भी कहा गया।

इस विचारधारा कें प्रमुख उजायक (प्रस्तावक) निम्नलिखित है :–

1. हेनरी फ्योल
2. लूथर गुलक एवं लिंडाल उर्विक
3. जेम्स डी0 मूने एवं एलन सी0 रेले
4. मेरी पार्कर फोले

हेनरी फ्योल एवं लूथर गुलिक एवं लिंडान उर्विक के योगदान को यहां विस्तारपूर्वक विमर्शित (वर्णित) किया गया है;

हेनरी फ्योल जिन्हें प्रबन्ध प्रक्रिया विचारधारा का संस्थापक माना जाता है, टेलर के समकालीन थे। उन्होंने टेलर के साथ प्रबन्ध की संकल्पना एवं व्यवहार के विकास में अत्यधिक योगदान दिया। जहां टेलर ने कार्यशाला (कर्मशाला) प्रबन्धन पर ध्यान सकेन्द्रित किया तथा निचले (सतह/तल) स्तर का दृष्टिकोण अपनाया, फ्योल ने अपना ध्यान सम्पूर्ण संगठन पर केन्द्रित किया तथा उच्च–निम्न (ऊपर से नीचे) दृष्टिकोण अपनाया। फ्योल ने प्रबन्ध को एक सार्व भौमिक प्रक्रिया के रूप में वर्णित किया (देखा, माना) तथा यह माना कि यह समस्त प्रकार के संगठनों में तथा समस्त स्तरों पर प्रयोज्य है। फ्योल के योगदान को निम्नलिखित शीर्षक के अन्तर्गत समझा जा सकता है :–

**6. गतिविधियां (कार्य) :–**

फ्योल एक औद्योगिक उद्यम को कार्यात्मक रेखा के साथ वर्गीकृत किया तथा समस्त कार्यों को निम्नलिखित 06 समूहों में विभाजिता किया :–

1. तकनीकी कार्यः उत्पादन से सम्बन्धित
2. वाणिज्यिक कार्यः क्रय विक्रय एवं विनिमय के कार्य
3. वित्तीय कार्यः उपलब्ध पूंजी का अनुकूलतम प्रयोग
4. लिपिकीय कार्यः अंतिम खाते तैयार करने सम्बन्धी लेखांकन कार्य
5. सुरक्षा कार्यः सम्पत्ति एवं व्यक्तियों की सुरक्षा से सम्बन्धित
6. प्रबंधकीय कार्य

**प्रबन्ध के पांच (05) कार्य :–**

फ्योल के अनुसार प्रबन्ध गतिविधि में पांच कार्य सम्मिलित होते है :–

**1. नियोजन :–** भविष्य का परीक्षण एवं उसके अनुसार कार्य–योजना का निमार्ण।

**2. संगठनीकरण :–** संरचना–निर्माण, संगठन के मानवीय एवं सामग्री संसाधनों का निर्माण।

**3. समादेशन :–** कार्मिकों के मध्य कार्य का मार्गदर्शन एवं पर्यवेक्षण।

**4. समन्वयन :–** साथ रखना (बांधना), समस्त गतिविधियों को एकीकृत एवं सामंजस्य स्थापित करना जिससे वे सभी समान उद्देश्यों के प्रति कार्य करें।

**5. नियंत्रण :–** यह देखना कि समस्त कार्य स्थापित नियमों के अनुसार सम्पादित हो रहे है।

इन पाँच कार्यों को संक्षेप में Poccc क नाम से निरुपित किया जाता है, जिसका अर्थ नियोजन, सांगठनीकरण, समादेशन, समन्वयन तथा नियंत्रण होता है। फ्योल ने प्रबन्ध के 14 सिद्धान्त विकसित किये जो उनके अनुसार सार्वभौमिक प्रकृति के है। इन सिद्धान्तों को इस इकाई में पूर्व में वर्णित किया जा चुका है।

**3. मानव–सम्बन्ध सिद्धान्त :–**

शास्त्रीय सिद्धान्त की सीमितताओं ने संगठनात्मक सिद्धान्त एवं व्यवहार मं नये प्रश्नों एवं शोधों को उकसाया (प्रेरित किया)। इन सबके परिणाम स्वरूप मानव–सम्बन्ध सिद्धान्त अस्तित्व में आयी। मानव–सम्बन्ध सिद्धान्त (संगठन सिद्धान्त) संगठनात्मक विश्लेषण के प्रतिक्रिया के रूप में सन् 1930 मं अस्तित्व में आयी। शास्त्रीय (परम्परागत) विचारकों ने संगठन में मानव तत्व एवं मानवीय पहलू के योगदान की अपेक्षा की। वे संगठन के यांत्रिक दृष्टिकोण को रखे थे तथा उन्होंने व्यक्तियों के सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक पक्षों के संगठन में योगदान को उचित महत्व नहीं दिया। यह शास्त्रीय विचार धारा की गम्भीर असफलता थी जिसने मानव–सम्बन्ध दृष्टिकोण (अभिगम) को ऊँचाई प्रदान की। मानव सम्बन्ध सिद्धान्त को मानववादी (मानवतावादी) और सामाजिक–आर्थिक सिद्धान्त के नाम से भी जाना जाता है। हालांकि मानव–सम्बन्ध सिद्धान्त ने शास्त्रीय सिद्धान्त को पूर्णतः खारिज नहीं किया वरन् उन्होंने कुछ गम्भीर खामियां (कमियां) पायी तथा उनको भरने का प्रयास किया। हालांकि इस सिद्धान्त के विचारकों ने शास्त्रीय विचारकों द्वारा अभिमत प्राप्त दो सिद्धान्तों, आर्थिक मानव संकल्पना तथा औपचारिक संस्थानीकरण, को अस्वीकार (खारिज) किया। मानव–सम्बन्ध सिद्धान्तकारों ने परम्परागत (शास्त्रीय) सिद्धान्तकारों की भांति, कुशलता एवं उत्पादकता को संगठन के मूल (प्रमुख) मूल्य के रूप में तथा उत्पादन में प्रबन्ध के योगदान को पसन्द किया। इसलिये इस सिद्धान्त को 'नव शास्त्रीय सिद्धान्त' भी कहते है।

एल्टन मायों को मानव–सम्बन्ध सिद्धान्त का पिता कहा जाता है। उनका ध्यान कार्मिकों के व्यवहार तथा उत्पादन क्षमता पर केन्द्रित था, इस हेतु उन्होंने शारीरिक, भौतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक पक्षों का विचारण (विवेचन) किया।

**हार्थोन अध्ययन (1924–1932) :–**

हार्थोन अध्ययन ने मानव–सम्बन्ध सिद्धान्त के उदय का आधार प्रशस्त किया। ये अध्ययन एल्टन मेयो के नेतृत्व में शिकागो, अमेरिका के समीप स्थित वेस्टर्न इलेक्ट्रिक कम्पनी में हार्वड बिजनेस स्कूल द्वारा सम्पादित की गयी। अध्ययन निम्नलिखित चार चरणों में संचालित की गयी :–

**(i) विशेष (वृहत) चकम (प्रकाशमय) प्रयोग, (1924–1927 :–**

यह प्रयोग श्रमिकों की उत्पादकता पर प्रकाश के चमक (दीप्ति) के पड़ने वाले प्रभावों की जांच हेतु किया गया। इस प्रयोग ने इस मान्यता को नकार दिया कि अच्छा प्रकाश (रोशनी) श्रेष्ठर कार्य एवं श्रेष्ठर उत्पादन को नीत करती है। अंततः यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि एक सीमा के पश्चात भौतिक घटक यथा रोशनी इत्यादि उत्पादन को प्रभावित नहीं करते।

**(ii) रिले असेम्बली परीक्षण कक्ष प्रयोग (1927) :–**

यह प्रयोग कार्य–दशाओं में विभिन्न परिवर्तनों के श्रमिकों के उत्पादन एवं उत्साह पर पड़ने वाले प्रभाव को प्रेक्षित करने हेतु किया गया।

**(iii) सामूहिक साक्षात्कार कार्यक्रम (1928–1931) :–**

इस प्रयोग के दौरान कर्मचारियों के अपनी कम्पनी, अपने पर्यवेक्षक तथा कम्पनी की नीतियों के सन्दर्भ में रवैये (रूख) को निर्धारित करने हेतु बीस हजार (20,000) व्यक्तियों का साक्षात्कार किया गया। इसे वायु–संचालन (वायु–संचार) चिकित्सा पद्धति के नाम से भी जाना गया, क्योंकि बातचीत के दौरान मानवीय संवेदनाओं को खोजा गया।

**(iv) बैंक वायरिंग प्रयोग (1931–1932 :–**

इसने अनौपचारिक समूहों तथा प्रत्येक सदस्य के उत्पादन पर अनौपचारिक समूह के प्रभाव का परीक्षण किया।

हार्थोन अध्ययन की प्रमुख विशेषताये निम्नलिखित है :–

1. सिद्धान्त ने कार्य–स्थल पर (में) कर्मचारियों के उत्साह एवं उत्पादन के निर्धारण में सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक घटकों के महत्व को रेखांकित किया। यह सर्व प्रमुख निष्कर्ष है।
2. सिद्धान्त ने दिखाया कि संगठन एक सामाजिक प्रणाली (व्यवस्था) है। कार्य–श्रमिक अलग–अलग अथवा असम्बन्धित व्यक्ति नहीं होते है। वे सामाजिक प्राणी है।
3. मौद्रिक पुरस्कार एकमात्र अथवा सर्व प्रमुख अभिप्रेरक नहीं होते है। अनार्थिक पुरस्कार एवं प्रतिबन्ध कर्मचारियों के व्यवहार, उत्साह एवं उत्पादन को उल्लेखनीय ढ़ंग से प्रभावित करते है।
4. कर्मचारी (श्रमिक) संगठन के भीतर लघु सामाजिक समूह (अनौपचारिक संगठन) का निर्माण करते है। उत्पादन मानक तथा व्यवहार पद्धति इन्हीं समूहों द्वारा निर्णीत (निर्धारित/निश्चित) होती है, क्योंकि श्रमिक इन समूहों के सदस्य के रूप में प्रतिक्रिया करते है, एक व्यक्ति के रूप में नहीं।
5. अनौपचारिक नेतृत्व, औचारिक नेतृत्व से सशक्त होता है।
6. प्रबन्ध की भूमिका का संगठन में अनौपचारिक संगठन को औपचारिक संगठन से एकीकृत करने की होनी चाहिये।
7. नेतृत्व पर्यवेक्षण शैली, सम्प्रेषण एवं सहभागिता, कर्मचारियों के व्यवहार, संतुष्टि एवं उत्पादकता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

इस प्रकार मानव सम्बन्ध सिद्धान्त ने कर्मचारियों के अभिप्रेरण, संतुष्टि एवं उत्पादकता पर अनौपचारिक कार्य–समूहों के प्रभाव को रेखांकित किया। मायो ने कहा कि व्यक्ति की सामाजिक स्थिति उसके कार्य–समूह में प्रथमतः श्रेणीबद्ध होती थी तथा कार्य एक घटना के रूप में था। हार्थोन अध्ययन के निष्कर्षों ने संगठनात्मक विचारों को आमूल रूप से परिवर्तित किया (क्रान्ति ला दी) तथा मानव–सम्बन्ध सिद्धान्त को ऊँचाई प्रदान की।

**4. व्यवहारवादी सिद्धान्त (उपागम) :–**

प्रशासनिक अध्ययनों में व्यवहारवाद का प्रारम्भ 1930 के मानव सम्बन्ध सिद्धान्त के साथ माना जा सकता है। प्रबन्ध के कई विचारकों एवं विशेषज्ञों का यह मानना है कि मानव सम्बन्ध शोधकर्ता संगठनात्मक विश्लेषण में प्रथम व्यवहारवादी शोधकर्ता (शोधार्थी) थे। वस्तुतः व्यवहार वादी उपागम, संगठन के मानव सम्बन्ध उपागम का और अधिक परिवर्धित, व्यवस्थित तथा और परिष्कृत संस्करण है। व्यवहार वादी सिद्धान्त को सामाजिक–मनोवैज्ञानिक उपागम तथा नव–मानव सम्बन्ध उपागम के नाम से भी जाना जाता है।

व्यवहारवादी उपागम संगठन में मानव व्यवहार के वैज्ञानिक अध्ययनों से सम्बन्धित है। इस उपागम के अन्तर्गत संगठनात्मक व्यवहार को वैज्ञानिक ढ़ंग से समझने के लिये समाज शास्त्र, मनोविज्ञान, सामाजिक मनोविज्ञान तथा नृ–विज्ञान के सिद्धान्तों एवं तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार व्यवहार वादी उपागम का प्रमुख उद्देश्य संगठनात्मक व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन करना है। व्यवहारवादी विचारकों का मानना था कि श्रमिक, शास्त्रीय उपागम के आर्थिक मानव तथा मानव–सम्बन्ध्या उपागम के सामाजिक मानव के विवरण से कही अधिक जटिल है।

व्यवहार वादियों ने प्रबन्ध सिद्धान्त के विशेष रूप से अभिप्रेरण, सम्प्रेषण, समूह–गतिकी तथा नेतृत्व के क्षेत्र में, समृद्ध किया। व्यवहारवादी उपागम के प्रमुख योगदान देने वाले विचारकों में मेरीपार्कर फोले, चेस्टर बर्नाड, हर्वट सायमन तथा डगलस मैक्ग्रेगर अग्रणी है।

प्रबन्ध के व्यवहारवादी उपागम की प्रमुख विशेषताये निम्नलिखित है :–

1. यह संगठन में व्यक्तियों के वास्तविक व्यवहार से सम्बन्धित है। अतः यह विवरणात्मक एवं विश्लेषणात्मक है न कि निर्देशात्मक।
2. यह सार्वभौमिक नियमों को विकसित करने हेतु संगठन में व्यक्तियों के व्यवहार का अध्ययन एवं जांच करता है।
3. यह संगठन में कार्यरत व्यक्तियों के मध्य अनौपचारिक सम्बन्धों एवं सम्प्रेषण प्रणाली पर जोर दिया।
4. यह संगठनात्मक व्यवहार के गति की, जो कि अभिप्रेरण, नेतृत्व, निर्णयन, शक्ति, प्राधिकार इत्यादि है, पर अधिक ध्यान देता है।
5. यह वैज्ञानिक विधियों यथा क्षेत्र अध्ययन प्रयोगशाला अध्ययन आदि का समर्थन करता है।
6. यह अंर्तविषयी प्रकृति का होता है। अतः यह संकल्पनाओं, तकनीकों, समंकों तथा परिपेक्ष्य का चयन अन्य सामाजिक विज्ञानों यथा समाज शास्त्र, मनोविज्ञान, नृ–विज्ञान आदि से करता है।

**<u>5. प्रणाली सिद्धान्त :–</u>**

पूर्ववर्ती सिद्धान्त परिपूर्ण होने का दावा नहीं कर सके क्योंकि उनमें कतिपय प्रतिज्ञप्ति (कथन) का अभाव था इस प्रकार वे एक दूसरे के पूरक थे। एक आवश्यकता उभरी कि इन समस्त सिद्धान्तों में सामानिरूपता (एक ओर झुकाव) हो। अतः पिछले कुछ दशकों में प्रणाली उपागम का उदय हुआ। यह उपागम अन्य समस्तम सिद्धान्तों के एक ओर झुकाव के लिये आधार के रूप में प्रस्तुत हुआ।

वेबसटर ने प्रणाली को वस्तुओं के एक ऐसे समुच्चय अथवा व्यवस्था जो इस प्रकार अन्र्त सम्बन्धित हो कि एकता अथवा कार्बनिक सम्पूर्णता का निर्माण करता हों के रूप में परिभाषित किया है।

सामान्य प्रणाली सिद्धान्त के अनुसार प्रणाली एक संगठित इकाई है दो या अधिक अन्र्त निर्भर भागों, अथवा घटकों अथवा पदार्थों को समाहित करती है तथा पहचान योग्य सीमाओं के द्वारा अपने वातावरण से आरेखित की जाती है।

इस प्रकार प्रणाली एक जटिल संरचना है, जिसमें कई भाग होते है, जो जैविक कोशिका के सदृश होते है। ये भाग उप–प्रणाली कहे जाते है तथा अपने कार्य में अन्र्त सम्बन्धित एवं अन्र्त निर्भर होते है। वे इस प्रकार क्रम पूर्वक संगठन के सम्पूर्ण कार्य में योगदान देते है। प्रणाली की एक निश्चित सीमा होती है जिसके द्वारा वह अपने वातावरण से अन्र्तक्रिया करती है। प्रणाली का यह वाह्य पर्यावरण को पूर्ण प्रणाली (बड़ा प्रणाली) के नाम से जाना जाता है।

एक प्रणाली में पाँच आधारभूत (मूल) भाग, आगत, प्रक्रिया, निर्गत, प्रतिपूष्टि एवं वातावरण, समाहित होते है। प्रणाली, पर्यावरण से आगत प्राप्त करता है तथा रूपान्तरण के पश्चात निर्गत वातावरण को भेजता है। इसके अतिरिक्त प्रणाली अपने आपको पर्यावरण के परिवर्तनों के अनुसार समायोजित तथा परिवर्तित आवश्यकता अनुसार सतत परिवर्तित करता रहता है। प्रतिपुष्टि प्रणाली इसे सुगम बनाती है। इस प्रकार प्रणाली एवं इसके वातावरण में एक संतुलन रहता है।

प्रणाली दो प्रकार खुली प्रणाली एवं बन्द प्रणाली, के होते है। खुली प्रणाली ऐसी प्रणाली होती है, जो पारगम्य सीमाये रखती है, अर्थात् वे अपने पर्यावरण से सतत रूप से अन्र्तक्रिया करती है तथा वे न सिर्फ अपने वातावरण को प्रभावित करती है, वरन उसे प्रभावित भी होती है। दूसरी ओर बन्द प्रणाली अपारगम्य सीमाओं को रखते है, अर्थात् इसमें पर्यावरण एवं प्रणाली के मध्य कोई अन्र्तक्रिया नहीं होती है। बन्द प्रणाली पर्यावरणीय परिवर्तनों के प्रति अप्रतिक्रियाशील होते है।

सामाजिक एवं जैविक प्रणाली खुली प्रणाली होते है, जबकि यांत्रिक एवं भौतिक प्रणाली बन्द प्रणाली होती है। एक व्यवसायिक संगठन अथवा कोई मानव संगठन एक सामाजिक प्रणाली होते है। व्यावसायिक संगठन एक प्रणाली भी होते है जो विशेषीकृत उप–प्रणाली रखते है, जो कतिपय विशेषीकृत कार्यों का सम्पादन करते हैं। ये उप प्रणालियॉ इस प्रकार अंर्त निर्भर एवं अंर्त सम्बन्धित होती है, जिससे कि एक उप प्रणाली का निर्गत, दूसरी उप–प्रणाली हेतु आगत का निर्माण करता है। इस प्रकार प्रणाली अपने पर्यापवरण से आगत स्वीकार करती है जो प्रायः वातावरण (पर्यावरण) के अन्य उप–प्रणालियों का निर्गत होता है। तत्पश्चात प्रणाली की उप–प्रणालियां इन आगतों को ऐच्छिक आकार (आकृति) एवं मात्रा में परिवर्तित (रूपान्तरित) करती है तथा रूपान्तरण की इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को प्रवाह क्षमता कहते हैं।

रूपान्तरित वस्तु तत्पश्चात पर्यावरण को वापस परिवहनित की जाती है, जिसे प्रणाली के उत्पादन के रूप में जाना जाता है। बड़े–प्रणाली (वृहत/पूर्व) की विभिन्न उप–प्रणालियां अग्रगामी–पश्चगामी श्रृंखला (संयोजन) द्वारा अन्र्त सम्बन्धित होती है। संगठन की नियंत्रण एवं अनुरक्षण उप–प्रणाली को लगातार प्रतिपुष्टि प्रदान करती रहती है, जिससे प्रणाली अपनी कार्यवाही योजना (क्रिया विधि) को

सुधारती रहती है। अतः आधुनिक सिद्धान्तकारों ने संगठन को एक अनुकूल प्रणाली के रूप में देखा जो यदि अस्तित्व में रहना चाहती है (जीवित रहना चाहती है) तो परिवर्तनों से समायोजित करना चाहिये। अतः संगठन और इसके पर्यावरण को अर्न्त निर्भर के रूप में देखे गये जहां वे एक दूसरे पर अपने संसाधनों हेतु निर्भर हैं।

विचार की प्रणाली विचार धारा (वाद) के कतिपय विशिष्ट (अद्वितीय) विशेषतायें थी जिनपर पूर्व के प्रतिमानों ने महत्व नहीं दिया था। उदाहरणार्थ, पर्यावरणीय घटक, जिनपर पूर्व के प्रतिमानों द्वारा महत्व नहीं दिया गया था। प्रणाली विचारधारा ने रेखांकित किया कि पर्यावरण है जो दो समान दक्षता वाले व्यक्तियों में विजयी एवं पराजित के निर्धारण में निर्णायक भूमिका का निर्वहन करता है। इस प्रकार यह पहली बार था कि एक संगठन के आन्तरिक पर्यावरण (वातावरण) को वाह्य वातावरण से संयोजित किया गया। प्रणाली उपागम (प्रतिमान) ने स्वचालित प्रति पुष्टि प्रदान करने की भूमिका के निर्धारण के द्वारा संगठन की नियंत्रण प्रणाली पर नयी रोशनी (प्रकाश) आरोपित की। इसके कारण संगठन को अपनी कार्य–योजना (कार्य विधि) को सतत रूप से सुधारने में सहायता प्राप्त हुयी।

**6. आकस्मिकता (संयोग) सिद्धान्त :–**

आकस्मिकता सिद्धान्त का उदय 1960 में प्रणाली सिद्धान्त मं सुधार (प्रणाली सिद्धान्त के समुन्नत रूप) के रूप में हुआ। इसने उन पक्षों को समाहित किया जहां प्रणाली सिद्धान्त चूक गया था। प्रणाली विचार धारा में कतिपय कमियां थी जैसे इसने संगठन और इसके वातावरण (पर्यावरण) के मध्य नियत सम्बन्धों को भली–भांति स्पष्ट नहीं कर पाया। आकस्मिकता सिद्धान्त ने इस कमी को भरने की कोशिश की।

आकस्मिकता सिद्धान्त ने प्रत्येक परिस्थिति की अद्वितीय विशेषताओं द्वारा निर्दिष्ट (कथित) प्रबन्ध के सिद्धान्तों एवं प्रतिक्रियाओं को लागू करने पर ध्यान केन्द्रित किया। इस विचार धारा ने इस बात पर जोर दिया कि प्रबन्ध का कोई एक सर्वश्रेष्ठ ढ़ंग नहीं है, और यह विभिन्न परिस्थिक विशेषताओं यथा वाह्य पर्यावरण, प्रोद्योगिकी, संगठनात्मक विशेषताओं, प्रबन्धक की विशेषताओं, अधीनस्थों की विशेषताओं पर निर्भर करता है। प्रथमतः इसे प्रबन्ध के मुद्दों, यथा सांगठनिक अभिकल्प, कार्य–निरूपण, अभिप्रेरण एवं नेतृत्व शैली, पर लागू किया गया।

आकस्मिकता उपागम सांगठनिक ढ़ांचें एवं व्यवहार के निर्धारण पर केन्द्रित है। यह विभिन्न सांगठनिक चरों के मध्य समझ की अधिक विस्तृत जानकारी प्रदान करता है। यह उपागम बड़ी दृढ़ता पूर्वक दावा करता है, कि ऐसा कोई सार्व भौमिक निर्देशित कार्य अथवा संगठनात्मक अभिकल्प नहीं है जो समस्त स्थितियों (परिस्थितियों) में उपयुक्त हो। अभिकल्प के अतिरिक्त प्रबन्धकीय कार्य एवं निर्णय परिस्थिति पर निर्भर करते है। इस प्रकार इस उपागम से अर्न्तक्रिया करता है, तब न तो संगठन तथा न ही इसका कोई संघटक उपयुक्त कार्य करने हेतु बाध्य नहीं होता है। बल्कि इसे विभिन्न सामाजिक, विधिक, राजनैतिक, तकनीकी, एवं आर्थिक घटकों के विषयाधीन कार्य करना होता है। इस प्रकार आकस्मिकता उपागम प्रणाली दृष्टिकोण का विस्तार है, क्योंकि यह कार्य–उन्मुख तथा प्रणाली उपागम को क्रियान्वित करने के प्रति निर्देशित होता है। इस प्रणाली का सबसे महत्वपूर्ण

लाभ यह है, कि यह लोचशीलता स्थापत करता है, तथा सिद्धान्त एवं व्यवहार के मध्य एक संयोजन प्रदान करता है।

## 2.5 सारांश

अध्ययन के प्रत्येक क्षेत्र में कतिपय मूलभूत सिद्धान्त होते है, जो कालान्तर में कतिपय कार्य के रूप में व्यवहार में लाये जाते हैं। किन्तु प्रबन्ध एक ऐसा क्षेत्र है, जहां सिद्धान्त अनन्य रूप से व्यवहारिक अनुभवों पर आधारित होते हैं। उपरोक्त प्रबन्ध के कार्य जो इस अध्याय में वर्णित किये गये है, प्रबन्ध दर्शन (प्रबन्ध विचारधारा) की रीढ़ है। ये कार्य अर्न्त सम्बन्धित है, तथा साथ ही संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है, कि इनका निष्पादन एक अनुक्रम व्यवस्था में हों। किन्तु वर्तमान का व्यावसायिक पर्यावरण इन सभी विशिष्ट कार्यों को पूर्व सम्मिश्रण है। अतः प्रत्येक कार्य परिस्थिति एवं प्रबन्धक की अभिज्ञता के अनुसार करणीय है।

सफल नेता एवं प्रबन्धक अति–अर्जा होते है। वे प्रभावी ढ़ंग से सम्प्रेषित करने निर्णय लेने, लक्ष्यों के निश्चयन, योजना, निर्माण, तथा पर्यवेक्षित/मुल्यांकित करने में अत्यधिक प्रयत्न उड़ेलते है। ये सभी नेता की निर्देशनात्मक (या विचारण की) एवं क्रियान्वयनकारी कौशल है। एक नेता के रूप में आप अपने अधीनस्थों से तब तक सकारात्मक परिणामों की अपेक्षा नहीं कर सकते जब तक कि आप समस्याओं के समाधान, नियोजन, तथा योजनाओं एवं निर्णयों को कार्य रूप में परिवर्तित करने (रखने) के लिये समान मेहनत से कार्य नहीं करते हैं। सफल नेता अपने ध्येय एवं उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु कठिन परिश्रम करते है, जबकि इसी के साथ वे अधिकतम सम्भव निष्पादन स्तर को जाने हेतु कठिन मेहनत करते है। अतः एक प्रबन्ध के छात्र के रूप में (होने के कारण) आप को उसी प्रयत्न एवं उत्कृष्टता हेतु प्रयास करना चाहिये।

## 2.6 शब्दावली

**नियोजन :–** यह लक्ष्यों एवं अपयुक्त कार्य–विधि स्थापन की प्रक्रिया है।

**नियंत्रण :–** यह ये सुनिश्चित करने की प्रक्रिया है, कि वास्तविक कार्य, नियोजन के अनुसार ही हो रहा है।

**श्रम–विभाजन :–** यह संगठन के कार्यों को उप कार्यों में विभाजित करने तथा इन उप कार्यों को व्यक्तियों को सौंपने से सम्बन्धित है।

**संरचना :–** संरचना, लक्ष्यों/उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु कार्यों का व्यवस्थित एवं तार्किक सम्बन्ध है।

**आदेश की एकताः–** इसका तात्पर्य यह है, कि एक कर्मचारी का एक और केवल एक स्वामी होगा।

## 2.7 बोध प्रश्न

### (A) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :–

1. नियोजन लक्ष्य स्थापना तथा लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये ...................... कार्य विधि की प्रक्रिया है।
2. संगठनीकरण किया का उद्देश्य ऐसे ........................... संरचना एवं प्राधिकार सम्बन्ध का निर्माण करना है जो उसके उद्देश्य को पूरा कर सके।

3. निर्देशन प्रभावी निष्पादन हेतु कर्मचारियों के निर्देशन तथा संगठन के ................उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु अपने ........................ कार्यों में ......................... योगदान देने का कार्य है।
4. निर्देशन यह सुनिश्चित करने की कि वास्तविक गतिविधि (कार्य) ...................... कार्यों के अनुरूप सम्पादित हो रहे है, प्रक्रिया है।

**(B) सही है या गलत**

1. सांगठनिक हित व्यक्ति एवं समूह के हितों से श्रेष्ठ होता है।
2. समता का अभिप्राय यह है, कि कर्मचारी के साथ न्याय एवं दयालुता का व्यवहार किया जायेगा।
3. गति–अध्ययन, समय–पद्धति के मानकीकरण में सहायता करता है।
4. व्यवहारिक दृष्टिकोण का प्रमुख उद्देश्य संगठनात्मक व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन करता है।

## 2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

**(A)**

1. उपयुक्त, 2. कार्य, 3. अनुकूलतम, 4. योजना (योजना)

**(B)**

1. सत्य, 2. असत्य, 3. असत्य, 4. सत्य।

## 2.9 स्वपरख प्रश्न

1. प्रबन्ध क्या है? प्रबन्ध के विभिन्न कार्यों का वर्णन कीजिये।
2. प्रबन्ध के विभिन्न सिद्धान्तों का वर्णन कीजिये।
3. प्रबन्ध को परिभाषित कीजिये। प्रबन्ध के विभिन्न सिद्धान्तों (मत/विचारधारायें) क्या है?
4. वैज्ञानिक–प्रबन्ध सिद्धान्त का वर्णन कीजिये।
5. मानव–सम्बन्ध सिद्धान्त का वर्णन कीजिये।
6. प्रबन्ध के प्रणाली एवं व्यवहार सिद्धान्त के मध्यम अन्तर स्थापित कीजिये।

## 2.10 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Kootnz & O'Donnell, Principles of Management.
2. J.S. Chandan, Management Concepts and Strategies.
3. Arun Kumar and R. Sharma, Principles of Business.
4. Management. Sherlerkar and Sherlerkar, Principles of Management.
5. Tripathi and Reddy, Principles of Management.
6. Kimball and Kimball, Principles of Industrial Organisation.

## इकाई 3 नियोजन–इसकी प्रकृति, संघटक व प्रक्रिया

इकाई की रुपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 नियोजन की अवधारणा
3.3 नियोजन के सम्बन्ध में कल्पित विचार
3.4 नियोजन की प्रकृति व क्षेत्र
3.5 नियोजन का महत्व
3.6 नियोजन के लाभ व सीमाएँ
3.7 नियोजन की सीमाओं को कम करने के उपाय
3.8 नियोजन के बुनियादी सिद्धांत
3.9 नियोजन की श्रेणियाँ व स्तर
3.10 नियोजन की प्रक्रिया या नियोजन के आवश्यक कदम
3.11 सारांश
3.12 शब्दावली
3.13 बोध प्रश्न
3.14 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.15 स्वपरख प्रश्न
3.16 सन्दर्भ पुस्तकें

### उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- नियोजन के अर्थ को परिभाषित कर सकें ।
- नियोजन की प्रकृति और क्षेत्र की व्याख्या कर सकें ।
- नियोजन की सीमाओं को कम करने के उपायों का वर्णन कर सकें ।
- नियोजन के आवश्यक चरणों का वर्णन कर सकें ।

### 3.1 प्रस्तावना

नियोजन केवल संगठन के प्रबन्ध में ही नहीं है बल्कि प्रत्येक घर के प्रबन्ध में व्याप्त है । विचार करने की प्रक्रिया हमारे दिन प्रतिदिन की क्रियाओं जैसे जन्मदिन का आयोजन या साक्षात्कार में उपस्थित होना आदि में प्रयोग किया जाता है। नियोजन सूक्ष्म या स्थूल हो सकता है जैसे, यह कंपनी के स्तर पर या देश के स्तर पर हो सकता है। आजकल वृहत नियोजन की अपेक्षा विकेन्द्रीकृत नियोजन या सूक्ष्म नियोजन पर पर बहुत जोर दिया जा रहा है । नियोजन प्रबन्ध का बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य है, इसकी प्रमुख गतिविधियों में उद्देश्यों की स्थापना करना, नीतियों का निर्धारण करना और निर्णय लेना आदि शामिल है।

### 3.2 नियोजन की अवधारणा

नियोजन प्रबन्ध का सबसे मौलिक कार्य है। एक संस्था अपने भौतिक, वित्तीय व मानवीय संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग तभी कर सकता है जब प्रबन्ध उद्देश्यों का निर्धारण व इसे प्राप्त करने के साधनों का चयन पहले से ही कर लें ।

इसके आभाव में एकाग्र व समन्वित प्रयास सम्भव नहीं है, जिसके फलस्वरूप परिणाम में अव्यवस्था, भ्रम की स्थिति व संसाधनों का अपव्यय होता है | नियोजन में उद्देश्यों का निर्धारण, कार्यक्रमों का निर्माण, इनको प्राप्त करने की कार्यवाही योजना, अनुसूचियों का निर्माण, कार्यवाही का समय व इसके कार्यान्वयन के लिए दायित्वों का निर्धारण शामिल है | इस प्रकार सभी प्रयासों और क्रियाओं से पहले योजना बनायी जाती है, क्योंकि यह योजनाएं और कार्यक्रम हैं जो वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक फैसलों और गतिविधियों का निर्धारण करते हैं। इस प्रकार यह संगठन, स्टाफिंग, निर्देशन और नियंत्रण सहित सभी अन्य प्रबंधकीय कार्यों पर आधारित है। नियोजन की अनुपस्थिति में, यह तय करना असंभव होगा कि किन गतिविधियों की आवश्यकता है, उन्हें कार्य और विभागों में कैसे सम्मिलित किया जाना चाहिए, किस प्रकार के फैसले और कार्यों के लिए कौन उत्तरदायी होगा, और विभिन्न प्रकार के निर्णयों और गतिविधियों का समन्वय किस प्रकार किया जाना चाहिए। संगठन की अनुपस्थिति में, जिसमें उपर्युक्त प्रबंधकीय गतिविधियां समिल्लित है, स्टाफिंग आगे नहीं बढ़ सकती तथा निर्देशन को क्रियान्वित नहीं किया जा सकता है | नियोजन नियंत्रण कार्य के निष्पादन के लिए भी एक अनिवार्य शर्त है, क्योंकि यह निष्पादन के मूल्यांकन के लिए मापदंड प्रदान करता है। इस प्रकार सभी प्रबंधकीय कार्यों से पहले योजना बनायी जाती है |

नियोजन अग्रिम में तय करने की प्रक्रिया है कि क्या किया जाना है, किसे इसे करना है, यह कैसे किया जाना है और कब किया जाना है। यह कार्यवाही की योजना निर्धारित करने की प्रक्रिया है, ताकि वांछित परिणाम प्राप्त कर सकें। यह जहां हम हैं, और जहां हम जाना चाहते हैं के मध्य पाए जाने वाले अंतर को कम करने में मदद करता है । यह उन बातों के होने को संभव बनाता है जो इसके बिना अन्यथा नहीं होती। नियोजन एक उच्च स्तरीय मानसिक प्रक्रिया है जिसे बौद्धिक संकायों, कल्पना, दूरदर्शिता और ठोस न्याय के उपयोग की आवश्यकता होती है। कून्त्ज़, ओ डोंनेल्ल और वेइहरिच के अनुसार, "नियोजन एक बौद्धिक रूप से की गई मांग की प्रक्रिया है, जिसे कार्यवाही की योजना के सचेत निर्धारण और उद्देश्य पर आधारित निर्णयन, ज्ञान और सुविचारित अनुमानों की आवश्यकता होती है"।

नियोजन एक प्रक्रिया है जिसमें घटनाओं के भविष्य के कार्यवाही की प्रत्याशा और कार्रवाई का सबसे अच्छा तरीका तय करना शामिल है। यह करने से पहले सोचने की एक प्रक्रिया है | निर्दिष्ट उद्देश्यों को, निर्दिष्ट लागत पर, तथा निर्दिष्ट अवधि में प्राप्त करने के लिए नियोजन भविष्य की कार्रवाई के लिए एक योजना का निर्माण करती है। यह परिवर्तन की प्रकृति, दिशा, सीमा, गति और परिणामों को प्रभावित करने, उपयोग करने, सम्पादित करने और नियंत्रित करने के लिए एक विचारपूर्वक प्रयास है। यह बदलाव लाने के लिए भी विचारपूर्वक प्रयास कर सकता है, यह हमेशा याद रहना चाहिए कि किसी भी एक सेक्टर में परिवर्तन (जैसे निर्णय में परिवर्तन) इसी तरह के अन्य क्षेत्रों को भी प्रभावित करेगा। नियोजन, व्यवस्थित अनुक्रम क्रियाओं का प्रारूप बनाने और तैयार करने के लिए एक विचारपूर्वक और सचेत प्रयास है, जिसके माध्यम से उद्देश्यों तक पहुंचने की उम्मीद रहती है। नियोजन भविष्य के लिए किसी विशेष प्रकार के कार्रवाई का

निर्णय करने के लिए एक व्यवस्थित प्रयास है, यह समूह क्रियाकलाप के उद्देश्यों के निर्धारण करने और उन्हें प्राप्त करने के लिए आवश्यक कदमों की अगुआई करती है। इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि नियोजन चयन करने और तथ्यों से सम्बन्धित है और साथ ही वांछित परिणाम प्राप्त करने के लिए भविष्य में आवश्यक अवधारणाओं का निर्माण करने और उनका प्रयोग करने से भी संबंधित है |

इस प्रकार नियोजन एक उद्यम के व्यवसाय के भविष्य की स्थिति और इसे प्राप्त करने के साधनों को अग्रिम रूप से तय कर लेती है। इसके तत्व निम्नलिखित हैं:

1. क्या करना चाहिएरू व्यापार के अल्प–काल और दीर्घ–काल के उदेश्य कौन–कौन से है ?
2. किन किन संसाधनों की आवश्यकता होगी: इसके आकलन में उपलब्ध व संभावित संसाधन, उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक संसाधनों का आकलन, तथा इन दोनों के बीच यदि कोई खाई हो तो उसकी भरपाई आदि शामिल है|
3. यह कैसे किया जाएगारू इसमें दो बातें शामिल हैं: (i) उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक कार्य, गतिविधियों, परियोजनाओं, कार्यक्रमों आदि का निर्धारण, और (ii) उपरोक्त उद्देश्यों के लिए रणनीति, नीतियों, प्रक्रियाओं, विधियों, मानक और बजट आदि को तैयार करना ।
4. इस कार्य को कौन करेगारू इसमें उद्यम के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले योगदानों से संबंधित विभिन्न प्रबंधकों को उत्तरदायित्वों को सौपने का काम शामिल है। यह पूर्ववर्ती उद्देश्यों में समग्र उद्यम उद्देश्यों को पहले खण्डयुक्त उद्देश्यों में, जो कि बाद में मंडलीय, विभागीय, अनुभागीय और व्यक्तिगत उद्देश्यों में बदल जाते है।
5. यह कब किया जाएगारू इसमें विभिन्न गतिविधियों के निष्पादन और विभिन्न परियोजनाओं और उनके भागों के निष्पादन के लिए समय और क्रम का निर्धारण, यदि कोई हो, शामिल है।

## 3.3 नियोजन के सम्बन्ध में कल्पित विचार

नियोजन के बारे में सामान्यतः कुछ प्रचलित कल्पित विचार और भ्रम हैं नियोजन की विशेषताओं में अन्तर स्पष्ट करते हुए महत्वपूर्ण पहलुओं को उजागर करने का प्रयास किया गया है, ताकि गलत धारणाओं को स्पष्ट किया जा सके:

1) नियोजन भविष्य के फैसले लेने का कोई प्रयास नहीं करता रू नियोजन किसी कंपनी के लिए और अधिक वांछनीय भविष्य के विकल्पों का चयन करने की एक प्रक्रिया है ताकि बेहतर निर्णय किया जा सके। नियोजन संदर्भ का एक ढाँचा प्रदान करती है जिसके भीतर वर्तमान निर्णय लिया जाना है। एक ही समय में, एक योजना अक्सर अतिरिक्त लेकिन संबंधित निर्णयों की ओर अग्रसर होती हैद्य उदाहरण के लिए, एक नई डिग्री या डिप्लोमा शुरू करने के लिए एक कॉलेज की योजना, जैसे डिग्री या डिप्लोमा के लिए पाठ्यक्रम की अवधि क्या होनी चाहिए, विशिष्ट पाठ्यक्रमों में विस्तृत अध्ययन सूची, परीक्षा का मूल्यांकन, और आवश्यक व्यावहारिक प्रशिक्षण, यदि कोई हो, आदि की आवश्यकता होती है |

2) नियोजन केवल पूर्वानुमान या अनुमान नहीं लगाती है : भविष्यवाणियां भविष्य के मात्र अनुमान हैं, और बताती हैं कि क्या हो सकता है या नहीं हो सकता है। हालांकि, निगमित नियोजन इन पूर्वानुमानों से परे है और निम्न प्रश्न पूछे जाते है:

(ए) क्या हम सही व्यवसाय में हैं?

(बी) हमारे मूल लक्ष्य और उद्देश्य क्या हैं?

(सी) हमारे वर्तमान उत्पाद अप्रचलित कब होंगे?

(डी) क्या हमारे बाजार विस्तारित या सिकुड़ रहे हैं?

(ई) क्या हम विलय या अधिग्रहण के लिए जाना चाहते हैं?

3) नियोजन एक स्थैतिक प्रक्रिया नहीं है : दरअसल, योजनाएं निष्पादित होने के साथ ही अप्रचलित हो जाती हैं, क्योंकि उनकी तैयारी में स्वीकृत वातावरण पहले ही बदल जाता है | नियोजन एक निरंतर प्रक्रिया है इसमें लगातार विश्लेषण और बदलते परिस्थितियों के संदर्भ में योजनाओं के समायोजन और उद्देश्य भी शामिल होते हैं।

## 3.4 नियोजन की प्रकृति और क्षेत्र

नियोजन की प्रकृति को निम्नलिखित पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करके समझा जा सकता हैरू

1) नियोजन एक निरन्तर प्रक्रिया है रू नियोजन भविष्य से सम्बन्धित है और भविष्य इसकी प्रकृति के अनुसार अनिश्चित होता है। यद्यपि योजनाकार भविष्य की एक सूचित और बुद्धिमान अनुमान के आधार पर अपनी योजनाओं का निर्माण करता है, लेकिन भविष्य की घटनाओं की भविष्यवाणी बिल्कुल सटीक नहीं हो सकती है। नियोजन का यह पहलू इसे एक सतत प्रक्रिया बना देता है द्य योजनाएं उद्देश्यों और उनकी प्राप्ति के साधन से संबंधित भविष्य के विवरण हैं। वे अंतिम रूप से निश्चित नहीं होते क्योंकि आंतरिक और साथ ही उद्यम के बाहरी वातावरण में होने वाले बदलावों की प्रतिक्रिया में उनमें संशोधन करने की आवश्यकता होती है। इसलिए नियोजन एक निरंतर प्रक्रिया होनी चाहिए और इसलिए कोई योजना अंतिम नहीं है, यह हमेशा एक संशोधन का विषय है |

2) नियोजन सभी प्रबंधकों से संबंधित है: हर प्रबंधक का उत्तरदायित्व है अपने लक्ष्य निर्धारित करना और योजनाओं का संचालन करना । ऐसा करने में, वह अपने लक्ष्यों को तैयार करता है और लक्ष्यों के ढांचे व अपने वरिष्ठ की योजनाओं के भीतर योजना तैयार करता है। इस प्रकार, नियोजन शीर्ष प्रबंधन या नियोजन विभाग के कर्मचारियों का उत्तरदायित्व नहीं है; जो सभी परिणामों की उपलब्धि के लिए उत्तरदायी हैं, उन सभी की भविष्य की योजना बनाने के लिए भी जबाबदेही है। हालांकि, उच्च स्तर पर प्रबंधक, उद्यम की एक अपेक्षाकृत बड़ी इकाई के लिए उत्तरदायी होते है, नियोजन के लिए अपने समय का एक बड़ा हिस्सा समर्पित करते हैं, और उनकी योजनाओं की समय अवधि भी निचले स्तर पर प्रबंधकों के मुकाबले अधिक लम्बी होती है। यह दर्शाता है कि नियोजन को अधिक

महत्व प्राप्त है और भविष्य में इसकी अवधि निम्न प्रबंध स्तरों की तुलना में उच्च स्तर पर अधिक हो जाती है।

3) योजनाओं को एक पदानुक्रम में व्यवस्थित किया जाता है: योजनाओं को सम्पूर्ण संगठन के लिए तैयार किया जाता है जो निगमित योजना कहलाती है | निगमित योजना मंडलीय, विभागीय और अनुभागीय लक्ष्यों के निर्माण के लिए रूपरेखा प्रदान करती है। इनमें से प्रत्येक संगठनात्मक घटक अपनी योजनाओं का निर्माण करते है, इसके लिए वह कार्यक्रमों, परियोजनाओं, बजट, और संसाधन की आवश्यकताओं आदि का निर्धारण करते हैं। प्रत्येक निचले घटक की योजना क्रमिक रूप से उच्च घटक की योजनाओं में एकत्रित की जाती है जब तक कि निगमित योजना समग्र घटक योजनाओं को समग्र रूप में समाहित न कर ले। उदाहरण के लिए, उत्पादन विभाग में, प्रत्येक कारखाना अधीक्षक अपनी योजनाएँ तय करता है, जो क्रमशः सामान्य फोरमैन, वर्क मैनेजर और प्रोडक्शन मैनेजर की योजनाओं में समाहित हो जाती हैं। सभी विभागीय योजनाओं को निगमित योजना में एकीकृत किया जाता है। इस प्रकार, योजनायें निगमित योजना, मंडलीय/विभागीय योजना, अनुभागीय योजना और व्यक्तिगत मैनेजर की इकाई की योजना का एक पदानुक्रम है।

4) नियोजन भविष्य में एक संगठन को प्रतिबद्ध करता है: नियोजन भविष्य में एक संगठन बनाती है, क्योंकि भूतपूर्व, वर्तमान और भविष्य एक श्रृंखला में बंधे हुआ है | एक संगठन के उद्देश्य, रणनीतियां, नीतियां और परिचालन योजनाएँ इसके भविष्य की प्रभावशीलता को प्रभावित करती है, क्योंकि वर्तमान में किए गए फैसले और की गई गतिविधियाँ भविष्य में भी उसके प्रभाव को जारी रखते हैं। कुछ योजनाएं निकट भविष्य को प्रभावित करती हैं, जबकि अन्य इसे लंबे समय तक प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए, उत्पाद विविधीकरण या उत्पादन क्षमता के लिए योजना भविष्य में एक कंपनी को प्रभावित करती है, और आसानी से प्रतिवर्ती नहीं होती है, जबकि इसके कार्यालय स्थान के अभिन्यास से संबंधित योजनाओं को भविष्य में अपेक्षाकृत कम कठिनाई के साथ बदल दिया जा सकता है। यह बेहतर और अधिक सावधानीपूर्वक योजना बनाने की आवश्यकता पर केंद्रित है |

5) नियोजन यथास्थिति का प्रतिवाद है: नियोजन कम्पनी के लिए एक स्थान प्राप्त करने के सचेत उद्देश्य से किया जाता है जो अन्यथा पूरा नहीं होगा। इसलिए, नियोजन संगठनात्मक उद्देश्यों, नीतियों, उत्पादों, विपणन रणनीतियों और अन्य में हुए परिवर्तनों को संकेतिक करता है। हालांकि, अप्रभावित पर्यावरणीय परिवर्तनों से स्वयं नियोजन प्रभावित होता है। इसलिए, परीक्षा और पुनरू परीक्षा, भविष्य के लिए निरंतर पुनर्विचार, और अधिक प्रभावशाली पद्धतियों व बेहतर परिणाम के लिए निरंतर खोज की आवश्यकता होती है ।

इस प्रकार योजना एक सर्वव्यापक, निरंतर और गतिशील प्रक्रिया है। यह सभी अधिकारियों को भविष्य की अनुमानित और पूर्वानुमान करने का

उत्तरदायित्व प्रदान करता है, संगठन को अपनी चुनौतियों का सामना करने के साथ–साथ इसके द्वारा बनाए गए अवसरों का लाभ उठाने के लिए तैयार करता है, जबकि उसी समय, आज के पूर्व–प्रभावी निर्णय और क्रियाओं से होने वाली घटनाओं को प्रभावित भी करता है |

## 3.5 नियोजन का महत्व

नियोजन किसी भी संगठनात्मक उद्देश्यों के सफलता की प्रतिभू नहीं है, इसका प्रमाण यह है कि औपचारिक योजना के तहत काम करने वाली कंपनियां सीमित औपचारिक योजना के तहत काम करने वाली कम्पनियों की तुलना में लगातार बेहतर प्रदर्शन करती हैं और समय–समय पर अपने प्रदर्शन को भी बेहतर बनाती हैं। किसी संगठन के लिए यह बहुत ही दुर्लभ है कि वह भाग्य या परिस्थितियों के सहारे सफल हो | निम्नलिखित कुछ महत्वपूर्ण कारण हैं जो यह सिद्ध करते है कि क्यों नियोजन को एक महत्वपूर्ण प्रबंधकीय कार्य माना जाता है:

1. आधुनिक व्यापार में नियोजन आवश्यक है: तेजी से होने वाले तकनीकी परिवर्तन, उपभोक्ता प्राथमिकताओं में गतिशील बदलाव और बढ़ती प्रतिस्पर्धा के कारण आधुनिक व्यवसाय की जटिलता को ध्यान में रखते हुए व्यवस्थित संचालन की आवश्यकता न केवल वर्तमान वातावरण में बल्कि भविष्य के वातावरण में भी पड़ती है । चूंकि नियोजन भविष्य के दृष्टिकोण पर केन्द्रित होती है, इसलिए यह भविष्य की संभावित घटनाओं को ध्यान में रखता है।

2. नियोजन प्रदर्शन को प्रभावित करता हैरू कई प्रयोगसिद्ध अध्ययन औपचारिक नियोजन के कार्य के रूप में संगठनात्मक सफलता का प्रमाण प्रदान करते हैं, यह सफलता निवेश पर वापसी, बिक्री की मात्रा, अंशो की आय में वृद्धि जैसे कारकों द्वारा मापी जाती है। मशीनरी, इस्पात, तेल, रसायन और दवाईओं के रूप में विभिन्न औद्योगिक उत्पादों के फर्मों की जांच से पता चलता है कि औपचारिक योजना में लगी हुए कम्पनियां उन कम्पनियों की तुलना में बेहतर प्रदर्शन करती हैं जो औपचारिक नियोजन का पालन नहीं करती है |

3. नियोजन उद्देश्यों पर ध्यान केंद्रित करता हैरू औपचारिक नियोजन की प्रभावशीलता मुख्य रूप से उद्देश्यों की स्पष्टता पर आधारित है। उद्देश्य एक दिशा प्रदान करते हैं और सभी नियोजन निर्णय इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निर्देशित होते हैं। योजनाएं उन पर ध्यान केंद्रित करके लगातार इन उद्देश्यों के महत्व को सुदृढ़ करती हैं। यह प्रबंधकीय समय और प्रयासों की अधिकतम उपयोगिता सुनिश्चित करता है।

4. नियोजन समस्याओं और अनिश्चितताओं का पूर्वानुमान है: भविष्य की सटीक रूप से संभव पूर्वानुमान के उद्देश्य से प्रासंगिक जानकारी एकत्र करना किसी भी औपचारिक नियोजन प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण पहलू है । इससे अव्यवस्थित निर्णयों की संभावना कम हो जाएगी। चूंकि संगठन की भविष्य की आवश्यकताओं को अग्रिम में प्रत्याशित किया जाता है, इसलिए संसाधनों का समुचित अधिग्रहण और आवंटन की योजना बनाई जा सकती है, इस प्रकार अपव्यय को कम करना व संसाधनों का इष्टतम उपयोग सुनिश्चित किया जा सकता है।

5. नियंत्रण की सुविधा के लिए नियोजन आवश्यक है: नियंत्रण में स्थापित मानकों के निमित्त वास्तविक संचालन और निरंतर विश्लेषण शामिल है। उद्देश्यों को प्राप्त करने के आलोक में इन मानकों को निर्धारित किया जाता है परिचालन की आवधिक समीक्षा यह निर्धारित कर सकती हैं कि क्या योजना सही तरीके से लागू की जा रही है या नहीं। अच्छी तरह से विकसित योजनाएं दो तरीकों से नियंत्रण की प्रक्रिया को सहायता कर सकती हैं।

सबसे पहले, नियोजन प्रक्रिया संभावित प्रदर्शन से संभावित विचलन की अग्रिम चेतावनी की एक प्रणाली स्थापित करती है | नियंत्रण प्रक्रिया के लिए योजना का दूसरा योगदान यह है कि यह मात्रात्मक समंक प्रदान करता है जो वास्तविक प्रदर्शन की तुलना न केवल संगठन की अपेक्षाओं के साथ बल्कि उद्योग के समकों या बाजार पूर्वानुमान के साथ भी मात्रात्मक शर्तों में करना आसान बनाता है ।

6. नियोजन निर्णय लेने की प्रक्रिया में मदद करता है: चूंकि नियोजन संगठनात्मक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए किए जाने वाले कार्यों और कदमों को निर्दिष्ट करती है, इसलिए यह भविष्य की गतिविधियों के बारे में निर्णय लेने का एक आधार है। यह प्रबंधकों को मौजूदा गतिविधियों के बारे में नियमित निर्णय लेने में भी मदद करती है चूँकि उद्देश्य, योजनाएँ, नीतियां, कार्यक्रमों आदि स्पष्ट रूप से निर्धारित है।

## 3.6 नियोजन के लाभ व सीमाएँ

औपचारिक नियोजन के महत्व की चर्चा पहले से ही हुई है। एक सशक्त और विस्तृत नियोजन कार्यक्रम प्रबंधकों को भविष्य उन्मुख होने में सहायता करता है। यह प्रबंधकों को उद्देश्य और दिशा प्रदान करता है। विशिष्ट उद्देश्य और कार्यवाही विवरणों के साथ योजनाओं के लिए एक सुदृढ़ मूल योजना (ब्लू प्रिंट) से संगठन को कई लाभ हैं, जो निम्नानुसार हैं:

1. उद्देश्य पर ध्यान केंद्रित करता हैरू चूंकि सभी योजनाएं उद्यम उद्देश्यों को प्राप्त करने की दिशा में निर्देशित हैं, इसलिए नियोजन के कार्य में इन उद्देश्यों पर ध्यान केंद्रित किया गया है। उद्देश्यों को निर्धारित करना नियोजन का पहला कदम है। यदि उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया है, तो योजना के निष्पादन को भी इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निर्देशित किया जाएगा।

2. मितव्ययी संचालन सुनिश्चित करता हैरू नियोजन में बहुत से मानसिक अभ्यास शामिल हैं जो उद्यम में कुशल संचालन को प्राप्त करने के लिए निर्देशित है। यह भिन्न–भिन्न प्रकार की असंगठित गतिविधि के लिए संयुक्त निदेशित प्रयास, असमान प्रवाह काम के लिए समान प्रवाह, और आकस्मिक निर्णय व्ययों के लिए विचारपूर्वक निर्णयों को प्रतिस्थापित करता है । यह संसाधनों का बेहतर उपयोग करने में मदद करता है और इस तरह लागत भी कम होती है।

3. अनिश्चितता कम कर देता हैरू नियोजन भविष्य की अनिश्चितताओं को कम करने में मदद करती है क्योंकि इसमें भविष्य की घटनाओं की प्रत्याशा शामिल है। प्रभावी नियोजन विचारपूर्वक सोच का परिणाम है जो तथ्यों और समकों पर आधारित होती है । इसमें भविष्यवाणी भी शामिल है | नियोजन में विभिन्न अनिश्चितताओं का पता लगाने के लिए व्यवसाय प्रबंधक को एक अवसर मिलता है, जो लोगों की प्रौद्योगिकी, अभिरुचि और फैशन में बदलाव आदि के

कारण हो सकते हैं । योजनाओं में इन अनिश्चितताओं की कमी को पूरा करने के लिए पर्याप्त प्रावधान किए गए हैं।

4. नियंत्रण की सुविधारू नियोजन प्रबंधकों को अपने नियंत्रण के कार्य के निर्वहन में मदद करता है। नियोजन और नियंत्रण इस प्रकार अविभाज्य हैं कि अनियोजित कार्रवाई को नियंत्रित नहीं किया जा सकता क्योंकि नियंत्रण में योजनाओं से उत्पन्न विचलन को सुधार कर पूर्वनिर्धारित क्रियाविधि पर की जाने वाली गतिविधियों को शामिल किया जाता है। नियोजन नियंत्रण के मानकों को प्रस्तुत करके नियंत्रण में मदद करता है। यह लक्ष्य और प्रदर्शन के मानकों को दर्शाता है जो नियंत्रण कार्य के प्रदर्शन के लिए आवश्यक हैं।

5. नवाचार और रचनात्मकता को प्रोत्साहित करनारू नियोजन मूल रूप से प्रबंधन का निर्णायक कार्य है। यह प्रबंधकों के बीच अभिनव और रचनात्मक सोच में मदद करता है क्योंकि कई नए विचार एक प्रबंधक के दिमाग में तब आते हैं जब वे योजना बना रहे होते हैं। यह प्रबंधकों के मध्य एक प्रगतिशील मनोभाव बनाता है |

6. प्रोत्साहन में वृद्धि करता है: एक अच्छी योजना प्रणाली सभी प्रबंधकों की भागीदारी सुनिश्चित करती है जो उनकी प्रेरणा में वृद्धि करती है। इससे श्रमिकों की प्रेरणा में भी वृद्धि होती है क्योंकि उन्हें पता है कि उनसे क्या उम्मीद की जाती है। इसके अलावा, नियोजन भविष्य के प्रबंधकों के लिए एक अच्छा प्रशिक्षण उपकरण के रूप में कार्य करता है।

7. प्रतिस्पर्धात्मक बल में सुधाररू प्रभावी नियोजन एक उद्यम के लिए अन्य उद्यमों पर प्रतिस्पर्धात्मक बढ़त देता है, जो कि नियोजन नहीं करते हैं या अप्रभावी नियोजन करते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि नियोजन में क्षमता का विस्तार, कार्य के तरीकों में परिवर्तन, गुणवत्ता में बदलाव, लोगों की प्रत्याशित अभिरुचि व फैशन और तकनीकी परिवर्तनों आदि की प्रवृत्ति शामिल हो सकती है।

8. बेहतर समन्वय प्राप्त करना: नियोजन संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आदेश की एकता की सुरक्षा प्रदान करता है। सभी गतिविधियों को सामान्य लक्ष्यों की दिशा में निर्देशित किया जाता है। समग्र उद्यम में एक एकीकृत प्रयास होता है | यह प्रयासों के दोहराव से बचने में भी मदद करेगा | इस प्रकार, संगठन में बेहतर समन्वय होगा।

**नियोजन की सीमाएं:** कभी—कभी, नियोजन अपेक्षित परिणाम प्राप्त करने में विफल रहता है। व्यवहार में नियोजन की विफलता के कई कारण हैं जिनकी चर्चा नीचे की गई हS:

1. **विश्वसनीय समंको का अभाव:** विश्वसनीय तथ्यों और समकों की कमी हो सकती है जिन पर योजनाएं आधारित हो सकती हैं। नियोजन अपना मूल्य खो सकता है यदि विश्वसनीय जानकारी उपलब्ध नहीं है या योजनाकार विश्वसनीय जानकारी का उपयोग करने में विफल रहता है तो । नियोजन को सफल बनाने के लिए, योजनाकार को तथ्यों और आंकड़ों की विश्वसनीयता का निर्धारण करना चाहिए और अपनी योजनाओं को विश्वसनीय जानकारी के आधार पर ही पूरा करना चाहिए।

2. **पहल का अभाव:** योजना एक प्रगतिशील प्रक्रिया है। अगर किसी प्रबंधक में नेतृत्व की बजाय पालन करने की प्रवृत्ति होती है, तो वह अच्छी योजना नहीं बना पाएगा इसलिए, योजनाकार को आवश्यक पहल लेनी चाहिए। वह एक सक्रिय योजनाकार होना चाहिए और योजना को अच्छे से समझने व उचित रूप से कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त जाँच करते करना चाहिए ।

3. **महंगी प्रक्रिया:** नियोजन अधिक समय लेने वाली और महंगी प्रक्रिया है। इससे कुछ मामलों में कार्रवाई में देरी हो सकती है लेकिन यह भी सच है कि अगर नियोजन प्रक्रिया में पर्याप्त समय नहीं दिया गया है, तो इस तरह की योजनाएं अवास्तविक साबित हो सकती हैं। इसी प्रकार, नियोजन में विभिन्न विकल्पों की जानकारी का एकत्रण व मूल्यांकन और विश्लेषण करने की लागत शामिल है। अगर प्रबंधन नियोजन पर खर्च करने के लिए तैयार नहीं है, तो परिणाम अच्छे नहीं हो सकते हैं।

4. **संगठनात्मक कामकाज में कठोरता:** संगठन में आंतरिक कठोरता योजनाकारों को कठोर योजना बनाने के लिए मजबूर कर सकती है। इससे प्रबंधकों को पहल करने और अभिनव सोच करने से रोकना पड़ सकता है। इसलिए योजनाकारों को उद्यम में पर्याप्त कार्य स्वतंत्रता और लचीलेपन की सुविधा मिलनी चाहिए। उन्हें हमेशा कठोरता से प्रक्रियाओं का पालन करने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए |

5. **परिवर्तन की गैर–स्वीकार्यता:** परिवर्तन के लिए प्रतिरोध एक और पहलू है जो नियोजन को सीमित करता है। यह व्यापारिक दुनिया में आमतौर अनुभव की जाने वाली घटना है। कभी–कभी योजनाकार स्वयं परिवर्तन पसंद नहीं करते हैं और अन्य अवसरों पर वे भी नहीं सोचते हैं कि बदलाव लाना वांछनीय है, क्योंकि यह नियोजन प्रक्रिया को अप्रभावी बनाता है।

6. **बाहरी सीमाएं:** योजनाकारों की प्रभावशीलता कभी–कभी बाहरी कारकों के कारण भी सीमित होती है जो योजनाकारों के नियंत्रण से बाहर हैं। बाहरी रणनीतियां के बारे में भविष्यवाणी करना बहुत कठिन हैं | युद्ध की अचानक घोषणा, सरकारी नियंत्रण, प्राकृतिक विनाश आदि अन्य कारक प्रबंधन के नियंत्रण से बाहर हैं। इससे योजनाओं का निष्पादन बहुत कठिन होता है।

7. **मानसिक बाधाएं:** मनोवैज्ञानिक कारक भी नियोजन के दायरे को सीमित करते हैं। कुछ लोग भविष्य की तुलना में वर्तमान को अधिक महत्वपूर्ण प्रस्तुत करते हैं क्योंकि वर्तमान निश्चित है। ऐसे व्यक्ति द्वारा मनोवैज्ञानिक रूप से नियोजन का विरोध किया जाता है। लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि गतिशील प्रबंधक हमेशा आगे ही देखते हैं। उद्यम की दीर्घकाल की उन्नति तब तक हासिल नहीं की जा सकती जब तक भविष्य के लिए उचित नियोजन नहीं किया जाता है।

## 3.7 नियोजन की सीमाओं को कम करने के उपाय

कुछ लोगों का मानना है कि तेजी से बदलते वातावरण में नियोजन सिर्फ एक पद्धति है यह प्रबंधकीय योजना के बारे में सही आकलन नहीं है द्य नियोजन कुछ कठिनाइयों से जुड़ा हो सकता है जैसे समंको की अनुपलब्धता, योजनाकारों की ओर से सुस्ती, प्रक्रियाओं की कठोरता, बदलने के लिए प्रतिरोध और बाहरी

वातावरण में परिवर्तन। लेकिन निम्न उपायों की सहायता से इन समस्याओं को दूर किया जा सकता है:

1. **स्पष्ट उद्देश्य निर्धारित करना:** कुशल नियोजन के लिए स्पष्ट उद्देश्यों का होना आवश्यक है। उद्देश्य केवल समझने योग्य ही नहीं बल्कि तर्कसंगत भी होने चाहिए। विभिन्न विभागों के उद्देश्यों को निर्धारित करने के लिए उद्यम के समग्र उद्देश्य मार्गदर्शक स्तंभ होने चाहिए। यह उद्यम में समन्वित योजना बनाने में सहायता करते हैं।

2. **प्रबंधन सूचना प्रणाली:** प्रबंधन की एक कुशल व्यवस्था स्थापित की जानी चाहिए ताकि प्रबन्धकों को नियोजन कार्य करने से पहले तर्कसंगत तथ्यों और आंकड़ों को उपलब्ध कराया जा सकें । सही प्रकार की जानकारी की उपलब्धता, उद्देश्य की पूरी समझ और अधीनस्थों की ओर से किये जाने वाले विरोध आदि की समस्याओं पर काबू पाने में मदद करेगी।

3. **सावधानीपूर्वक प्रस्तावना बनाना:** नियोजन प्रस्तावना एक ढांचे का निर्माण करती है, जिसमें नियोजन किया जाता है। ये भविष्य में होने वाली संभावनाओं की धारणा हैं। नियोजन को हमेशा भविष्य की घटनाओं के बारे में कुछ मान्यताओं की आवश्यकता होती है। दूसरे शब्दों में, समग्र व्यापार योजना को अंतिम रूप देने से पहले भविष्य की पतिस्थितियों जैसे विपणन, मूल्य निर्धारण, सरकारी नीति, कर संरचना, व्यापार चक्र आदि को निर्धारित करना एक शर्त है। प्रत्यावर्तन के समय प्रासंगिक कारकों को वांछित महत्व देना चाहिए। यह कहा जा सकता है कि प्रस्तावना  जो एक उद्यम के लिए सामरिक महत्व की हो सकता है, वह आकार, व्यवसाय की प्रकृति, बाजार की प्रकृति आदि के कारण किसी दूसरे उद्यम के लिए समान महत्व की नहीं हो सकता है।

4. **व्यावसायिक पूर्वानुमान:** व्यापार आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण से काफी प्रभावित होता है। प्रबंधन में ऐसे वातावरण में परिवर्तन के पूर्वानुमान के लिए एक तंत्र होना चाहिए। एक अच्छी भविष्यवाणी नियोजन की प्रभावशीलता में योगदान देगा द्य

5. **गतिशील प्रबंधक:** नियोजन के कार्य से संबंधित व्यक्तियों को गतिशील होना चाहिए। उन्हें व्यावसायिक पूर्वानुमान बनाने और नियोजन परिसरप्रस्तावना का विकास करने के लिए आवश्यक पहल की आवश्यकता है। एक प्रबंधक को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि नियोजन हमेशा भविष्य की ओर देखता है और वह भविष्य के लिए योजना बनाता है जो कि अत्यधिक अनिश्चित है |

6. **लचीलापन:** लचीलेपन के कुछ तत्वों को नियोजन प्रक्रिया में प्रस्तुत किया जाना चाहिए क्योंकि आधुनिक कारोबारी एक ऐसे वातावरण में कार्य करते हैं जो बदलते रहते हैं। प्रभावी परिणाम प्राप्त करने के लिए, इन परिस्थितियों के अनुसार मांग में आवश्यक वृद्धि, विलोपन, या प्रत्यावर्तन करने के लिए एक अवसर होना चाहिए।

7. **संसाधनों की उपलब्धता:** प्रबंधन के लिए उपलब्ध संसाधनों के आलोक में विकल्पों का निर्धारण और मूल्यांकन किया जाना चाहिए। विकल्प किसी भी निर्णय की समस्या में हमेशा उपलब्ध होते हैं। लेकिन उपलब्ध संसाधनों के आलोक में उनके सापेक्ष वृद्धि और कमी आदि बिन्दुओं का मूल्यांकन भी किया जाना है द्य जो

विकल्प चुना गया है वह केवल उद्यम के उद्देश्यों से संबंधित नहीं होना चाहिए, बल्कि दिए गए संसाधनों की सहायता से पूरा किये जाने की लिए सक्षम होना चाहिए ।

8. **लागत–लाभ विश्लेषण:** योजनाकारों को यह सुनिश्चित करने के लिए लागत–लाभ विश्लेषण करना होगा कि नियोजन के लाभ इसमें शामिल लागत से अधिक हैं। वातावरण में होने वाले तेजी से परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए मापन योग्य लक्ष्यों की स्थापना, उपलब्ध कार्रवाई के वैकल्पिक कार्यवाही की योजना की स्पष्ट जानकारी, उचित परिस्थिति और व्युत्पन्न योजनाओं को तैयार करना आवश्यक है ।

## 3.8 नियोजन के बुनियादी सिद्धांत

योजना के महत्वपूर्ण सिद्धांत इस प्रकार से हैं:

1. **उद्देश्य के लिए योगदान का सिद्धांत:** योजनाओं और उनके घटकों का उद्देश्य संगठनात्मक लक्ष्यों और उद्देश्यों को विकसित करने और प्राप्त करने में सहायता करना है। लंबी दूरी की योजनाओं को मध्य–श्रेणी की योजनाओं के साथ जोड़ा जाना चाहिए, जो इसके बदले में संगठनात्मक उद्देश्यों को अधिक प्रभावी ढंग से और आर्थिक रूप से पूरा करने के लिए कम दूरी वाली योजनाओं के साथ मिला देना जाना चाहिए।

2. **सीमित कारकों का सिद्धांत:** योजनाओं को वैकल्पिक योजनाओं, रणनीतियों, नीतियों, प्रक्रियाओं और मानकों के विकास के दौरान सीमित कारकों (जनशक्ति, धन, मशीन, सामग्री और प्रबंध) को ध्यान में रखना चाहिए।

3. **नियोजन की व्यापकता का सिद्धांत:** नियोजन प्रबंध के सभी स्तरों में पाया जाता है। रणनीतिक योजना या लंबी दूरी की योजना शीर्ष प्रबंधन से संबंधित है, जबकि मध्यवर्ती और कम दूरी की योजना क्रमशः मध्य और क्रियात्मक प्रबंध से सम्बन्धित है।

4. **नेविगेशनल परिवर्तन का सिद्धांत:** इस सिद्धांत के लिए आवश्यक है कि प्रबंधकों को समय–समय पर घटनाओं की जांच करनी चाहिए और वांछित लक्ष्य के लिए एक कार्यविधि बनाए रखने के लिए योजनाओं को दोबारा तैयार करना चाहिए। मार्गनिर्देशक का यह कर्तव्य है कि वह निरंतर जांच करते रहे चाहे उसका जहाज विशाल समुद्र में निर्धारित दिशा में पहुँचने के लिए सही दिशा का अनुसरण कर रहा हो । उसी तरह, एक प्रबंधक को यह सुनिश्चित करने के लिए अपनी योजनाओं की जांच करनी चाहिए कि यह आवश्यकतानुसार आगे बढ़ रहीं हैं। यदि उन्हें अप्रत्याशित घटनाओं का सामना करना पड़ता है तो उन्हें अपनी योजनाओं की दिशा बदलनी चाहिए। यह तब उपयोगी है जब योजना में लचीलेपन का तत्व होता है। यह प्रबंधक की जिम्मेदारी है कि लगातार बदलते वातावरण की चुनौती का सामना करने के लिए जिसे देखा नहीं है के लिए योजनाओं की दिशा को बदलते रहना चाहिए और उसमे सामंजस्य स्थापित करते रहना चाहिए ।

5. **लचीलेपन का सिद्धांत:** लचीलापन को संगठनात्मक योजनाओं में बनाया जाना चाहिए। पूर्वानुमान और निर्णय लेने में त्रुटि की संभावना और भविष्य की अनिश्चितताएँ दो सामान्य कारक हैं जो प्रबंधकीय नियोजन में लचीलेपन की मांग

करते हैं | लचीलेपन के सिद्धांत में कहा गया है कि प्रबंधक को वातावरण में बदलाव के कारण वर्तमान नियोजन को बदलने में सक्षम होना चाहिए ताकि उसकी लागत में या बिना देरी के गतिविधियां स्थापित लक्ष्यों की ओर अग्रसारित हो सके । इस प्रकार, किसी उत्पाद के लिए मांग में अप्रत्याशित गिरावट के कारण बिक्री योजना में व उत्पादन योजना में बदलाव की आवश्यकता होगी। इन योजनाओं में परिवर्तन तब शुरू किया जा सकता है, जब इन्हें लचीलेपन की विशेषताएं होती हैं। भविष्य की अनिश्चितताओं या बदलते वातावरण के अनुकूल योजनाओं का अनुकूलन करना आसान है यदि नियोजन करते समय लचीलापन को महत्व दिया जाता है |

## 3.9 श्रेणियां और नियोजन के स्तर

नियोजन को विभिन्न आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है, जिनकी चर्चा नीचे की गई है:

1. **सामरिक और कार्यात्मक नियोजन:** रणनीतिक या निगमित योजना में, शीर्ष प्रबंधन, उद्यम के सामान्य उद्देश्यों को निर्धारित करता है और वर्तमान में उपलब्ध संसाधनों और भविष्य में उपलब्ध होने की संभावना के आलोक में उन्हें पूरा करने के लिए आवश्यक कदम उठाते है। दूसरी तरफ, कार्यात्मक योजना वह योजना है जो कि उत्पादन, विपणन, वित्त और क्रय जैसे कार्यात्मक क्षेत्रों को समाविष्ट करती है।

2. **लंबी–दूरी और कम–दूरी का नियोजन:** लंबी दूरी का नियोजन उद्यम के दीर्घकालिक लक्ष्य निर्धारित करती है और फिर इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए विशिष्ट योजना तैयार करने के लिए आगे बढती है। इसमें बुनियादी समस्याओं और मुद्दों के बारे में अनुमान लगाने, विश्लेषण करने और निर्णय लेने का प्रयास शामिल है, जो कि उद्यम के वर्तमान कार्यकारी क्षितिज से परे पहुंचने को महत्व देते हैं। दूसरी तरफ कम दूरी का नियोजन, लंबी दूरी के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए अल्पकालिक गतिविधियों के निर्धारण से सम्बन्धित है। कम दूरी की योजना अपेक्षाकृत कम अवधि से संबंधित है और लंबी दूरी की योजनाओं के अनुरूप है। क्रियाशील नियोजन आम तौर पर कम दूरी से संबंधित होती है |

3. **तदर्थ और स्थायी नियोजन:** कुछ विशिष्ट विषयों जैसे परियोजना नियोजन के लिए तदर्थ नियोजन समितियां गठित की जा सकती हैं, लेकिन स्थायी योजनाओं को बारदृबार इस्तेमाल किया जाता है द्य इसमें संगठनात्मक संरचना, मानक प्रक्रियाएं, मानक तरीकें आदि शामिल हैं।

4. **प्रशासनिक और कार्यकारी नियोजन:** प्रशासनिक नियोजन मध्य स्तर प्रबंधन द्वारा की जाती है जो कार्यकारी योजनाओं की नींव प्रदान करती है। दूसरी तरफ, कार्यकारी नियोजन, प्रशासनिक योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए निचले स्तर के प्रबंधक द्वारा किया जाता है।

5. **वस्तुपरक नियोजन:** यह भौतिक स्थान व निर्माण और उपकरणों की व्यवस्था से संबंधित है।

6. **औपचारिक और अनौपचारिक नियोजन:** ऊपर वर्णित विभिन्न प्रकार के नियोजन औपचारिक रूप से होते है। वे प्रबंधन द्वारा व्यवस्थित रूप से किए जाते

हैं। वे विशिष्ट लक्ष्यों और उन्हें प्राप्त करने के लिए उठाये जाने वाले कदमों को लिखित में निर्दिष्ट करते हैं । वे आंतरिक नियंत्रण प्रणालियों की स्थापना की सुविधा भी प्रदान करते हैं। दूसरी तरफ अनौपचारिक नियोजन, कुछ व्यक्तियों की मात्र सोच होती जो भविष्य में औपचारिक नियोजन का आधार बन सकती है।

**नियोजन के स्तर**

प्रबंधन सिद्धांत में यह विचार करना सामान्य है कि नियोजन के तीन बुनियादी स्तर हैं, हालांकि व्यवहार में प्रबंधन के तीन स्तरों से अधिक स्तर हो सकते है । योजना के तीन स्तर निम्नानुसार हैं:

1. **शीर्ष स्तर नियोजन:** समग्र या सामरिक योजना के रूप में भी जाना जाता है, शीर्ष स्तर की नियोजन शीर्ष प्रबंधन द्वारा की जाती है, यानी निदेशक मण्डल या शासी निकाय। इसमें संगठन की लंबी दूरी के उद्देश्यों और नीतियां शामिल हैं और अनुभागीय उद्देश्य के बजाय निगमित परिणामों से सम्बन्धित है। शीर्ष स्तर की नियोजन पूरी तरह से लंबी दूरी की है और लंबी अवधि के उद्देश्यों के साथ जुडी हुई होती है। इसे नियोजन के श्क्याश कहा जा सकता है |

2. **द्वितीय स्तर नियोजन:** इसे सामरिक नियोजन के रूप में भी जाना जाता है, यह मध्यम स्तर के प्रबंधकों या विभाग प्रमुखों द्वारा किया जाता है। यह नियोजन के श्कैसेश के साथ सम्बंधित है द्य इसका सबसे अच्छा लाभ संसाधनों की तैनाती से संबंधित है द्य यह मुख्य रूप से लंबी दूरी की नियोजन के साथ संबंधित है, लेकिन विशेष रूप से नहीं है, बल्कि इसकी प्रकृति ऐसी है कि इसकी समय सीमा सामान्यतः सामरिक नियोजन से छोटी होती है। इसका कारण यह है कि आमतौर पर इसका ध्यान संगठन के मुख्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए क्रमशः समर्पित होता हैं। यह वास्तव में, पूरे संगठन के बजाय कार्यों और विभागों के लिए उन्मुख है।

3. **तृतीय स्तर की योजना:** इसे परिचालन या गतिविधि नियोजन के रूप में भी जाना जाता है, यह विभाग के प्रबंधकों और पर्यवेक्षकों से सम्बन्धित है। यह सामरिक या विभागीय योजनाओं को लागू करने के लिए बद्ध है। यह आम तौर पर अल्प अवधि के लिए है और सामरिक नियोजन के अनुरूप होने के लिए अक्सर इसे संशोधित किया जा सकता है।

## 3.10 नियोजन की प्रक्रिया या नियोजन में आवश्यक कदम

नियोजन एक प्रक्रिया है जो किये जाने वाले कई कदमों को समाहित करता है। यह एक बौद्धिक अभ्यास और कार्रवाई की योजना का सचेत निर्धारण है। इसलिए, योजना बनाने में विचार करने के लिए कई आवश्यक कारकों पर गंभीर विचार की आवश्यकता होती है। तथ्यों को एकत्र किया जाता और उनका विश्लेषण किया जाता है और इन सभी में से श्रेष्ट का चुनाव किया जाता है और अपनाया जाता है। नियोजन प्रक्रिया, एक संगठन के लिए और एक योजना के लिए वैध हो सकता है, लेकिन अन्य सभी संगठनों या सभी प्रकार की योजनाओं के लिए मान्य नहीं हो सकता है, क्योंकि नियोजन प्रक्रिया में शामिल जाने वाले विभिन्न कारक संगठन दर संगठन में भिन्न हो सकते हैं या योजना दर योजना भिन्न हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, किसी बड़े संगठन की नियोजन प्रक्रिया

एक छोटे संगठन के लिए समान नहीं हो सकती है द्य आमतौर पर नियोजन में शामिल कदम निम्नानुसार हैं:

1. **सुनिश्चित करने योग्य लक्ष्यों को स्थापित करना या लक्ष्य निर्धारित करना:** नियोजन में पहला कदम उद्यम उद्देश्यों को निर्धारित करना है। इन्हें अक्सर ऊपरी स्तर या शीर्ष प्रबंधकों द्वारा आमतौर पर कई संभव उद्देश्यों पर ध्यान से विचार करने के उपरान्त निर्धारित किया जाता है, । कई प्रकार के उद्देश्यों का चयन प्रबंधकों द्वारा किया जा सकता है: एक वांछित बिक्री की मात्रा या विकास दर, एक नए उत्पाद या सेवा का विकास, या इससे भी अधिक सार लक्ष्य जैसे कि समुदाय में अधिक सक्रिय बनना आदि। चयनित लक्ष्य कई प्रकार के घटकों की संख्या जैसे संगठन का मुख्य ध्येय, उसके प्रबंधकों द्वारा धारित मूल्य, और संगठन की वास्तविक और संभावित क्षमता आदि पर निर्भर करेगा ।

2. **नियोजन प्रस्तावना की स्थापना:** नियोजन में दूसरा कदम नियोजन प्रस्तावना की स्थापना करना है, यानी भविष्य के बारे में कुछ मान्यताओं का निर्धारण जिसके आधार पर योजना अच्छे से तैयार की जाएगी। नियोजन प्रस्तावना नियोजन की सफलता के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि वे आर्थिक स्थितियों, उत्पादन लागत और कीमतों, संभावित प्रतिस्पर्धी व्यवहार, पूंजी और भौतिक उपलब्धता, सरकारी नियंत्रण आदि की आपूर्ति करते हैं।

3. **नियोजन अवधि तय करना:** एक बार ऊपरी स्तर के प्रबंधकों ने बुनियादी दीर्घकालिक लक्ष्यों और नियोजन प्रस्तावना का चयन कर लिया है, तो अगला कार्य नियोजन की अवधि तय करना होता है। व्यवसाय उनके नियोजन काल में काफी बदलता रहता है | कुछ उदाहरणों में नियोजन केवल एक वर्ष के लिए किया जाता है, जबकि अन्य में इसकी अवधि दशकों तक चली जाती हैं। प्रत्येक मामले में, हालांकि, नियोजन के लिए एक विशेष समय सीमा चुनने में हमेशा कुछ न कुछ तर्क होता है। कंपनियां आम तौर पर भविष्य को अवधि का आधार बनाती हैं जिसका यथोचित अनुमान लगाया जा सकता हैं। एक अवधि के विकल्प को प्रभावित करने वाले अन्य कारक निम्नानुसार हैं: (ए) एक नए उत्पाद के विकास और व्यावसायीकरण की समय सीमा; (बी) पूंजी निवेश को प्राप्त करने के लिए आवश्यक समय या भुगतान वापस अवधि; और (सी) पहले से ही की गई प्रतिबद्धताओं का विस्तार |

4. **निष्कर्ष कार्रवाई की वैकल्पिक कार्यविधि:** नियोजन का चौथा चरण कार्रवाई की वैकल्पिक कार्यविधि की खोज करना और व इनकी जांच करना है। उदाहरण के लिए, एक विदेशी तकनीशियन या विदेशों में प्रशिक्षित स्टाफ के द्वारा तकनीकी जानकारी कैसे सुरक्षित रखी जा सकती है इसी तरह, उत्पाद सीधे उपभोक्ता को कंपनी के बिक्रीकर्ता या अनन्य एजेंसियों के माध्यम से बेचा जा सकता है। शायद ही कभी ऐसी योजना होती है जिसके लिए उचित विकल्प उपलब्ध नहीं होते हैं, और अक्सर एक विकल्प जो स्पष्ट नहीं है वह ही सबसे अच्छा साबित होता है।

5. **कार्रवाई की कार्यविधि का मूल्यांकन करना और चयन करना:** वैकल्पिक कार्यविधि का चयन होने के बाद, पांचवें चरण में उन्हें प्रस्तावना और लक्ष्यों के आलोक में उनका मूल्यांकन करना और सर्वोत्तम पाठ्यक्रम या कार्रवाई की

कार्यविधि का चयन करना होता है। यह मात्रात्मक तकनीक और संचालन अनुसंधान की सहायता से किया जाता है।

6. **व्युत्पन्न योजनाओं का विकास:** एक बार योजना यदि तैयार कर ली गई है, तो उसके व्यापक लक्ष्यों को संगठन के दिन–प्रतिदिन के कार्यों में अनुवादित किया जाना चाहिए। मध्य और निचले स्तर के प्रबंधकों को अपने उप–इकाइयों के लिए उचित योजनाएं, कार्यक्रम और बजट तैयार करना चाहिए। ये व्युत्पन्न योजनाओं के रूप में वर्णित हैं। इन व्युत्पन्न योजनाओं को विकसित करने में, निचले–स्तर के प्रबंधक ऊपरी स्तर के प्रबंधकों द्वारा उठाए गए कदमों के समान कदम उठाते हैं – यथार्थवादी लक्ष्यों का चयन, उनके उप–इकाइयों की विशिष्ट ताकत और कमजोरियों का आकलन और वातावरण के उन हिस्सों का विश्लेषण कर सकते हैं जो उन्हें प्रभावित कर सकते हैं।

7. प्रगति का मापन और नियंत्रित करनारू जाहिर है, प्रगति की निगरानी किये बिना एक योजना को अपनी कार्यविधि को प्रसारित करना नासमझी है। इसलिए नियंत्रण की प्रक्रिया किसी भी योजना का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। प्रबंधकों को अपनी योजनाओं की प्रगति की जांच करनी चाहिए ताकि वे (ए) योजना को क्रियान्वित करने के लिए जो भी उपचारात्मक कार्रवाई आवश्यक हो उसे कर सकें, या (बी) यदि यह अवास्तविक है तो मूल योजना को बदल सकें|

## 3.11 सारांश

नियोजन को प्रबंधन के अन्य कार्यों पर प्राथमिकता प्राप्त है और यह संगठनों में एक व्यापक तत्व है। इसमें प्रमुख गतिविधियां शामिल हैं जैसे उद्देश्यों को स्थापित करना, नीतियों का निर्धारण करना और निर्णय करना। नियोजन एक उच्च आदेश मानसिक प्रक्रिया है जिसे बौद्धिक संकायों, कल्पना, दूरदर्शिता और सुदृढ़ निर्णय के उपयोग की आवश्यकता होती है। प्रबंधकों की नियोजन से अनिश्चितता कम हो जाती है और यह उन्हें अपने संगठन के लक्ष्यों पर ध्यान केंद्रित करने में मदद करता है।

## 3.12 शब्दावली

- **नियोजन :** इकाई या गतिविधि के उद्देश्यों का निर्धारण।
- **निगमित योजनाएं :** पूरे संगठन के लिए निर्धारित योजनाएं।
- **पूर्वानुमान :** ज्ञात तथ्यों से अनुमान के द्वारा भविष्य की जांच के लिए व्यवस्थित प्रयास।
- **सामरिक नियोजन :** सामरिक नियोजन में संगठन के प्रमुख लक्ष्यों को तय करना शामिल है।

## 3.13 बोध प्रश्न

(ए) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए |

1. नियोजन भविष्य के...................... को कम करने में सहायता करता है क्योंकि इसमें भविष्य की घटनाओं की प्रत्याशा समाहित होती है।
2. संगठन में आंतरिक ............................... योजनाकारों को कठोर योजना बनाने के लिए मजबूर कर सकते हैं |

3. नियोजन के कार्य के साथ संबंधित व्यक्ति में ............................ दृष्टिकोण होना चाहिए |
4. नियोजन प्रबंधन के............................ स्तर पर पाया जाता है |

(बी) सही है या गलत

1. नियोजन केवल शीर्ष प्रबंधन की ही जिम्मेदारी है।
2. नियोजन अप्रत्याशित वातावरण परिवर्तन से प्रभावित होती है।
3. औपचारिक योजना की प्रभावशीलता मुख्य रूप से उद्देश्यों की स्पष्टता पर आधारित है |
4. नियोजन एक प्रेरक, सतत और गतिशील प्रक्रिया है।

## 3.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| (ए) | 1. | अनिश्चितताओं | 2. | दृढ़ता, |
| | 3. | गतिशील, | 4. | सभी। |
| (बी) | 1. | गलत , | 2. | सही , |
| | 3. | सही , | 4. | सही |

## 3.15 स्वपरख प्रश्न

1. "प्रबंधकीय नियोजन संचालन की एक समन्वित संरचना को हासिल करने की तलाश करती है" टिप्पणी कीजिए।
2. "एक उद्यम नियोजन के बिना जल्द ही विघटित हो जाएंगे, इसकी क्रियाएं उसी तरह से यादृच्छिक है जैसे शरद ऋतू से पहले पत्तों का गायब होना, और उसके कर्मचारी उसी तरह से भ्रमित होते है जैसे उथल पुथल वाली चींटी पहाड़ी में चींटियां भ्रमित हो जाती है"। टिप्पणी कीजिए |
3. नियोजन से आप क्या समझते हैं? इसके उद्देश्यों को परिभाषित कीजिए और इसके महत्व का आकलन करें। इसकी सीमाओं को दूर करने के लिए क्या उपाय अपनाने चाहिए?
4. "नियोजन वैकल्पिक कार्यवाही की योजना के मध्य एक विकल्प को समाहित करता है" संक्षेप में टिप्पणी कीजिए |
5. नियोजन प्रक्रिया में शामिल कदमों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

## 3.16 सन्दर्भ पुस्तकें


1. Kootnz & O'Donnell, Principles of Management.
2. J.S. Chandan, Management Concepts and Strategies.
3. Arun Kumar and R. Sharma, Principles of Business.
4. Management. Sherlerkar and Sherlerkar, Principles of Management.
5. Tripathi and Reddy, Principles of Management.
6. Kimball and Kimball, Principles of Industrial Organisation.

# इकाई 4 संगठन – अवधारणा, प्रक्रिया व प्रकार

**इकाई की रुपरेखा**

4.1 प्रस्तावना
4.2 संगठन का अर्थ और लक्षण
4.3 संगठन की प्रकृति
4.4 संगठन की प्रक्रिया में कदम
4.5 संगठन के उद्देश्य
4.6 संगठन के सिद्धांत
4.7 संगठन के लाभ
4.8 औपचारिक व अनौपचारिक संगठन
4.9 सारांश
4.10 शब्दावली
4.11 बोध परक प्रश्न
4.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.13 स्वपरख प्रश्न
4.14 सन्दर्भ पुस्तकें

## उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- संगठन का अर्थ विशेषताएँ, प्रकृति और उद्देश्य सहित इसकी मूल बातों की व्याख्या कर सकें ।
- संगठन की प्रक्रिया में शामिल चरणों की व्याख्या कर सकें ।
- संगठन के सिद्धांतो का वर्णन कर सकें ।
- औपचारिक व अनौपचारिक संगठनों के मध्य अन्तर स्पष्ट कर सकें ।

## 4.1 प्रस्तावना

संगठन प्रबंधन की रीढ़ है । कुशल संगठन के बिना, कोई प्रबंधन अपना कार्य आसानी से नहीं कर सकता है । सुदृढ़ संगठन उद्यम की निरंतरता और सफलता के लिए बहुत योगदान देता है । यह वे सामाजिक संस्थाएं हैं जो उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए लोगों को मिलकर काम करने में सक्षम बनाती हैं । संगठन एक प्रमुख बल है जो हमारे कार्य शैली, कार्य संस्कृति और कार्य कौशल को निर्धारित करता है। प्रबंधक का कार्य और भूमिका को परिभाषित करने में संगठन एक महत्वपूर्ण प्रबंधकीय कार्य है । एक सुदृढ़ संगठन व्यवसाय की हर समस्या के समाधान की एक कुंजी है । यही कारण है कि एंड्रयू कार्नेगी, एक अमेरिकी उद्योगपति ने कहा, "हमसे हमारे कारखानों को ले लो , हमारा व्यापार ले लो, परिवहन का मार्ग ले लो, हमारा पैसा ले लो। हमारे संगठन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं छोड़ दो, और इसके बाबजूद चार वर्षों में हम खुद को फिर से स्थापित कर लेंगे"।

## 4.2 संगठन का अर्थ और लक्षण

'संगठन' शब्द का अलग–अलग व्यक्तियों के द्वारा अलग अलग अर्थ लगाया जाता है। कई लेखकों ने अपने तरीके से संगठन की प्रकृति, विशेषताओं और सिद्धांतों को व्यक्त करने का प्रयास किया है। उदाहरण के लिए, समाजशास्त्र संगठनों के लिए यह व्यक्तियों, कक्षाओं, या किसी उद्यम की पदानुक्रम के संबंधों का एक अध्ययन होता है; मनोवैज्ञानिक संगठनों के लिए यह एक उद्यम में व्यक्तियों के व्यवहार की व्याख्या करने, अनुमानित करने और प्रभावित करने का एक प्रयास है; एक शीर्ष स्तर के कार्यकारी के लिए इसका आशय यह हो सकता है कि सबसे अच्छे संभव संयोजन में कार्यात्मक सघटकों को जोड़ा जाए ताकि एक उद्यम अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सके। श्संगठनश शब्द का प्रयोग लोगों के समूह और संबंधों की संरचना को व्यापक रूप से व्यक्त करने के लिए भी किया जाता है ।

संगठन की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएं नीचे दी गई हैं:

"यह उद्यम के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक गतिविधियों का समूह है और प्रत्येक समूह को आवश्यक अधिकार के साथ उसके प्रबंधक के पर्यवेक्षण हेतु सौंपता है"। **कून्तज और ओ' डोंनेल**

"सम्पादित किये जाने वाले कार्य को पहचानने और समूहबद्ध करने, उत्तरदायित्व और अधिकार को परिभाषित करना व प्रत्यायोजित करना और व्यक्तियों को लक्ष्यों को प्राप्त करने के उद्देश्य से अधिक कुशलता के साथ कार्य करने के लिए सक्षम बनाने की प्रक्रिया है"। **लुई ए एलन**

"वह संरचना और प्रक्रिया जिसके द्वारा व्यक्तियों का एक सहकारी समूह जो अपने सदस्यों को कार्यों आवंटित करता है, संबंधों को स्पष्ट करता है, और उनकी गतिविधियों को सामान्य उद्देश्यों के लिए एकीकृत करता है"। **जोसफ एल मैस्सिव**

उपरोक्त परिभाषाओं से, यह स्पष्ट है कि संगठन निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सम्पूर्ण गतिविधियों का निर्धारण करने, समूह बनाना व व्यक्तियों को गतिविधियाँ सौंपना, सौंपी गई गतिविधियों के लिए आवश्यक अधिकारों को सौंपने व संगठन में विभिन्न पदों के मध्य प्राधिकरण संबंध स्थापित करने की प्रक्रिया है।

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से एक संगठन की निम्नलिखित विशेषताओं का पता चलता है:

1. यह व्यक्तियों का एक समूह है जो बड़े या छोटे हो सकते है |
2. संगठन का समूह कार्यकारी नेतृत्व के अंतर्गत काम करता है।
3. यह एक मशीन या प्रबंध की व्यवस्था है।
4. इसमें कुछ अधिकार या शक्ति को निर्देशित करते है जो समूह के ठोस प्रयासों को नियंत्रित करती है।
5. इसमें विचारपूर्वक योजनाबद्ध तरीके से श्रम, आधिकारों और उत्तरदायित्व का विभाजन किया जाता है।
6. इसका तात्पर्य कर्तव्यों और जिम्मेदारियों की एक संरचना से है।
7. यह सामान्य उद्देश्यों को पूरा करने के लिए स्थापित किया गया है |
8. यह एक कार्यात्मक अवधारणा है |

**सुदृढ़ संगठन के निम्नलिखित लाभ है:**

1. उद्यम के उद्देश्यों की प्राप्ति की सुविधा।
2. यह संसाधनों का अधिकतम उपयोग और नई तकनीकी विकास की सुविधा प्रदान करता है।
3. विकास और विविधीकरण की सुविधा।
4. रचनात्मकता और नवीनता को उत्तेजित करता है |
5. सुविधाएं प्रभावी संचार |
6. श्रम और प्रबंधन के मध्य बेहतर संबंधों को प्रोत्साहित करना।
7. कर्मचारी संतुष्टि में वृद्धि और कर्मचारियों के आवर्त में कमी।

## 4.3 संगठन की प्रकृति

'संगठन' शब्द का प्रयोग दो अलग–अलग अर्थों में किया जाता है। पहले अर्थ में इसका प्रयोग संगठन की प्रक्रिया को दर्शाने के लिए किया जाता है। दूसरे अर्थ में, इसका उपयोग उस प्रक्रिया के परिणामों को दर्शाने के लिए किया जाता है, अर्थात्, जिसे संगठनात्मक संरचना कहा जाता है। इसलिए, संगठन की प्रकृति को दो तरह से देखा जा सकता है:

(ए) एक प्रक्रिया के रूप में संगठन; तथा

(बी) संगठन सम्बन्धों की एक संरचना या ढांचे के रूप में ।

(ए) **एक प्रक्रिया के रूप में संगठन:** एक प्रक्रिया के रूप में, संगठन एक कार्यकारी कार्य है | यह निम्नलिखित गतिविधियों के जुड़े जाने से एक प्रबंधकीय कार्य बन जाता है:

(i) व्यावसायिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जरूरी गतिविधियों का निर्धारण करना।

(ii) अंतःक्रियात्मक गतिविधियों का समूहकरण।

(iii) आवश्यक योग्यता वाले व्यक्तियों को कार्य सौपना,

(iv) अधिकार का प्रत्यायोजन, और

(v) विभिन्न व्यक्तियों और समूहों के प्रयासों को समन्वित करना।

जब हम संगठन को एक प्रक्रिया के रूप में मानते हैं, तो यह हर प्रबंधक के लिए एक कार्य बन जाता है। संगठन एक निरंतर प्रक्रिया है और एक उद्यम के पूरे जीवनकाल में चलता रहता है। जब भी परिस्थितियों में कोई परिवर्तन होता है या स्थिति में भौतिक परिवर्तन होता है, तो नए प्रकार की गतिविधियां उत्पन्न होती हैं। इसलिए, कर्तव्यों की निरंतर समीक्षा और पुनरू सौंपने की आवश्यकता होती है। सही व्यक्तियों को नियुक्त किया जाना है और उन्हें आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान करना है ताकि वे कार्यों को संभालने के लिए सक्षम बन सकें।

इस प्रकार संगठन की प्रक्रिया में काम को तर्कसंगत तरीके से विभाजित करना और कार्य स्थिति और कर्मियों के साथ गतिविधियों का व्याख्या करना शामिल है। यह उद्यम के मानवीय दृष्टिकोण का भी प्रतिनिधित्व करता है क्योंकि यह व्यक्ति ही हैं जो गतिविधियों के एकीकरण की प्रक्रिया में सबसे ऊपर हैं। निरंतर समीक्षा और समायोजन इसे गतिशील भी बना देती है।

(बी) **संगठन सम्बन्धों की एक संरचना या ढांचे के रूप में:** संरचना के रूप में, संगठन आंतरिक अधिकार और उत्तरदायित्व के सम्बन्धों का एक तंत्र है द्य यह

सामान्य उद्देश्यों को पूरा करने के लिए विभिन्न स्तरों पर कार्य कर रहे व्यक्तियों के संबंधों का ढांचा है। एक संगठन संरचना लोगों, कार्यों और भौतिक सुविधाओं का एक व्यवस्थित संयोजन है। यह निश्चित अधिकार और स्पष्ट उत्तरदायित्व के साथ एक औपचारिक संरचना का गठन करता है। सबसे पहले इसकी रचना अधिकार और उत्तरदायित्व के प्रवाह और संचार की प्रणाली का निर्धारण करने के लिए की जाती है। इसके लिए, विभिन्न प्रकारों का विश्लेषण किया जाता है। पीटर एफ. ड्राकर निम्नलिखित तीन प्रकार के विश्लेषण का सुझाव देते हैं:

(i) गतिविधियां विश्लेषण

(ii) निर्णय विश्लेषण, और

(iii) संबंध विश्लेषण,

एक पदानुक्रम का निर्माण करना होगा अर्थात, स्पष्ट रूप से परिभाषित अधिकार और उत्तरदायित्व वाले पदों की एक पदानुक्रम। प्रत्येक अधिकारी की जवाबदेही को निर्दिष्ट करना होगा इसलिए, इसे अभ्यास में डाल दिया जाना चाहिए। एक तरह से, संगठन को एक प्रणाली भी कहा जा सकता है |

यहां पर प्रमुखता व्यक्तियों की बजाय रिश्तों या संरचना पर है। एक बार निर्मित संरचना इतनी जल्दी बदलने के लिए उत्तरदायी नहीं है | संगठन की यह अवधारणा, इस प्रकार, एक स्थिर अवधारणा है। इसे शास्त्रीय अवधारणा भी कहा जाता है द्य विभिन्न संगठनों के संबंधों को दर्शाने करने के लिए संगठन चार्ट तैयार किए जाते हैं।

एक संगठनात्मक संरचना में, दोनों औपचारिक और अनौपचारिक संगठन विकसित होते हैं। पहले वर्णित संगठन एक नियोजित है और कार्यकारी कार्यवाही द्वारा परिभाषित किया गया है। बाद में वर्णित संगठन का गठन सहज रूप से होता है, जिसे संगठन में लोगों की आम भावनाओं, बातचीत और अन्य संबंधित गुणों के आधार पर निर्धारित किया जाता है। औपचारिक और अनौपचारिक दोनों तरह के संगठनों के पास अपनी संरचना होती है।

## 4.4 संगठन की प्रक्रिया में कदम

संगठन के प्रबंधकीय कार्य को 'संगठन की प्रक्रिया' भी कहा जा सकता है जब उद्देश्यों को निर्धारित किया जाता है और नीतियों को तैयार किया जाता है, तो संगठन के आवश्यक बुनियादी ढांचे का निर्माण करना होता है। एकाग्रता गतिविधियों और कार्यों की तरफ रहती है द्य संगठनात्मक ढांचे के लिए यह रूप शबिल्डिंग ब्लॉक्सश हैं। ऐसे कोई नियम नहीं हैं जिनके कारण सबसे अच्छा संगठनात्मक ढांचे को बढ़ावा मिलेगा। लेकिन निम्नलिखित कदम एक उपयुक्त संरचना के निर्माण करने में बहुत मदद कर सकते हैं, जो उद्यम के उद्देश्यों को प्राप्त करने में आधार का काम करते है:

1. **उद्देश्यों की स्पष्ट परिभाषा:** एक संगठनात्मक ढांचे के विकास में पहला कदम अपने उद्देश्यों को बहुत स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करना होता है। इससे संगठन के प्रकार, स्थिरता और बुनियादी विशेषताओं को निर्धारित करने में मदद मिलेगी। वास्तव में, संगठन की गतिविधियों को प्राप्त किये जाने वाले के उद्देश्य के अनुसार विस्तृत किया गया है।

2. **गतिविधियों का निर्धारण:** उद्यम के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए, कुछ गतिविधियां आवश्यक हैं। गतिविधियां उद्यम की प्रकृति और आकार पर निर्भर करेगी। उदाहरण के लिए, एक विनिर्माण उत्पादन, विपणन और अन्य गतिविधियों से सम्बन्धित होगा। खुदरा प्रतिष्ठान में कोई उत्पादन गतिविधि नहीं है। प्रत्येक प्रमुख गतिविधि को छोटे छोटे भागों में बांटा जाता है। उदाहरण के लिए, उत्पादन गतिविधि को आगे सामग्री की खरीद, सयंत्र अभिन्यास, गुणवत्ता नियंत्रण, मरम्मत और रखरखाव, उत्पादन अनुसंधान आदि गतिविधियों में विभाजित किया जा सकता है।

3. **कर्तव्यों को सौंपना:** गतिविधियों के अलग–अलग समूहों को अलग–अलग व्यक्तियों को उनकी क्षमता और योग्यता के अनुसार आवंटित किया जाता है। प्रयासों के दोहराव और अतिव्यापी से बचने के लिए प्रत्येक व्यक्ति की जिम्मेदारी स्पष्ट रूप से परिभाषित की जानी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को उसके लिए उपयुक्त एक विशेष कार्य सौंपा जाता है और उसके निष्पादन के लिए उसे जिम्मेदार बनाया जाता है। सही व्यक्ति को सही कार्य में लगाया जाता है |

4. **अधिकार प्रत्यायोजन:** प्रत्येक व्यक्ति को सौंपी गई गतिविधि को प्रभावी ढंग से करने के लिए आवश्यक अधिकार दिए जाते है। अधिकार से हमारा आशय निर्णय लेने, निर्देशों को निर्गत करने, अधीनस्थों का मार्गदर्शन करने, उनकी निगरानी और नियंत्रण करने की शक्ति से है। किसी व्यक्ति को अधिकार को उसकी जिम्मेदारी के अनुरूप सौंपे जाने चाहिए | कोई व्यक्ति आवश्यक अधिकार या शक्ति के बिना अपना कार्य नहीं कर सकता। अधिकार का प्रवाह उपर से नीचे की तरफ व उत्तरदायित्व का प्रवाह नीचे से ऊपर की ओर रहता है।

5. **गतिविधियों का समन्वय:** विभिन्न व्यक्तियों की गतिविधियों और प्रयासों में तालमेल बिठाया जाता है। विशेष कार्यों के प्रभावी प्रदर्शन को सुनिश्चित करने के लिए इस तरह के समन्वय आवश्यक है। अलग–अलग कार्यों और व्यक्तियों के बीच अंतर–संबंध को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाता है ताकि सभी को यह पता रहे कि किससे उन्हें आदेश लेना है और किसके प्रति वह जवाबदेह है।

6. **भौतिक सुविधाएँ व सही वातावरण प्रदान करना:** एक संगठन की सफलता उचित भौतिक सुविधाओं और सही वातावरण के प्रावधान पर निर्भर करती है। जैसे सही कार्यों पर सही व्यक्तियों की नियुक्ति महत्वपूर्ण है, वैसे ही सही कार्य करने का वातावरण भी समान रूप से महत्वपूर्ण है। यह उद्यम के सहज परिचालन और समृद्धि के लिए आवश्यक है।

7. **समग्र नियंत्रण के लिए संरचनात्मक संबंधों की स्थापनाः** व्यक्तियों और समूहों के मध्य अच्छे तरह से परिभाषित सुस्पष्ट–संरचनात्मक संबंधों को स्थापित करना बहुत आवश्यक है। इससे व्यापार के पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की उपलब्धियों की दिशा में सभी विभागों के कार्यचालन और उनके समन्वित दिशानिर्देशों पर संपूर्ण नियंत्रण सुनिश्चित किया जा सकता है।

इस प्रकार से पूर्वगामी विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि संगठन कर्तव्यों और जिम्मेदारियों के लिए एक संरचनात्मक रूपरेखा प्रदान करता है। यह न केवल अधिकार संबंध स्थापित करता है बल्कि संचार की व्यवस्था भी प्रदान करता है। ऊपर वर्णित संगठन की विभिन्न प्रक्रियाओं का सम्पादन तकनीकी रूप से (ए)

विभागांकन (बी) अधिकारों के प्रत्यायोजन और उत्तरदायित्वों के निर्धारण और (सी) निर्णय लेने के केंद्रीकरण के माध्यम से केंद्रीय नियंत्रण के अधीन अधिकार का विकेन्द्रीकरण किया जाता है।

## 4.5 संगठन के उद्देश्य

विचारपूर्वक की जाने वाली प्रत्येक आर्थिक गतिविधि के कुछ न कुछ उद्देश्य अवश्य होते है। जब लोगों का समूह बिना किसी नियोजित लक्ष्य या उद्देश्य के एकत्र होता है, तो यह एक संगठन नहीं है, बल्कि वह सिर्फ एक जन समूह है | लेकिन जब, उदाहरण के लिए उन्हें एक सम्मेलन में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया जाता है, तो उसमें उद्देश्य का एक तत्व प्रस्तुत किया जाता है। एक उद्देश्य वांछित भविष्य के प्रति प्रतिबद्धता को दर्शाता है | उद्देश्य और प्रयोजन, आमतौर पर, परस्पर विनिमय की जाने वाली शब्दावली हैं।

व्यवसायिक उद्यम को स्वयं को संगठित क्यों करना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर उसके उद्देश्यों को सामने लाता है | एक व्यापार संगठन के उद्देश्य अन्य सामाजिक संगठनों के उद्देश्यों से अलग हैं। इसे और निश्चित रूप से प्रकट करने के लिए, किसी संगठन की प्रकृति (यानी राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक या आर्थिक) को केवल उसके उद्देश्यों का अध्ययन करके ही जाना जा सकता है

आम तौर पर, संगठित व्यापार के उद्देश्य (या प्रयोजन) निम्नलिखित हो सकते है:

1. उद्यम का प्रभावी प्रबंधनरू प्रभावी प्रबंधन व्यापक रूप से प्रभावी संगठन पर निर्भर करता है। यह एक प्रभावी संगठन है जो अधिकार और उत्तरदायित्व के मध्य उचित संतुलन सुनिश्चित करता है। यह संचार के स्पष्ट क्रम को प्राप्त करता है, और कार्य के क्षेत्रों को परिभाषित करता है। यह संगठन है जो शीर्ष प्रबंधन को समग्र नियोजन और पर्यवेक्षण पर ध्यान केंद्रित करने की अनुमति देता है, और नियमित काम को प्रशासन के निचले स्तर के लिए छोड़ देता है। यह समग्र उद्यम को अतिव्यापी, लापरवाही और अक्षमता से बचाता है ।

2. न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादनरू श्रम के विभाजन के सिद्धांत के अनुसार गतिविधियों को आवंटित किया जाता है। संगठन की कुशल व्यवस्था प्रत्येक कर्मचारी को उत्पादन बढ़ाने में अपना सर्वश्रेष्ठ योगदान देने के लिए प्रोत्साहित करती है। उत्पादन में वृद्धि और व्यर्थ व्यय के नियंत्रण से उत्पादन की लागत कम हो जाती है। इससे व्यवसाय का लाभ भी बढ़ेगा।

3. निरंतर विकास और विविधीकरणरू एक व्यवसायिक उद्यम प्रगतिशील बनावट वाला होना चाहिए। समय बीतने के साथ, एक उद्यम को अपनी गतिविधियों का विस्तार करना चाहिए। इसका उद्देश्य उत्पाद और बाजारों का विविधीकरण भी होना चाहिए।

एक स्थिर व्यवसाय जल्द ही निरस हो जाता है और दौड़ से बाहर हो जाता है। इसे एक छोटे पैमाने के व्यवसाय से एक मध्यम पैमाने के व्यवसाय और एक मध्यम पैमाने के व्यवसाय से बड़े पैमाने के व्यवसाय की ओर बढ़ना चाहिए। संगठन इस संबंध में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संगठित तरीके से नीतियों का निष्पादन, बड़ी गतिविधियों को सम्पन्न करने में आवश्यक क्षमता और आत्मविश्वास पैदा करता है।

4. कर्मचारियों का सहयोगरू संगठनात्मक संरचना सफल होगी यदि कर्मचारी काम में सहयोग करते हैं। कर्मचारी दूसरों के घनिष्ठ सहयोग में काम करना सीखते हैं | प्रबंधन विभिन्न प्रोत्साहन योजनाओं को आरम्भ करता है और कर्मचारियों को मौद्रिक व अन्य लाभ देता है, ताकि वे एक टीम की भावना से काम कर सकें।

5. सामाजिक जिम्मेदारी का निर्वाह करना: इसमें कोई संदेह नहीं है, कि हर व्यवसाय का उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना होता है। बिना लाभ, किसी भी व्यवसाय का कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। लेकिन समग्र रूप में व्यापार समाज का एक अभिन्न अंग है। यह उपभोक्ताओं और समाज का शोषण करके लंबे समय तक जीवित नहीं रह सकता है। इसे उचित कीमतों पर अच्छी गुणवत्ता की वस्तुओं को समाज को प्रदान करके उनकी सेवा करना है | इसके लिए आवश्यक है कि उपभोक्ताओं को उनकी आवश्यकतानुसार वस्तुओं की सुचारू आपूर्ति सुनिश्चित की जाए। सेवा के सिद्धांत को अच्छी तरह से संगठित संगठन संरचना के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसलिए, सामाजिक दायित्व का निर्वहन सुदृढ़ संगठन का निर्माण करने के लिए एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

सुदृढ़ संगठन के उद्देश्य निम्न है:

(i) एक गतिविधि–अधिकार वातावरण को स्थापित करना जिसमें लोग सबसे प्रभावी रूप से कार्य कर सकते हैं |

(ii) समूह कार्यकलाप को प्रभावी व कुशल बनाने के लिए निर्णय केन्द्र व संचार प्रणाली प्रदान की जाती है ताकि समूह–लक्ष्यों के प्रति व्यक्तिगत प्रयासों का प्रभावी ढंग से समन्वित किया जा सके ।

(iii) ऐसे सम्बन्ध बनाना जो टकराव को कम करते हैं, उद्देश्य पर ध्यान केंद्रित करते हैं, सभी भागों की जिम्मेदारियों को बारीकी से परिभाषित करते हैं और उद्देश्य की प्राप्ति की सुविधा प्रदान करते हैं।

(iv) प्रबंधन प्रक्रिया को उप–विभाजित करना जिसके द्वारा योजनाओं को क्रियान्वयन में परिवर्तित किया जाता है ताकि प्रबंधन को सबसे प्रभावी बनाया जा सके।

इस प्रकार, संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि संगठन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रबंधक अराजकता से बाहर आता है, लोगों के मध्य कार्य या उत्तरदायित्व के संघर्ष को दूर करता है, और सामूहिक कार्य के लिए उपयुक्त वातावरण स्थापित करता है।

## 4.6 संगठन के सिद्धांत

किसी भी संगठन का प्रभावी और कुशल कार्य इस पर निर्भर करता है कि संगठन के प्रबंधकीय कार्य कैसे किये जा रहे है। संगठन के कार्य को निम्नलिखित सिद्धांतों की सहायता से प्रभावी ढंग से किया जा सकता है:

(i) **कार्य का विभाजन:** संगठन संरचना के दौरान, प्रारंभ में ही कार्य का विभाजन, दक्षता के आधार के रूप में माना जाना चाहिए। यह एक स्थापित तथ्य है कि व्यक्तियों का समूह कार्य का विभाजन करके बेहतर परिणाम प्राप्त कर सकता है। इसलिए, संगठन को डिजाइन करते हुए हमें गतिविधियों के उपयुक्त

समूह बनाने का लक्ष्य रखना चाहिए। इसे विशेषज्ञता का सिद्धांत भी कहा जाता है।

(ii) **उद्देश्यों का ध्यान:** एक संगठन कुछ लक्ष्यों या उद्देश्यों को पूरा करने की एक व्यवस्था है द्य संरचना का प्रकार निर्धारित करने में संगठन के उद्देश्य एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है, जिसे विकसित किया जान चाहिए । स्पष्ट रूप से परिभाषित उद्देश्य गतिविधियों के समूहकरण, अधिकार के प्रत्यायोजन और परिणामस्वरूप प्रभावी समन्वय की सुविधा प्रदान करता है।

(iii) **प्रबंधन का विस्तार:** प्रबंधन का विस्तार नियंत्रण को संदर्भित करता है जो किसी भी कार्यकारी को सीधे सूचित करने वाले अधीनस्थों की संख्या को संकेतिक करता है। यह एक स्थापित तथ्य है कि यदि कार्यकारी अधिकारियों को सीधे सूचित करने वाले अधीनस्थों की संख्या अधिक हो जाती है, जो उनके लिए अधिक प्रभावी ढंग से पर्यवेक्षण और समन्वय करने की कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। प्रबंध के इस महत्वपूर्ण सिद्धांत को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

(iv) **आदेश की एकता:** संगठन की संरचना को इस तरह से डिजाइन किया जाना चाहिए कि इसमें आदेश की एकता इस अर्थ में मौजूद रहे है कि एक नेता ही अधिकार प्राप्त करने का अंतिम स्रोत है | इससे अन्तिम उद्देश्यों को प्राप्त करने, निर्देशन, समन्वय और नियंत्रण करने में स्थिरता की सुविधा मिलती है।

(v) **लचीलापन:** संगठन का निर्माण करते समय यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि संगठनात्मक ढांचा स्थिर नहीं होना चाहिए द्य प्रत्येक संगठन जीवित वातावरण में एक जीवित संस्था है जो तेजी से बदल रहा है। जैसे कि पर्यावरण परिवर्तन के आलोक में संरचना को बदलने और संशोधित करने के लिए पर्याप्त अवसर होना चाहिए ताकि संगठन का अंतिम उद्देश्य प्राप्त हो सके।

(vi) **उचित संतुलन:** किसी संगठन के विभिन्न अनुभागों या विभागों में संतुलन को बनाया रखना महत्वपूर्ण है। मूल रूप से संतुलन की समस्या तब होती है जब किसी गतिविधि या एक विभाग को आगे और विभाजित किया जाता है और फिर छोटे खंडों में विभाजित किया जाता है। संतुलन बनाने की समस्याएं किसी भी संगठन के आकार और कार्यपद्धति बढ़ने के साथ भी बढती जाती हैं।

(vii) **अपवाद द्वारा प्रबंधन:** यह एक मूल सिद्धांत है जो किसी भी संगठन को इसके सही अर्थों में प्रभावी बनाता है। यह सिद्धांत दर्शाता है कि असामान्य प्रकृति की समस्याओं को केवल ऊपर की ओर उल्लिखित करना चाहिए और प्रबंधकीय पदानुक्रम में उच्च स्तर के अधिकारियों द्वारा इनको तय किया जाना चाहिए, जबकि नियमित समस्याओं को निचले स्तर पर पारित किया जाना चाहिए और उन्ही के द्वारा उनका समाधान किया जाना चाहिए। इस सिद्धांत के अनुप्रयोग में, निश्चित रूप से अधिकारों के प्रत्यायोजन के सिद्धांत का पालन करने की आवश्यकता है। इस प्रकार से अपवाद का सिद्धांत एक महत्वपूर्ण व्यावहारिक उपयोगिता है और संगठन संरचना के सभी स्तरों पर लागू होता है।

(viii) **विकेंद्रीकरण:** बड़े संगठनों के लिए यह सिद्धांत बहुत ही महत्वपूर्ण है। विकेंद्रीकरण का अर्थ अधिकारों के चयनात्मक वितरण से है ताकि उद्यमों के शीर्ष स्तर से नियमित बिना रुकावट के विभागों और इकाइयों को प्रभावी और कुशलता से चलाने के लिए सहायता प्रदान की जा सकें । निर्णयन, चयन करने और लोगों

के प्रशिक्षण और पर्याप्त नियंत्रण के मार्गदर्शन के लिए संगठन में नीचे की ओर जाने वाले निर्णय, कौन इन निर्णयों को लेगा या शीर्ष विशिष्ट नीति का निर्माण आदि का बहुत सावधानीपूर्वक चयन करना आवश्यक है। विकेंद्रीकरण, जैसे, प्रबंधन के सभी क्षेत्रों को समाविष्ट करता है और निसंदेह संगठन संरचना में इसका अपरिहार्य महत्व है।

(ix) **विभागांकन:** विभागांकन, प्रशासन के प्रयोजनों के लिए इकाइयों में गतिविधियों को समूहित करने की प्रक्रिया है। दूसरे शब्दों में, यह समरूपता के सिद्धांत का उल्लंघन किए बिना संबंधित कार्यों और गतिविधियों के समूह को दर्शाता है, जिस पर एक कार्यकारी को प्रयोग करने और अधिकार जताने का अधिकार है। विभागीयकरण का मुख्य लाभ यह है कि यह व्यक्तिगत कार्यकारी को अपने अधीनस्थों को प्रभावी ढंग से व्यवस्थित करने के लिए सक्षम बनाता है क्योंकि विशिष्ट कार्यकारी के प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण में प्रबंध करने योग्य व्यक्ति की संख्या ही रहती है।

(x) **दक्षता:** संगठन न्यूनतम लागत पर पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने में सक्षम होना चाहिए। ऐसा इसीलिए किया जाता है, जिससे यह दक्षता की कसौटी पर खरा उतर सके। किसी व्यक्ति के दृष्टिकोण से, एक कुशल संगठन को अधिकतम कार्य संतोष प्रदान करना चाहिए। इसी तरह, सामाजिक दृष्टिकोण से, एक संगठन तब कुशल कहलाएगा, जब समाज के कल्याण की दिशा में वह अधिकतम योगदान प्रदान करेगा।

(xi) **आदिष्ट सिद्धांत:** आदिष्ट श्रृंखला वरिष्ठ अधिकारियों के लम्बवत व्यवस्था को इंगित करती है जो शीर्ष कार्यकारी अधिकारी से शुरू होकर मध्य स्तर के माध्यम से नीचे पर्यवेक्षी स्तर तक पहुँचती है। प्रभावी संगठन के लिए उचित आदिष्ट श्रृंखला या आदेश की पद्धति पूर्व–आवश्यकता है।

(xii) **निर्देश की एकता:** इसका आशय है कि गतिविधियों के प्रत्येक समूह में एक ही उद्देश्य, एक ही योजना और एक ही प्रमुख होना चाहिए। कार्य के प्रत्येक खण्ड के लिए एक ही योजना या कार्यक्रम होना चाहिए जो एक ही प्रमुख या श्रेष्ठ के नियंत्रण और पर्यवेक्षण के अधीन संचारित किया जाना चाहिए। यदि एक विभाग में अधीनस्थों द्वारा विभिन्न योजनाओं या नीतियों का पालन किया जाता है, तो इसमें भ्रम की स्थिति उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

(xiii) **निरंतरता:** संगठन संरचना का रूप ऐसा होना चाहिए जो कि इसके उद्देश्यों को लंबे समय तक प्राप्त करने के लिए उद्यम की सेवा करने में सक्षम हो।

(xiv) **समन्वय:** समन्वय सिद्धांत इस बात को रेखांकित करता है कि विभिन्न विभागों और कार्य की इकाइयों के मध्य उचित संपर्क और सहयोग होना चाहिए। वांछित उद्देश्यों को पूरा करने के लिए प्रयासों की एकता संगठन का मुख्य उद्देश्य है। इसे समन्वय के सिद्धांत के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है |

(xv) **अधिकार और उत्तरदायित्व:** अधिकार उत्तरदायित्व के अनुरूप होना चाहिए। उत्तरदायित्व सौंपते समय अधिकार भी सौंप दिए जाने चाहिए। यदि अधिकार नहीं दिया जाता है, तो अधीनस्थ अपनी जिम्मेदारी को ठीक से नहीं निभा सकते है।

## 4.7 संगठन के लाभ

प्रबंधन का प्राथमिक कर्तव्य उद्यम के उद्देश्यों को प्राप्त करना है। उद्देश्य सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक या धार्मिक हो सकते हैं। व्यक्तियों, सामग्री, धन और उपकरण का उचित संगठन आवश्यक है संगठन एक ऐसा तंत्र है जिसके माध्यम से प्रबंध व्यापार को निर्देश देता है, समन्वित करता है और नियंत्रित करता है। एक सुदृढ़ संगठन निम्नलिखित लाभ प्रदान करता है, जो इसके महत्व को सारांशित करता है:

1. **प्रबंधकीय दक्षता में वृद्धि:** एक सुदृढ़ संगठन उत्पादन के विभिन्न कारकों में उचित समन्वय लाता है और उनके इष्टतम उपयोग को संभव बनाता है। इससे कार्य में भ्रम, दोहराव और देरी से बचा जाता है। यह कार्य और श्रम के समुचित विभाजन से कार्यकर्ता को प्रेरित करता है। यह अधिकारों के प्रत्यायोजन द्वारा अधिकारियों के काम का बोझ कम कर देता है।

2. **विकास, विस्तार और विविधीकरण:** संगठन एक रूपरेखा प्रदान करता है जिसमें एक उद्यम प्रसारित व विकसित हो सकता है। संगठन के माध्यम से, प्रबंधन अपनी ताकत को बढ़ा सकते हैं। एक अच्छे संगठन में, विभिन्न गतिविधियों पर खर्च किए गए धन और प्रयास उनके योगदान के अनुपात में होते हैं। यथोचित संगठन की स्थापना के माध्यम से ही कई कंपनियां सादगीपूर्ण शुरुआत से एक विशालकाय आकार में बढ़ी हैं।

3. **विशेषज्ञता:** एक सुदृढ़ संगठन संरचना विशेषज्ञता का लाभ प्रदान करती है। विभिन्न व्यक्तियों के बीच उनकी योग्यता, अनुभव और योग्यता के अनुसार विभिन्न गतिविधियों को आवंटित किया जाता है। इससे उनकी दक्षता बढ़ जाती है | गतिविधियों का व्यवस्थित संगठन मितव्ययता को प्राप्त करने और लागतों को कम करने में सहायता करता है।

4. **नई तकनीक का अभिग्रहण:** एक अच्छी तरह से डिजाइन और सुसंतुलित संगठन तकनीकी उन्नयन को तात्कालिक अपनाने और इष्टतम उपयोग करने की अनुमति देता है। इसमें व्यवसाय के वातावरण में होने वाले परिवर्तनों को अवशोषित करने की क्षमता है और इस तरह के बदलावों के लिए यह एक उपयुक्त प्रतिक्रिया उपलब्ध कराता है। एक अच्छा संगठन कार्य को करने के नए और बेहतर माध्यमों के विकास में मदद करता है।

5. **समन्वय:** संगठन विविध गतिविधियों के समन्वय की सुविधा प्रदान करता है। वांछित उद्देश्यों को पूरा करने के लिए विभिन्न कार्यों को एक साथ मिलाया जाता है। विभिन्न पदों के मध्य अधिकारों और उत्तरदायित्व की स्पष्ट रेखाएं, उद्यम में आपसी सहयोग और सामंजस्य सुनिश्चित करता है। एक अच्छा संगठन लोगों को टीम भावना के साथ काम करने में सक्षम बनाता है

6. **प्रशिक्षण और विकास:** निचले स्तर तक अधिकारों का प्रत्यायोजन करके, भविष्य के अधिकारियों का प्रशिक्षण और विकास को संभव बनाया जाता है। एक अच्छा संगठन श्सही व्यक्ति को सही कार्य परश नियुक्त करता है और उन्हें सही प्रशिक्षण और प्रबंधकीय विकास कार्यक्रम प्रदान करता है। विभिन्न विभागों में

कर्मचारियों की नियुक्ति करके उन्हें अलग–अलग कार्य सौंपते हुए, उनकी प्रशिक्षण आवश्यकताओं का पता लगाया जा सकता है।

7. **रचनात्मकता, पहल और नवीनता:** एक अच्छा संगठन पहल और रचनात्मक सोच को प्रोत्साहित करता है द्य कर्मचारी नए आधार तय करने व अपरंपरागत तरीकों का प्रयोग करने के लिए प्रेरित होते हैं। एक सुदृढ़ संगठन योग्यता की पहचान के लिए अवसर प्रदान करता है, इसके बाद रचनात्मक कार्य करने वाले कर्मियों को वित्तीय प्रोत्साहन भी दिया जाता है।

8. **भ्रष्ट कार्यप्रणाली पर रोक:** एक कमजोर और असंगत संगठन भ्रष्टाचार और अक्षमता का स्रोत है। सुव्यवस्थित, अच्छी तरह से परिभाषित, अनुशासित और सुदृढ़ संगठनों द्वारा श्रमिकों के मनोबल और प्रेरणा को बढ़ावा मिलता है। यह कर्मचारियों के मध्य भागीदारी, अपनेपन, निष्ठा, ईमानदारी और निष्कपटता की भावना को विकसित करता है। यह एक उद्यम में भ्रष्टाचार, अक्षमता और अपव्यय को रोकता है।

9. **सभी गतिविधियों के लिए उचित महत्व:** एक सुदृढ़ संगठन समग्र उद्यम को उनके द्वारा किए जाने वाले कार्यों के अनुसार अलग–अलग विभागों, वर्गों और उप–वर्गों में बांटता है। उद्यम के प्रत्येक कार्य को उनकी महता मिल जाती है | उनके सापेक्ष महत्व के अनुसार बल दिया जाता है। निधि और जनशक्ति को उनके सापेक्ष महत्व के अनुसार आवंटित किया जाता है |

10. **बेहतर मानवीय संबंध:** संगठन में शामिल मानवजाति ही केवल संगठन का एक गतिशील तत्व है। व्यक्तियों का एक समर्पित और संतुष्ट समूह किसी भी प्रतिष्ठान के लिए संपत्ति सिद्ध होता है। एक संगठन, जो सुदृढ़ सिद्धांतों द्वारा निर्मित होता है, मानव संबंधों में सामंजस्य स्थापित करने में मदद करता है | उचित रीति से परिभाषित अधिकार, उत्तरदायित्व और जवाबदेही होने से, विभिन्न व्यक्ति अपने कार्य से संतुष्टि का आनंद प्राप्त करते हैं। एक संगठन मानवजाति से युक्त होते हैं और उनकी संतुष्टि मानव संबंधों में सुधार करने में सहायता करती है।

इस प्रकार, संगठन प्रबंध की नींव है | सुदृढ़ प्रबंधन कुशल प्रबंधन और बेहतर व्यवसाय प्रदर्शन के लिए एक अनिवार्य साधन है। यह न केवल कुशल प्रशासन की सुविधा प्रदान करता है बल्कि विकास और विविधीकरण को भी प्रोत्साहित करता है। यह नई तकनीक का इष्टतम उपयोग प्रदान करता है, नवाचार और रचनात्मकता को प्रोत्साहित करता है।

## 4.8 औपचारिक और अनौपचारिक संगठन

संबंधो के आधार पर, एक संगठन को दो व्यापक श्रेणियों में बांटा जा सकता हैरू (ए) औपचारिक और (बी) अनौपचारिक द्य समूह के कार्यों के लिए दोनों तरह के संबंधो की आवश्यकता होती है, जैसे व्यवहारिक रूप में कैंची की एक जोड़ी बनाने के लिए दो ब्लेड आवश्यक हैं।

**औपचारिक संगठन**

औपचारिक संगठन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए शीर्ष प्रबंधन द्वारा विचारपूर्वक निर्मित संबंधो की संरचना को संदर्भित करता है। इस प्रकार के ढांचे में निर्देश,

उत्तरदायित्व, जवाबदेही, आदेश का क्रम, पद और अधिकार स्पष्ट रूप से परिभाषित और घोषित किए गए हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्यों और अधिकार से अवगत है। प्रत्येक अधीनस्थ से यह उम्मीद की जाती है कि आदेश की औपचारिक श्रृंखला में अपने पर्यवेक्षक की आज्ञा का पालन करेगा। प्रत्येक व्यक्ति को संगठन में इस तरह से लगाया जाता है जैसे मशीन में पहिये का दांता। यह व्यावसायिक गतिविधियों की सावधानीपूर्वक पहचान, वर्गीकरण और अभिहस्तांकन के बाद तैयार किया गया है, इसीलिए यह संबंधो का सचेत सृजन है |

**अनौपचारिक संगठन**

अनौपचारिक संगठन व्यक्तिगत और सामाजिक संबंधों के तंत्र को संदर्भित करता है जो स्वैच्छिक रूप से उत्पन्न होते हैं जब लोग एक साथ मिलकर व्यक्तिगत भावना, पसंद और पूर्वाग्रहों पर बातचीत करते हैं। ऐसे संबंधों को शीर्ष प्रबंधन द्वारा नहीं बनाया जाता है और वे औपचारिक रूप से मान्यता प्राप्त भी नहीं होते हैं। अनौपचारिक समूह कभी–कभी औपचारिक समूह के समानांतर बढ़ते हैं। अनौपचारिक संबंधों को संगठन चार्ट और नियम पुस्तिका पर चित्रित नहीं किया जाता है। एक अनौपचारिक संगठन कार्यकर्ताओं को एक–दूसरे के करीब आने का अवसर प्रदान करता है, उनके बीच सहयोग और समन्वय की भावना विकसित करता है।

**औपचारिक और अनौपचारिक संगठनों के मध्य अंतर**

औपचारिक और अनौपचारिक संगठनों के मध्य अंतर संक्षिप्त रूप से नीचे वर्णित है:

1. **गठन:** औपचारिक संगठन का निर्माण विचारपूर्वक प्रबन्ध द्वारा किया जाता है। यह अधिकार के प्रत्यायोजन से जुड़े एक सचेत और विचारपूर्वक प्रयास का परिणाम है। दूसरी ओर, अनौपचारिक संगठन स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होता है और इसे बनाने के लिए कोई सचेत प्रयास नहीं किया जाता है। यह रिश्तों, जाति, संस्कृति, व्यवसायों और निजी हितों आदि के आधार पर होता है। अनौपचारिक संगठन में अधिकारों का प्रत्यायोजन आवश्यक नहीं है।

2. **आधार:** एक औपचारिक संगठन नियमों और प्रक्रियाओं पर आधारित होता है, जबकि एक अनौपचारिक संगठन लोगों के आचरण और भावनाओं पर आधारित होता है। यह अनौपचारिक, लोगों के बीच काम करने और एक–दूसरे के साथ जुड़ने के मध्य सामाजिक संपर्क पर निर्भर करता है।

3. **प्रकृति:** एक औपचारिक संगठन स्थिर है व इसका अनुमान लगाया जा सकता है और इसे लोगों के सनक या कल्पना के अनुसार नहीं बदला जा सकता है। लेकिन एक अनौपचारिक संगठन न तो स्थिर और न ही इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

4. **स्थापना:** एक औपचारिक संगठन प्रत्येक व्यक्ति को निर्दिष्ट एक निश्चित अधिकार के साथ अच्छी तरह से परिभाषित संबंधो की एक प्रणाली है। यह संचार की पूर्वनिर्धारित लाइनों का पालन करता है इसके विपरीत, एक अनौपचारिक संगठन का कोई निश्चित रूप नहीं है और न ही कोई निश्चित नियम कि कौन किसे रिपोर्ट करेगा | यहां तक कि निचले क्रम के कर्मचारी का अनौपचारिक संबंध औपचारिक पदानुक्रम में उसके ऊपर के अधिकारी के साथ भी हो सकता है।

5. **बल:** एक औपचारिक संगठन में, अधिकार और कार्यों पर मुख्य जोर दिया जाता है। एक अनौपचारिक संगठन में लोगों और उनके संबंधों पर जोर दिया जाता है|

6. **अधिकार:** औपचारिक अधिकारी किसी पद से जुड़ा हुआ होता है और इसका बहाव ऊपर से नीचे की ओर होता है द्य अनौपचारिक अधिकारी किसी पद से जुड़ा हुआ नहीं होता है और इसका बहाव नीचे से ऊपर की ओर होता है या क्षैतिज होता है |

7. **अस्तित्व:** एक औपचारिक संगठन अनौपचारिक समूहों में स्वतंत्र रूप से विद्यमान रहता हैं जो इसके भीतर बनते हैं। लेकिन एक अनौपचारिक संगठन एक औपचारिक संरचना के ढांचे के भीतर विद्यमान रहता हैं ।

8. **तर्कसंगतता:** एक औपचारिक संगठन भावनाओं या मनोभाव के बजाय तर्क से संचालित होता है। सभी गतिविधियां पूर्व निर्धारित कार्यप्रणाली का पालन करती हैं। एक अनौपचारिक संगठन में, समान विचारधारा वाले लोगों के मध्य सहयोग के रूप में कम तर्कसंगतता रहती है। एक अनौपचारिक संगठन में, गतिविधियां इसके सदस्यों की भावनाओं और मनोभाव से प्रभावित होती है।

9. **चित्रण:** औपचारिक संगठन एक संगठन चार्ट या नियम पुस्तिका में दिखाया जा सकता है। लेकिन एक अनौपचारिक संगठन को उद्यम के चार्ट या नियम पुस्तिका में नहीं दर्शाया जा सकता है।

## 4.9 सारांश

संगठन शब्द के दो सामान्य अर्थ हैं पहला अर्थ संगठन की प्रक्रिया को दर्शाता है। दूसरा अर्थ संस्था या समूह का प्रतीक है जो संगठन के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आता है। संगठन की प्रक्रिया में कई कदम शामिल हैं, जैसे उद्देश्यों पर विचार, विभागों में गतिविधियों का समूहकरण, यह निर्धारित करना कि कौन से विभाग रेखा संगठन होंगे और जो कर्मचारियों से संबंधित होंगे, स्तरों का निर्धारण करना, जिसमें विभिन्न प्रकार के निर्णय लिए जाएंगे, पर्यवेक्षण अवधि का निर्धारण करना और समन्वय तंत्र की स्थापना करना। संगठन के कई सिद्धांत हैं, जिन्हें संगठन की प्रक्रिया में स्मरण रखा जाना चाहिए।

## 4.10 शब्दावली

**संगठन:** निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए समग्र गतिविधियों का निर्धारण करने, समूह बनाने और गतिविधियों को व्यक्तियों को सौंपने, सौंपी गई गतिविधियों के लिए आवश्यक अधिकारों का प्रत्यायोजन करने, और संगठन के विभिन्न पदों के मध्य अधिकार सम्बन्ध स्थापित करने की प्रक्रिया है |

**औपचारिक संगठन:** उद्देश्यों का प्राप्त करने के लिए शीर्ष प्रबंधन द्वारा विचारपूर्वक निर्मित सम्बन्धों की संरचना।

**अनौपचारिक संगठन:** अनौपचारिक संगठन व्यक्तिगत और सामाजिक संबंधों के तंत्र को संदर्भित करता है जो स्वैच्छिक रूप से उत्पन्न होते हैं जब लोग एक साथ मिलकर व्यक्तिगत सनक, पसंद और पूर्वाग्रहों पर बातचीत करते हैं।

**प्रबंधन की अवधि:** किसी भी कार्यकारी को सीधे रिपोर्टिंग करने वाले अधीनस्थों की संख्या को दर्शाता है।

## 4.11 बोध परक प्रश्न

1. **बताएं कि निम्नलिखित कथन सही या गलत हैं:**

ए) आयोजन एक निरंतर प्रक्रिया है और एक उद्यम के पूरे जीवनकाल में चलती रहती है।

बी) संगठन किसी भी मूल्य पर पूर्वनिर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने में सक्षम होना चाहिए।

सी) समन्वय का सिद्धांत यह रेखांकित करता है कि अलग–अलग विभागों और इकाई प्रमुखों के मध्य उचित संपर्क और सहयोग होना चाहिए।

डी) सुव्यवस्थित, अच्छी तरह से परिभाषित, अनुशासित और सुदृढ़ संगठन श्रमिकों के मनोबल और प्रेरणा को बढ़ावा देता है ।

2. **रिक्त स्थान भरें:**

ए) एक संगठन संरचना व्यक्तियों, ........................ और भौतिक सुविधाओं का एक व्यवस्थित संयोजन है।

बी) प्रत्येक व्यक्ति की उत्तरदायित्व को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाना चाहिए ताकि दोहराव और ....................... प्रयासों से बचा जा सकें।

सी) यह प्रभावी संगठन है जो ............................ और उत्तरदायित्वों के मध्य उचित संतुलन सुनिश्चित करता है।

डी) स्पष्ट रूप से परिभाषित उद्देश्य गतिविधियों को समूहित करने, अधिकारों का प्रत्यायोजन करने और इसके परिणामस्वरूप .......................... समन्वयन की सुविधा प्रदान करता है ।

## 4.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| (ए) | 1. | कार्य, | 2. | अतिव्यापी, | 3. | अधिकार, | 4. | प्रभावी। |
| (बी) | 1. | सही, | 2. | गलत , | 3. | सही , | 4. | गलत |

## 4.13 स्वपरख प्रश्न

1. संगठन को परिभाषित कीजिए और इसकी विशेषताओं की व्याख्या कीजिए ।
2. संगठन के अर्थ की व्याख्या कीजिए और इसके सिद्धांतों का वर्णन कीजिए ।
3. संगठन के प्रकृति और महत्व की व्याख्या कीजिए |
4. संगठन की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण कदम कौन–कौन से हैं?
5. "संगठन संगठनात्मक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण है," टिप्पणी कीजिए |
6. अनौपचारिक संगठन से आप क्या समझते हैं? यह औपचारिक संगठन से कैसे भिन्न है ?
7. आयोजन की प्रक्रिया में विभिन्न चरणों की व्याख्या कीजिए ।

## 4.14 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Kootnz & O'Donnell, Principles of Management.
2. J.S. Chandan, Management Concepts and Strategies.

3. Arun Kumar and R. Sharma, Principles of Business.
4. Management. Sherlerkar and Sherlerkar, Principles of Management.
5. Tripathi and Reddy, Principles of Management.
6. Kimball and Kimball, Principles of Industrial Organisation.

## इकाई–5 संगठन–संरचना

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 रेखीय संगठन
5.3 रेखीय एवं स्टाफ संगठन
5.4 कार्यात्मक (क्रियात्मक) संगठन
5.5 आव्यूह (मैट्रिक्स संगठन) संगठन
5.6 संगठन का समिति प्रारूप
5.7 संगठनों के मध्य अंतर
5.8 सारांश
5.9 शब्दावली
5.10 बोध प्रश्न
5.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.12 स्वपरख प्रश्न
5.13 सन्दर्भ पुस्तकें

### उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- विभिनन्न प्रकार के संगठनों को यथा रेखीय व स्टाफ, क्रियात्मक, आव्यूह (मैट्रिक्स) एवं समिति, के रूप में समझ सकें।
- विभिन्न प्रकार के संगठनों के मध्य अंतर करने कर सकें।

### 5.1 प्रस्तावना

संगठन प्रक्रिय का एक महत्वपूर्ण अंग उपयुक्त संगठन संरचना की रचना है। संगठन ढाँचा (संरचना) उद्यम में विभिन्न पदों के पदानुक्रमिक व्यवस्था कों निरूपित (व्यक्त) करता है। यह औपचारिक रूप से सत्ता एवं उत्तरदायित्व के आवंटन में सहायता करता है। किंतु ऐसी कोई सर्वश्रेष्ठ संरचना नहीं है जो सभी प्रकार के उद्यम के लिये उपयुक्त हो, उद्यमो स्वयं अपने कार्य की प्रकृति, कार्मिकों की व्यावसायिक दक्षता तथा प्रबंध के दर्शन (दृष्टिकोण) के आधार पर अपना संगठन की संरचना विकसित (निर्मित) करनी चाहिये। संगठन के पाँच प्रकार (a) रेखीय संगठन, (b) रेखा एवं स्टाफ संगठन, (c) कार्यात्मक (क्रियात्मक) संगठन, (d) आव्यूह परियोजना संगठन तथा (e) समिति संगठन होते है।

### 5.2 रेखीय संगठन

ऐतिहासिक रूप से यह संगठन का प्राचीनतम प्रकार (स्वरूप) है। इसे विभिन्न नामों यथा सेवा (मिलिट्री) संगठन, उर्ध्व, अदिश एवं विभागीय संगठन के नाम से जाना जाता है। संगठन के अन्य सस्त प्रकार रेखा–संगठन का परिवर्धन (संशोधन) है। रेखीय संगठन का सिद्धांत अदिश प्रक्रिया से व्युत्पन्न हुआ है जिसके अनुसार, किसी संगठन में एक मुखिया होना चाहिये जो इसे निर्देशित (संचालित, संभाल) कर सके। यद्यपि एक अधिशासी अधिकारों (प्राधिकार) का प्रत्यायोजन कर सकता है, किंतु परिणाम का अंतिम उत्तरदायित्व उसी साथ रहता है।

**मैक्फारलैण्ड के अनुसार,** "रेखा संरचना से आशय प्रत्यक्ष एवं लम्बवत सम्बन्धों से है, जो प्रत्येक स्तर की स्थिति एवं कार्यों से ऊपर तथा नीचे के स्तर से सम्बन्ध स्थापित करते है।"

**एलन के अनुसार,** "संगठनात्मक रूप से रेखा आदेश देने (अधिकार स्थापन) की श्रृंखला है, जो निदेशक मण्डल से प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व के प्रत्यायोजनों एवं पुर्न प्रत्यायोजनों के माध्यम से उस बिंदु तक प्रसरित (फैलता बढ़ता) होता है, जहाँ कि उद्यम की प्राथमिक गतिविधियाँ (कार्य) निष्पादित होती है।"

निम्न चार्ट के माध्यम से रेखा संगठन को प्रदर्शित किया जा सकता है।

निदेशक मण्डल
प्रबंध निदेशक
मंडलीय प्रबंधक (पूर्व) मंडलीय प्रबंधक (पश्चिम)
सहायक प्रबंधक (जिला ए) सहायक प्रबंधक (जिला बी) सहायक प्रबंधक (जिला सी) सहायक प्रबंधक (जिला डी)
फोरमैन फोरमैन
श्रमिक श्रमिक

*चित्र 5.1:* रेखा संगठन चार्ट

उपरोक्त चार्ट से रेखा संगठन के निम्नांकित विशिष्ट लक्षण (विशेषतायें) प्राप्त होते है :

(a) प्रबंध के कई स्तर होत है, यह व्यवसाय के आकार एवं प्रबंधकों की निर्णयन क्षमता पर निर्भर करता है। प्रबंध के प्रत्येक स्तर के अधिकार समान होते है।

(b) प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व का संगठन में उर्ध्व प्रवाह होता हैं निम्न पदों पर प्राधिकार उच्च पदों से व्युत्पत्ति (प्राप्त होता) होता है।

(c) ओदश की एकता होती है। एक व्यक्ति केवल एक व्यक्ति के प्रति (अपने तात्कालिक वरिष्ठ) जवाबदेह होता है और किसी के प्रति नहीं। एक व्यक्ति केवल अपने तत्कालिक उच्चस्थ से ही आदेश प्राप्त करता है।

(d) रेखा–संगठन में अदिश श्रृंखला होता है। आदेशों को प्रवाह सुझावों एवं शिकायतों का सम्प्रेषण इत्यादि, एक सीढ़ी की भांति होता है। कोई भी इन दावों की अवहेलना नहीं कर सकता।

(e) एक प्रबंधक के अंतर्गत अधीनस्थों की एक सीमा होती है। एक प्रबंधक केवल अपने विभाग के अधीनस्थों पर नियंत्रण स्थापित करता है।

**गुण.**—रेखा संगठन के लाभ निम्नलिखित है :

1. **सरलता**—यह समस्त प्रकार के संगठनों में सरलतम प्रकार का संगठन है। यह सरलता (सुगमता) से स्थापित किया जा सकता है तथा श्रमिकों (कर्मचारियों) द्वारा समझा जा सकता है।

2. **प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व का स्पष्ट विभाजन**—प्रत्येक व्यक्ति के प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व स्पष्टतः परिभाषित होते हैं प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि उसे किस को आदेश निर्गत करने है तथा किसके प्रति वह जवाबदेह है। इसके अतिरिक्त यदि कार्यों के निष्पादन में कोई चूक (त्रुटि) होती है, तो उत्तरदायित्व निश्चित करना सरल होता है।

3. **कठोर अनुशासन**—प्रत्यक्ष अधिकार (प्राधिकार) अधिक प्रभावी ढंग से बनाये रखा जा सकता है। प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण कर्मचारियों (श्रमिकों, कामगारों) के मध्य कठोर अनुशासन निर्माण (बनाने) में सहायता करता है।

4. **एकीकृत (संघटित/संयुक्त) नियंत्रण**—चूंकि आदेश एक ही वरिष्ठ द्वारा दिये जाते है, अतः अधीनस्थों के मध्य कोई भ्रम नहीं होता है। यह श्रेष्ठतर (बेहतर) समझ एवं शीघ्र (त्वरित) कार्यवाही को सुनिश्चित करता है।

5. **त्वरित निर्णय**—क्योंकि वरिष्ठ पूर्ण प्राधिकार रखते है। अतः उनके द्वारा शीघ्र निर्णय लिये जाते है। इन निर्णयों का क्रियान्वयन भी त्वरित ढंग से होता है।

6. **लोचशीलता**—चूंकि प्रत्येक विभागाध्यक्ष अपने विभाग हेतु एकल उत्तरदायित्व धारण करता है। अतः वह व्यावसायिक परिस्थितियों के अनुसार संगठन को सरलता से समायोजित कर सकता है।

**दोष.**—रेखा संगठन के दोष निम्नलिखित है :

1. **कार्य का भारी बोझ**—चूंकि विभागाध्यक्ष को विभाग के समस्त कार्यों (गतिविधियों) को देखना पड़ता है। अतः उस पर कार्य का अतिशय (भारी) बोझ होता है। वह कुछ कर्तव्यों की उपेक्षा कर सकता हैं तथा प्रबंध में कतिपय अकुशलता व्याप्त हो सकती है।

2. **प्राधिकार का संकेन्क्षण**—यह तानाशाही प्रकृति है कि समस्त महत्वपूर्ण शक्तियां कुछ उच्च अधिशात्रियों के हाथों में संकेन्द्रित हैं यदि वे सक्षम (योग्य) नहीं है तो उद्यम सफल नहीं होगा।

3. **विशेषज्ञता का अभाव**—रेखा–संगठन विशेषज्ञों के विशिष्ट कौशल के अभाव से अति प्रभावित होता हैं एक व्यक्ति के लिये यह नितांत कठिन है कि वह विविध (भिन्न) प्रकृति की गतिविधियों (कार्यों) को संभाल सकें। प्रत्येक खेत्र में विशेषज्ञता का लाभ प्राप्त कर पाना संभव नहीं है।

4. **संवादहीनता (सम्प्रेषण का अभाव)**—सम्प्रेषण के अभाव के कारण सही सूचनायें प्राप्त करना एवं उस पर कार्य कर पाने में असफलता प्राप्त होती है। यद्यपि संगठन में ऊपर से नीचे (अधोगामी) सम्प्रेषण तो रहता है किन्तु प्रायः निम्न श्रेणी से उच्च श्रेणी तथा अधिशासियों तक सम्प्रेषण का अभाव रहता है। उन्हें यह अवसर नहीं प्राप्त होता कि वे अपने दृष्टिकोण अथवा समस्याओं अथवा सुझावों को उच्च स्तर पर पदस्थ व्यक्तियों तक सम्प्रेषित कर सकें। इस प्रकार वे अपनी स्वतंत्र रूप से विचार करने की स्वतंत्रता खो देते है।

5. **पक्षपात की गुंजाइश (अभिप्राय)**—चूकि विभागाध्यक्ष अपने विभाग का सर्वे–सर्वा होता है। अतः यहाँ पक्षपात की संभावना होती है। यहां बड़ी मात्रा में भाई–भतीजा वाद, भ्रष्टाचार एवं व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों की व्याप्ति हो सकती है। अधिशासी दक्ष (कुशल) व्यक्तियों के दावों की उपेक्षा कर अपने व्यक्तियों की नियुक्ति एवं पदोन्नति कर सकते है।

इन विसंगतियों (दोषों) के बावजूद रेखा संगठन लघु उद्यमों हेतु जहाँ सम्मिलित कार्य बहुत जटिल नहीं होता तथा कार्यरत व्यक्तियों की संख्या अल्प होती है आदर्श मानी जाती है। यह उन उद्यमों हेतु भी आदर्श मानी जाती है। यह उन उद्यमों हेतु भी आदर्श है जहाँ स्व–चलित मशीने प्रयोग में लायी जाती है

अथवा प्रतिभाशाली एवं दक्ष (योग्य) अधिशाषी विभिन्न विभागों के शीर्ष पर होते है। किंतु यह विशाल संगठनों में बहुत सफल नहीं है।

## 5.3 रेखीय एवं स्टाफ संगठन

रेखा संगठन तीन प्रमुख दोषों के युक्त होता है। रेखा अधिशासियों के ऊपर कार्य का भारी बोझ निम्न रेखा अधिशासी के हाथों में शक्ति का संकेक्षण एवं विशेषज्ञ का अभाव। इन तीन बुराइयों (दोषों) के आलोक (दृष्टिकोण) में रेखा एवं स्टाफ संगठन का प्रार्दुभाव हुआ।

सामान्यतः स्टाफ से आशय संगठन के ऐसे तत्वों से है जो संगठन के प्राथमिक उद्देश्यों को प्रभावशाली (प्रभावकारी) ढंग से प्राप्त करने में रेखा संगठन की सहायता करते हैं । स्टाफ सत्ता रेखा सत्ता के अधिशासियों की सहायता करते है। स्टाफ सत्ता (प्राधिकार) में विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ सम्मिलित होते है। स्टाफ सत्ता का प्रमुख कार्य रेखा अधिशासियों की उन कार्यों में सहायता करना है। जिनमें विशेष ज्ञान या विशेषज्ञता की आवश्यकता हो। स्टाफ की भूमिका सलाहकारी होती है न कि प्राधिकारात्मक।

वे संस्तुति कर सकते है, किंतु वे अपनी वरीयता को प्रवर्तित कराने हेतु अधीनस्थों पर कोई अधिकार नहीं रखते है तथा न ही उन्हें आदेश निर्गत कर सकते हैं वस्तुतः रेखा संगठन का कार्य क्रिया करना (कार्य सम्पादन) है तथा स्टाफ का कार्य विचार करना एवं सुझााव देना है।

संक्षेप में रेखा एवं स्टाफ संगठन एक पद्धति है जिसके अंतर्गत स्टाफ विशेषज्ञ रेखा प्रबंधनों को उनके कर्तवयों के निर्वहन में सलाह प्रदान करते हैं इस प्रकार रंग एवं रसायन में कार्य करने के व्यवसाय में संलग्न फर्म में कार्य प्रबंधक विपणन प्रबंधक तथा वित्त प्रबंधक रेखा अधिकारी होते हैं जबकि कार्मिक प्रबंध, गुणवत्त नियंत्रण, जन सम्पर्क तथा लेखा शास्त्र आदि कार्य स्टाफ कार्य है। इस प्रकार रेखा एवं स्टाफ संगठनात्मक सम्बन्ध के दो प्रकार है।

अग्रांकित चार्ट में रेखा एवं स्टाफ संगठन को निरूपित किया गया है।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| रेखा पद<br>प्रत्यक्ष आदेश | | | | स्टाफ पद<br>सलाहकारी आदेश |
| | | संचालक मण्डल<br>(निदेशक मण्डल)<br>प्रबंध निदेशक | | |
| कार्मिक प्रबंधक | | | | वित्त नियंत्रक |
| औद्योगिक अभियंता | उत्पादन प्रबंधन | विक्रय प्रबंधक | | बाजार शोध अधिकारी |
| उत्पादन पर्यवेक्षक | उत्पादन पर्यवेक्षक | | सहायक विक्रय प्रबंधक सहायक | विक्रय |

प्रबंधक

**चित्र 5.2 रेखा एवं स्टाफ संगठन चार्ट**

रेखा एवं स्टाफ संगठन की विशेषतायें निम्नलिखित है :

(1) प्रबंधक दो प्रकार के होते है : रेखा प्रबंधक एवं स्टाफ प्रबंधक

(2) रेखा प्रबंधक निर्णयन, आदेश निर्गमन तथा नियंत्रण के कार्यों को निष्पादित करते है, जबकि स्टाफ प्रबंधक सलाह प्रदान करने, सहायता करने तथा विशेषज्ञ सेवाएं प्रदान करने का कार्य करते है।

(3) आदेश की एकता की विद्यमानता होती है।

(4) पदाधिकारी सम्पर्क श्रृंखला (स्केलर चेन) होती है।

**गुण**—संगठन का यह प्रकार रेखा संगठन में सुधार के रूप में (सुधरे हुये रूप में) अस्तित्व में आया हैं रेखा एवं स्टाफ संगठन में रेखा संगठन के गंभीर दोषों को दूर किया है।

(1) **विशेषज्ञता**—यह नियोजित विशेषज्ञता पर आधारित होता है। रेखा प्रबंधक विविधस्तों पर स्टाफ विशेषज्ञों के विशिष्ट ज्ञान का लाभ प्राप्त करते है।

(2) **शोध एवं विकास कार्यक्रमों को प्रोत्साहन**—किसी उद्यम की वृद्धि (विकास) व्यापकता (व्यापक रूप से) शोध एवं विकास कार्यक्रमों पर आधारित होती है। स्टाफ यह सेवा रेखा–विभागों को प्रदान करती है।

(3) **संतुलित निर्णय**—रेखा प्रबंधक समस्त क्षेत्रों में विशेषज्ञतापूर्ण ज्ञान नहीं रखे हुये हो सकते है तथा इस कारण से वे कभी कभी अनुचित आदेश जारी कर सकते हैं अथवा अनुचित निर्णय दे सकते हैं स्टाफ प्रबंधक द्वारा दिये गये सुझााव एवं सलाह उन्हे संतुलित निर्णयन एवं विवेकपूर्ण न्याय निर्णयन में सहायता करते है।

(4) **रेखा प्रबंधकों पर अल्प बोझ**—स्टाफ प्रबंधक रेखा प्रबंधकों को विशेषज्ञता के कार्यों यथाः लेखा शास्त्र (लेखाकार्य) कर्मचारियों के चयन एवं प्रशिक्षण जन सम्पर्क इत्यादि की परेशानियों से मुक्त (विमोचित) करते है। इस प्रकार रेखा प्रबंधकों के ऊपर अल्प बोझ होता है। ऐसी कई समस्यायें जो रेखा संगठन में उपेक्षित (अनदेखा) थी या असंतोषजनक ढंग से सुलझाई जा सकती है। यह अधिक लोचशील होता है।

**दोष.**—रेखा एवं स्टाफ संगठन के दोष निम्नलिखित है :

(1) **भ्रम**—रेखा एवं स्टाफ अधिशासियों के मध्य प्राधिकार उत्तरदायित्व सम्बन्ध को स्पष्ट रूप से स्थापित कर पाना एक अतिदुरूह कार्य है। यह भ्रम उत्पन्न करता है।

(2) **स्टाफ की प्रभावहीनता**—स्टाफ की भूमिका पूर्णरूप से (विशुद्धतः) सलाहकारी होती है। चूंकि वे अपनी संस्तुतियों को क्रियान्वित कराने की शक्ति नहीं रखते अतः स्टाफ की सेवाये प्रभावहीन सिद्ध हो सकती है।

(3) **रेखा एवं स्टाफ के बीच संघर्ष (टकराव)**—सामान्यतया रेखा एवं स्टाफ अधिशासियों के मध्य संघर्ष (टकराव) होता है। रेखा प्राधिकारी अनुभव करते है, कि स्टाफ अधिशासी सदैव उचित सलाह नहीं देते। अतः कुछ बहुत उचित योजनाओं को अस्वीकृत कर देते है। रेखा प्राधिकारी प्रबंध के ऊपर ऐसा कोई प्रभाव नहीं छोड़ना चाहते कि वे किसी भी ढंग (प्रकार) से स्टाफ से निम्न है। अतः रेखा एवं स्टाफ संगठनों के मध्य सदैव संघर्ष (टकराव) रहता है।

रेखा एवं स्टाफ संगठन लोकप्रियता अर्जित की है क्योंकि प्रबंध की कतिपय समस्याये जटिल हो गयी हैं जिनके समाधान हेतु विशेषज्ञता पूर्ण ज्ञान की आवश्यकता होती है। जो स्टाफ अधिकारियों द्वारा प्रदान की जाती है। जो भी बुराईयां रेखा–स्टाफ संगठन में विद्यमान है वे मुख्यतः इसके अनुचित अनुप्रयोग के कारण है।

## 5.4 कार्यात्मक (क्रियात्मक) संगठन

क्रियात्मक संगठन में उद्यम की समस्त गतिविधियां (कार्य) कतिपय कार्य के यथा उत्पादन विपणन वित्त एवं कार्मिक समूहों के रूप में व्यवस्थित की जाती है तथा विभिन्न पदों (स्थितियों) के प्रभार के अंतर्गत रखा जाता है। कार्य प्रभारी इनका संगठन के सर्वत्र (चारो तरफ) अनुगमन करता है तथा इस कार्य क्षेत्रों में कार्य करने वाले व्यक्तियों के ऊपर नियंत्रण रखता है। अर्थात यदि कोई व्यक्ति एक से अधिक (कई) कार्य करता है तो वह इन विविध कार्यों को प्रभारियों के अधीन कार्य करेगा। (अधीन होगा/रहेगा)। क्रियात्मक (कार्यात्मक) प्रभारी अपने क्षेत्र में विशेषज्ञ होता है। पूर्ण कार्यात्मक संगठन की वास्तविक प्राप्ति अति दुर्लभ है। हालांकि कई संगठन प्राथमिक कार्यों को करने हेतु कार्यात्मक नियोजन को अपनाते है।

कार्यात्मक संगठन विभिन्न स्तरों पर हो सकते है। उच्च स्तर पर यह समान प्रमुख कार्यों यथाः क्रय विक्रय उत्पादन वित्त इत्यादि के लिये विभागों की स्थापना का कार्य करता है। प्रत्येक विभाग समान कार्यों के सम्पादन चाहे वो किसी भी अन्य विभाग के हो करता है।

उदाहरणार्थ क्रय, विक्रय एवं अन्य विभागों के लिये चयन, प्रशिक्षण, पदोन्नति आदि से सम्बन्धित प्रश्न कार्मिक विभाग द्वारा निर्णीत/निश्चित किये जायेंगे। टेलर ने निम्न स्तर (शॉप लेवल) पर भी कार्यात्मक संगठन (विशेषज्ञता) की संस्तुति की थी।

इन विविध कार्यों को प्रभारियों के अधीन कार्य करेगा। (अधीन होगा/रहेगा)। क्रियात्मक (कार्यात्मक) प्रभारी अपने क्षेत्र में विशेषज्ञ होता है। पूर्ण कार्यात्मक संगठन की वास्तविक प्राप्ति अतिदुर्लभ है। हालांकि कई संगठन प्राथमिक कार्यों को करने हेतु कार्यात्मक नियोजन को अपनाते है।

कार्यात्मक संगठन विभिन्न स्तरों पर हो सकते है। उच्च स्तर पर यह समान प्रमुख कार्यों यथाः क्रय विक्रय, उत्पादन वित्त इत्यादि के लिये विभागों की स्थापना कार्य करता है। प्रत्येक विभाग के समान कार्यों के सम्पादन चाहे वो किसी भी अन्य विभाग के हो करता है। उदाहरणार्थ : क्रय विक्रय एवं अन्य विभागों के लिये चयन, प्रशिक्षण पदोन्नति आदि से सम्बन्धित प्रश्न कार्मिक विभाग द्वारा निर्णीत/निश्चित किये जायेंगे। टेलर ने निम्न स्तर (शॉप लेवल) पर भी कार्यात्मक संगठन (विशेषज्ञता) की संस्तुति की थी।
उनके विचार से एक सरपंच (फोरमैन) को कई विशेषज्ञों की सहायता प्राप्त होनी चाहिये।

कार्यात्मक संगठन को निम्नलिखित चार्ट द्वारा समझा जा सकता है।

| | | | |
|---|---|---|---|
| | महाप्रबंधक | | |
| कार्मिक प्रबंध | वित्त प्रबंधक | उत्पादन प्रबंधक | विपणन प्रबंधक |

**चित्र 5.3 कार्यात्मक संगठन चार्ट**

उपरोक्त विमर्श के आधार पर कार्यात्मक संगठन की निम्नलिखित विशेषतायें परिलक्षित होती है :

1. कार्य को विशेषीकृत प्रकार्यों में विभक्त किया जाता है;
2. विशेषज्ञ वरिष्ठ सत्ता (प्राधिकार) धारण करते है। अतः सम्पूर्ण रेखा के अंतर्गत अपने विशिष्ट कार्यों के संदर्भ में आदेश देते है।

3. विशेषज्ञों से उनके कार्य के विषय में कोई भी निर्णय लेने से पूर्व मशविरा (परामर्श) अवश्य किया जाना चाहिये।
4. क्रियात्मक प्राधिकार के उत्तरदायित्व का संपादन अन्य अधिशासियों द्वारा होता है।
5. यह एक रेखा संगठन की तुलना में उच्च सतह पर स्थित संगठन है। स्टाफ संगठन में एक विशेषज्ञ कई कर्मचारियों का पर्यवेक्षण कर सकता है। जबकि रेखा संगठन में एक विशेषज्ञ सीमित संख्या में ही अधीनस्थों का पर्यवेक्षण कर सकता है।

**गुण**—कार्यात्मक संगठन के गुण निम्नलिखित है :

1. **विशेषीकरण (विशेषज्ञता)**—कार्यों की विशेषज्ञता का लाभ पाने हेतु संगठन को योग्य (सक्षम) करने हेतु श्रम विभाजन करने हेतु श्रम विभाजन को सुनिश्चित करता है।

2. **अधिक दक्षता**—जब कार्मिकों अथवा अन्य को अल्प कार्य (सीमित संख्या में) का संपादन करना पड़ता है तथा उन्हें विशेषज्ञों से सुझाव एवं निर्देश प्राप्त होते है तो कर्मचारियों की दक्षता बढ़ती है।

3. **मानसिक एवं शारीरिक कार्यों का पृथक्करण**—यह मानसिक एवं शारीरिक कार्यों के पृथ्क्करण को सुनिश्चित करता है। यह विभिन्न अनुभागों की कार्य प्रणाली (कार्यवाही) पर नियंत्रण सुनिश्चित करता है।

4. **मितव्ययिता**—विभिन्न क्षेत्रों में मानकीकरण एवं विशेषीकरण व्यापक पैमाने पर उत्पादन को सुगम करता है परिणामतः उत्पादन में मितव्ययिता होती है।

5. **प्रसार**—रेखा संगठन की तुलना में यह प्रसार का विस्तृत क्षेत्र (संभावना) प्रस्तुत करता है। यह कतिपय रेखा प्रबंधनों की सीमित योग्यता की समस्या का सामना नहीं करता है। कार्यात्मक प्रबंधकों का विशेष ज्ञान (विशिष्ट) संगठन में श्रेष्ठतर नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण को सुगम करता है।

**दोष**—कार्यात्मक संगठन के दोष अग्रांकित है।

1. **भ्रम**—कार्यात्मक संगठन का कार्य अत्यधिक जटिल है। श्रमिक कई स्वामियों (उच्चस्थों) से पर्यवेक्षित होता है। परिणामस्वरूप प्राधिकार का अति आच्छादन होता है और इस प्रकार संगठन में भ्रम उत्पन्न होता है।

2. **समन्वय का अभाव**—इसके अंतर्गत कार्यो को भागों एवं उपभागों में विभाजित किया जाता है। यह विभिन्न भागों के कार्यों में समन्वय स्थापन में कठिनाई उत्पन्न करता है। इस प्रकार त्वरित निर्णय लेने में कठिनाई होती है।

3. **उत्तरदायित्व निश्चित करने में कठिनाई**—बहु सत्ता (प्राधिकार) के कारण अल्प निष्पादन का उत्तरदायित्व किसी भी व्यक्ति पर सरलता से निश्चित नहीं किया जा सकता।

4. **संघर्ष (टकराव)**—समान श्रेणी के पर्यवेक्षक स्टाफ कतिपय मुद्दों पर सदैव सहमत नहीं होते। अतः संघर्षों की आवृत्ति हो सकती है, जिससे गैर निष्पादन स्थान ले सकता है।

संगठन का यह प्रकार उद्यम की प्रकृति एवं आकार से निरपेक्ष, समस्त प्रकार के उद्यमों के लिये उपयुक्त है। किंतु यह संगठन के उच्च स्तर पर अधिक सफलतापूर्वक क्रियान्वित (लागू) किया जा सकता है, तत्पश्चात् निम्न स्तरो पर।

## 5.5 आव्यूह (मैट्रिक्स संगठन) संगठन

यह संगठनात्मक अभिकल्प का नवीनतम प्रकार है। यह परियोजना उद्देश्यों की श्रृंखला को प्राप्त करने हेतु लोचशील संरचना के निर्माण के लिये विकसित किया गया है। आव्यमह संगठन जिसे ग्रिड (झर्झर/जाली) संगठन भी कहा जाता है, उन उपक्रमों को उत्तर है, जो रेखा स्टाफ एवं कार्यात्मक की तुलना में अधिक लोचशील तकनीक उन्मुख संगठन संरचना की आवश्यकता का अनुभव करते है।

आव्यूह संगठन, परियोजना संगठन का मिश्रण (संयोग) है। कार्यात्मक विभागों के अंतर्गत प्राधिकार (सत्ता) का प्रवाह उर्ध्व (लम्बवत) दिशा में जब कि परियोजना प्रबंध को का प्राधिकार उर्ध्व रेखाओं को काटते हुए क्षैतिजतः होता है।

इस प्रकार आव्यूह संगठन तब निर्मित (सृजित) किया जाता है। जब परियोजना प्रबंध स्थिर पदसोपानिक संरचना में अधिव्यापत (सुपर इम्पोज्ड) प्रायः एक कार्यात्मक प्रकृति के कट दिया जाता है। यहां परियोजना पर कार्यरत व्यक्ति सतत (साथ–साथ) दो अधिन्यास, प्रथम अपने परियोजना कार्य को तथा अपने आधार विभाग को, रखते है।

**विशेषतायें**—आव्यूह संगठन की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित है :

1. **विशिष्ट परियोजनाओं के आस–पास बनना**—आव्यूह संगठन विशिष्ट परियोजनाओं के आस पास निर्मित होते है। परियोजना का प्रभार परियोजना प्रबंधक को दिया जाता है। जो उच्च प्रबंधन द्वारा संसूचित (सम्प्रेषित) समय, लागत, गुणवत्ता एवं अन्य दशाओं के अनुसार परियोजना को पूर्ण करने का आवश्यक प्राधिकार (सत्ता) रखता है।

2. **विभिन्न विभागों से कार्मिकों को लेना**—परियोजना प्रबंधक विभिन्न विभागों से कार्मिकों को चुनता है। वह विभिन्न कार्यात्मक समूहों को कार्य अधिन्यासित (आवंटित) करता है। परियोजना की समाप्ति पर क्रियात्मक समूह अन्य समूहों को पुर्न अधि याक्षित करने हेतु अपने कार्यात्मक विभागो को चला जाता (लौट जाता है) है।

3. **विभिन्न भूमिकायें**—परियोजना प्रबंधक एवं कार्यात्मक प्रबंधक पृथक भूमिका का निर्वाह करते है। परियोजना प्रबंधक सामान्य प्रबंधन का ध्यान (दृष्टिकोण) अपने परियोजना की ओर खीचता है। प्रत्येक कार्यात्मक प्रबंधक अपने कार्य की सत्यनिष्ठा (शुद्धता) बनाये रखने हेतु उत्तरदायी होता है। यद्यपि परियोजना प्रबंधक एवं कार्यात्मक प्रबंधक एक दूसरे पर निर्भर होते हैं क्योंकि उन दोनों को परियोजना के क्रियान्वयन हेतु कई संयुक्त निर्णय लेने होते है। अतः परियोजना एवं कार्यात्मक समूह के मध्य उचित समन्वय होता है।

4. **उद्देश्यों द्वारा प्रबंधन**—परियोजना के उद्देश्यों द्वारा प्रबंधन इस संदर्भ में विचार एवं कार्य हेतु सर्वोपरि (सर्वश्रेष्ठ) है।

**लाभ**—आव्यूह संगठन के कई लाभ है। समस्त संगठनों जो किसी भी प्रकार की संरचनात्मक एवं तकनीकी जटिलता की समस्या का सामना कर रहे हो, को

संगठन के इस प्रकार को अपनाना चाहिये। कार्यात्मक उर्ध्व (लम्बवत) सम्बन्ध तथा अंर्त सम्बन्धित (अर्त निर्भर) सम्बन्ध परिचालन लोचशीलता के कारण बनते है। यह अभावों एवं परिवर्तनों के सम्मुख अधिक अनुकूलनशील बनाता है। यह परियोजना पर ध्यान प्रदान करता है तथा विशेषज्ञों की विशेषज्ञता तथा कार्यात्मक विभागों की दक्षता का लाभ प्राप्त करता है।

**सीमितताएं**—आव्यूह संगठन अस्थायी प्रकृति का होता है। इसके अतिरिक्त परियोजना समूहों तथा कार्यात्मक समूहों में संघर्ष हो सकता है।

इसके लिये कई विशेषज्ञ कौशलों में समन्वय स्थापन आवश्यक होता है। परियोजना पर कार्य करने वाले कर्मचारी इस भय से आशंकित रहते है, कि परियोजना का समापन उन्हें कार्य मुक्त कर सकता है न कि कोई पुर्न अधिन्यास (किसी नये परियोजना पर) करने के अवसर प्रदान करेगा। एक परियोजना के दूसरे परियोजना पर जाना उनके मन में उनके वृत्ति के संदर्भ में चिंता का कारण हो सकता है।

यह कहना अति कठिन है कि किस प्रकार का संगठन सर्वश्रेष्ठ (सर्वोत्त्म) है। सावधानी पूर्वक विश्लेषण के आधार पर हम पाते है कि रेखा एवं स्टाफ संगठन व्यापारिक जगत में अति–लोकप्रिय है।

## 5.6. संगठन का समिति प्रारूप

इस जटिल व्यापार जगत में किसी एक विभाग द्वारा सम्पादित (कारित) प्रत्येक कार्य अन्य विभागों के कार्य को प्रभावित करता है।

उत्पादन नीति में मामूली सा परिवर्तन विक्रय विभाग को चिंतित कर सकता है। उसी प्रकार नवीन विक्रय नीति अथवा विक्रय नीति में परिवर्तन का विक्रय प्रबंधक द्वारा पालन बिना वित्त प्रबंधन अथवा उत्पादन प्रबंधक से परामर्श किये नहीं किया जा सकता। इस संदर्भ में यह भली भांति समझने योग्य है कि ऐसे महत्वपूर्ण नीतिगत निर्णय जो अन्य विभागों से भी सम्बन्धित हो, सम्बन्धित विभाग के प्रभारी द्वारा अकेले नहीं लिये जाने चाहिये बल्कि ये मामले एक ऐसी समिति को जिसमें समस्त प्रभावित विभागों के प्रबंधक सम्मिलित हो संदर्भित करना चाहिये। यह सहयोग एवं श्रेष्ठतर समन्वय को स्थापित करेंगा। इस प्रकार समिति संगठन व्यापक रूप से विशाल व्यावसयिक इकाईयों के बहुआयामी समस्याओं के समाधान हेतु प्रयोग में लायी जाती है।

**समिति के आशय**—समिति सदस्यों के मध्य विचारों के मुक्त विनियम के द्वारा संदर्भित विषयों पर निर्णय लेने हेतु विशिष्ट पदधारी व्यक्तियों का एक समूह है।

**लुईस ए. एलन.**—"समिति व्यवस्थित (संगठित) आधार पर नियुक्त अथवा चयनित व्यक्तियों का ऐसा निकाय है जो उनके सम्मुख लाये गये विषय पर विचार करने हेतु निर्मित होता है।"

**डब्ल्यू.एच. न्यूमन. के अनुसार**—"व्यक्तियों का एक समूह जो कतिपय प्रशासनिक कार्यों के सम्पादन हेतु विशेष रूप से पद स्थापित (निर्मित पदस्थ) किया गया है। यह केवल एक समूह की भांति कार्य करता है तथा अपने सदस्यों के मध्य विचारों के मुक्त आदान प्रदान की आवश्यकता रखता है।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर निम्नलिखित व्यापक (प्रधान, मुख्य) विशेषतायें प्राप्त हो सकती है।

1. **दो या अधिक व्यक्तियों का समूह**—समिति दो या अधिक नियुक्त अथवा निर्वाचित व्यक्तियों का समूह है।

2. **क्षेत्र**—यह अपने सम्मुख आयी (लायी गयी) विशिष्ट समस्याओं के समाधान का कार्य करता है। कतिपय कठोरतापूर्वक (दृढ़ता पूर्वक) परिभाषित न्याय–अधिकारिता क्षेत्र होते है। जिनके अंतर्गत समिति को अपने अस्तित्व को न्यायोचित ठहराने की अपेक्षा की जाती है।

3. **सतर्कता पूर्वक कार्य**—सदस्य समस्या के विस्तार जा सकते है। तथा संदर्भित समस्या के प्रत्येक पहलू पर विमर्श कर सकते है।

4. **प्राधिकार**—समिति अंतिम निर्णय लेने अथवा विषय पर कार्यवाही हेतु संस्तुति का अधिकार रख सकती है।

**समितियों के प्रकार**—समितियों को विभिन्न श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। प्रमुख प्रकार निम्नलिखित है।

1. **स्थायी अथवा तदर्थ समिति**—समिति प्रकृति रूप में स्थायी अथव तदर्थ हो सकती है। एक स्थायी समिति स्थायी अस्तित्व रखती है। जबकि तदर्थ समिति का गठन विशिष्ट उद्देश्यों के लिये किया जाता है।

2. **निर्णयन अथवा अन्य समितियाँ**—समिति अंतिम निर्णय लेने हेतु अधिकारक प्रत्यायोजित हो सकती है जबकि अन्य समितियाँ महज समस्याओं पर सतर्कता पूर्वक विचार कर सकती है। कुछ समितियां केवल रेखा अधिशासियों को संस्तुति करने हेतु अधिकृत होती है।

3. **रेखा अथवा स्टाफ समितियाँ**—रेखा समिति उत्तरदायी अधीनस्थों को प्रभावित करने वाले निर्णयों को लेने के प्राधिकार से भारित होती है।

4. **औपचारिक एवं अनौपचारिक समितियां**—औपचारिक समिति वह समिति होती है, जो संगठनात्मक नियमों विनियमों के अंतर्गत स्थापित होती है, तथा इसके कर्तव्यों एवं प्राधिकारों को वर्जित करने वाले विशिष्ट सत्ता (प्राधिकार) से युक्त होती है।

व्यवसाय में प्रायः समितियां औपचारिक समिति का ही प्रकार होती है।

दूसरी तरफ (ओर) अनौपचारिक समिति विशिष्टतः अधिकारो के प्रत्यायोजन द्वारा संगठित (व्यवस्थित) होते है। यह संगठन के भाग को नहीं धारण करता है।

**समिति संगठन के सिद्धांत**—समिति सिद्धांत के प्रमुख सिद्धांत निम्नलिखित है।

1. **न्यूनतम सदस्य संख्या का सिद्धांत**—समिति में सदस्यों की संख्या अत्यधिक नहीं होनी चाहिये। इसमें होने चाहिये तभी इसे उचित ढंग से प्रबंधित किया जा सकता है।

2. **सम्बन्धित (संदर्भित) विशेषज्ञों के समावेशन का सिद्धांत**—केवल उन्ही व्यक्तियों को अवश्यक ही समिति संगम में सम्मिलित करना चाहिये जो कार्य विशेष से सम्बन्धित हों।

3. **समिति की नियमित सभा का सिद्धांत**—समिति की सभा उचित रूप से आयोजित की जानी चाहिये तथा समिति की सभा की सम्यक सूचना प्रत्येक सदस्य को संसूचित करना चाहिये।

4. **सदस्यों के अधिकार एवं दायित्व का सिद्धांत**—समिति के सभी सदस्यों के कर्तव्य एवं अधिकार स्पष्टतः परिभाषित होने चाहिये।

5. **सदस्यों के दायित्व का सिद्धांत**—समिति के सभी सदस्यों को दायित्व उनकों प्रत्यायोजित अधिकारों के अनुसार होना चाहिये।

6. **समिति की कार्यसूची का सिद्धांत**—समिति की सभा कार्य–सूची (कार्यक्रम) जो कि पूर्व निश्चित होने चाहिये, के अनुसार होने चाहिये।

7. **परस्पर विश्वास का सिद्धान्त**—समिति के सभी सदस्यों के मध्य पारस्परिक विश्वास तथा सहयोग की भावना अवश्य होनी चाहिये।

8. **सदस्यता की सेवा निवृत्ति का सिद्धांत**—समिति के सदस्य चक्रानुक्रम क्रम में अवश्यक ही सेवानिवृत्त होने चाहिये।

यदि समिति उपरोक्त सिद्धांतों के अनुसार स्थापित एवं संचालित होती है। तो यह अपेक्षा की जा सकती है। कि समिति अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल होगी।

**समिति–संगठन के गुण.**—समिति संगठन दिन प्रतिदिन लोकप्रिय होता जा रहा है। समिति संगठन के प्रमुख गुण/लाभ निम्नांकित है।

1. **समूह निर्णय**—समिति संगठन में सभी महत्वपूर्ण निर्णय सामूहित रूप से लिये जाते है। ये निर्णय अधिक तार्किक एवं सुदुढ़ तथा समिति के समस्त सदस्यों के कौशल, बुद्धिमत्ता तथा अनुभव द्वारा प्रभावित होते है।

2. **सूचना का सम्प्रेषण**—समिति संगठन प्रभावी सम्प्रेषण हेतु उपयुक्त मंच प्रदान करता है।

3. **पारस्परिक सहयोग में वृद्धि**—समिति संगठन परस्पर सहयोग एवं समन्वय की भावना पर निर्भर होता है। इस प्रकार समिति संगठन सदस्यों के मध्य परस्पर विश्वास एवं समन्वय की भावना पर निर्भर होता है। इस प्रकार समिति संगठन सदस्यों के मध्य परस्पर विश्वास एवं परस्पर समन्वय की भावना के विकास में सहायक होता है।

4. **शक्ति का विकेन्द्रीकरण**—समिति संगठन शक्ति विकेन्द्रीकरण पर आधारित है क्योंकि इस प्रणाली में महत्वपूर्ण निर्णयों को लेने का अधिकार किसी व्यक्तिगत अधिकारी (अधिकारी विशेष) तक केन्द्रित नहीं होता। समिति के सभी सदस्य सामूहिक निर्णय लेते है।

5. **लोकतंत्र को प्रोत्साहन**—समिति संगठन लोकतंत्र को प्रोत्साहित करता है क्योंकि समिति के सभी निर्णय बहुमत द्वारा लिये जाते है।

6. **विभेद रहित निर्णय**—समिति के समस्त निर्णय समिति के समस्त सदस्यों द्वारा सामूहिक रूप से लिये जाते है। इसलिये ये निर्णय किसी अधिकारी के व्यक्तिगत विचारों, राय में प्रभावित नहीं होते है।

7. **सदस्यों की योग्यता का लाभ**—समिति–संगठन के सभी सदस्य समिति के प्रत्येक कार्य (कार्यवाही) से (पूर्व ह्रदय से) योगदान करते है। इस प्रकार व्यवसायिक उद्यम समस्त सदस्यों की योग्यता का लाभ प्राप्त करते है।

8. **समन्वय**—समिति परस्पर विश्वास एवं सहयोग पर आधारित होती है। अतः सभी सदस्यों की गतिविधियाँ समन्वयित होती है।

9. **नियंत्रण स्थापना में सरलता**—समिति संगठन में नियंत्रण स्थापना में सरलता होती है क्योंकि संगठन के सभी सदस्य निर्णय में सम्मिलित होते है तथा वे इन निर्णयों को क्रियान्वित करने में पूर्ण ह्रदय से योगदान करते है।

10. **अन्य लाभ**—उपरोक्त लाभों के अतिरिक्त इस संगठन के अन्य कई लाभ है।

समान निर्देश तथा सदस्यों का ज्ञान वर्धन इत्यादि अन्य लाभ है।

**समिति संगठन के दोष.**—उपरोक्त गुणों के बावजूद समिति संगठन दोषयुक्त तथा अव्यवहारिक समझा जाता है।

**कुण्टज व ओडो नल के अनुसार,** ''यह अनैच्छिक द्वारा अनावश्यक कार्य करने हेतु चयनित (निर्मित) इकाई की सभा है।''

समिति संगठन के प्रमुख दोष निम्नलिखित है।

1. **निर्णयों में विलम्ब**—समिति संगठन का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें निर्णय परियोजना बन जाते है और चूंकि निर्णयों में समस्त सदस्य सामूहिक रूप से सम्मिलित होते है। अतः विलम्बित हो जाते है। कभी कभार निर्णय इतना विलम्बित हो जाते है कि अर्थ हीन हो जाते है।

2. **कार्यवाही में विलम्ब**—क्योंकि इसमें निर्णय विलम्ब से लिये जाते है। अतः उनका क्रियान्वयन विलम्ब से होता है तथा कार्यवाही में विलम्ब होता है।

3. **अभिप्रेरणा का अभाव**—चूंकि कोई एक अधिकारी महत्वपूर्ण निर्णय लेने हेतु अधिकृत नहीं होता है। अतः यह अभिप्रेरण का अभाव उत्पन्न करता है।

4. **उत्तरदायित्व का अभाव**—समस्त निर्णय सामूहिक रूप से लिये जाते है। अतः किसी अधिकारी विशेष का उत्तरदायित्व निश्चित करने में समस्या होती है।

5. **आक्रामक प्रकृति का नेतृत्व**—समिति संगठन का एक बड़ा दोष यह है कि इसके नेतृत्व की प्रकृति आक्रामक होती है, क्योकि जो व्यक्ति अधिक तथा उच्च स्तर में वार्तालाप करता है वह समिति पर अधिभावित (शाष करता है) होता है।

6. **गोपनीयता का अभाव**—क्योंकि सारे महत्वपूर्ण निर्णय समस्त विभागों के मुखिया द्वारा लिये जाते है। अतः गोपनीयता का अभाव रहता है।

7. **अल्पमत सदस्यों के विरुद्ध (का विरोधी)**—क्योंकि निर्णय बहुमत के सिद्धांत के आधार पर लिये जाते है, किंतु उस समिति के कुछ सदस्य इन निर्णयों के विरुद्ध होते है। इस प्रकार समिति का निर्णय इन अल्पमत समिति सदस्यों के विरुद्ध रहता है।

8. **व्यर्थ के कार्य**—कभी कभी समिति कुछ ऐसे कार्यों का सम्पादन करती है जो उद्यम के किसी उपयोग के नहीं होते।

9. **उद्यम की गतिविधियों के घुमाव**—समिति के सदस्य अपने अपने विभागों के विभागाध्यक्ष (मुखिया) होते है तथा वे अपने अपने विभागों की सभायें आवर्ती ढंग से आयोजित करते है। अतः इसके कारण उद्यम की गतिविधियों में घुमाव होता है।

10. **अन्य हानि**—कार्य अधिकारियों के कार्य प्रभार से मुक्त करने में समस्या उपरोक्त अन्य दोषों के अतिरिक्त इस संगठन का दोष है।

उपरोक्त दोषों के कारण हम पाते है कि समिति संगठन अर्थहीन एवं निष्प्रयोज्य है।

**कूण्टज व ओडोनल के अनुसार,** आप अश्व क्रय करने जाते है तथा अपने हाथ में ऊँट लेकर लौटते है।

**समिति–संगठन के दुरूपयोग**—सामान्यतः समिति संगठन केवल बड़े व्यावसायिक उद्यम में पाये जाते है क्योंकि बड़े (विशाल) व्यवसाय एवं औद्योगिक उद्यमों का संगठन केवल समिति संगठन द्वारा ही किया जा सकता है। समिति संगठन के दुरूपयोंग के कतिपय उदाहरण निम्नलिखित है :

1. **समझौते द्वारा निर्णय**—समझौते के द्वारा निर्णय समिति के अधिकारियों के अधिकारों के दुरूपयोग का बड़ा (प्रमुख) उदाहरण है। समिति के सदस्यों की राय अलग अलग होती है। अतः सर्व सम्मत निर्णयों को ले पाना प्रायः असंभव होता हैं। इस दशा के अधिकारों के दुरूपयोग का बड़ा (प्रमुख) उदाहरण है। समिति के सदस्यों की राय अलग अलग होती है। अतः सर्व सम्मत निर्णयों को ले पाना प्रायः असंभव होता है। इस दशा में प्रायः समस्त निर्णय समझौते के द्वारा लिये जाते है। ये निर्णय बहुत सुदृढ़ एवं प्रभावकारी नहीं होते है। कभी कभी निर्णय उद्यम के हितों के विरुद्ध होते है।

2. **खर्चीला (व्ययसाध्य)**—समिति संगठन एक विशाल संगठन होता है। इसलिये यह एक खर्चीला संगठन होता है। समिति के सदस्य संगठन के नाम पर अनावश्यक व्यय करते है।

3. **अल्पमत सदस्यों के साथ अन्याय.**—समिति में बहुमत के आधार पर निर्णय लिये जाते है। इसका अर्थ यह हुआ कि समिति के कुछ सदस्य समिति द्वारा लिये गये निर्णय के विरुद्ध होते है। इस प्रकार समिति के निर्णय इन सदस्यों पर आरोपित किये जाते है। जो स्वयं उद्यम के हित में नहीं रहता है।

4. **कुछ व्यक्तियों का प्रभाव (प्रभूत्व)**—सिद्धांततः समिति के समस्त निर्णय बहुमत के आधार पर लिये जाते है। समिति के सभी सदस्यों को समिति में विमर्शित सभी विषयों पर अपनी राय व्यक्त करने का अधिकार रहता हैं कितु व्यवहारतः समिति ऐसे कुछ व्यक्तियों द्वारा अधिभावी (प्रभुत्व स्थापित) रहती है जो उच्चस्तर में तथा प्रवाह ढंग से बोल सकते है। ये सदस्य समिति के निर्णयों को आवांछित रूप से प्रभावित करते है।

5. **अल्प समय एवं समस्या की अधिकता**—समिति संगठन एक विशाल संगठन होता है। तथा इसे सीमित समय में कई कार्यों का संपादन करना पड़ता है। इस प्रकार सदैव ही इसके द्वारा निष्पादित होने वाले कार्यो हेतु समयाभाव

रहता है। इसलिये समिति के सदस्य समिति के कार्यों में रूचि नहीं लेते तथा अपने समय को अर्थहीन एवं फल रहित विमर्शों में नष्ट करते है।

6. **अनुचित निर्णय हेतु किसी सदस्य का उत्तरदायित्व**—क्योंकि समिति के समस्त निर्णय सभी सदस्यों द्वारा सामूहिक रूप से लिये जाते है अतः किसी व्यक्ति विशेष के उत्तरदायित्व को निश्चित करना एक कठिन कार्य होता है, जब कोई निर्णय अनुचित एवं उद्यम के हितों के विरुद्ध होता है ।

**समिति संगठन को अधिक प्रभावी बनाने हेतु सुझाव.**—समिति संगठन को निम्नलिखित उपायों (सुझाव) से अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

1. **समिति संगठन की उपयुक्तता**—समिति संगठन का गठन तभी किया जाना चाहिये जब यह अनुभव किया जा रहा हो कि समिति से होने वाले लाभ इस पर होने वाले व्ययों से अधिक है। यदि यह आभास हो कि समिति पर होने वाले व्यय इसके लाभों से अल्प है तो इसका गठन नहीं किया जाना चाहिये।

2. **समिति संगठन का आधार उपयुक्त होना चाहिये**—समिति का आकार उद्यम के आकार के अनुसार उपयुक्त होना चाहिये। यह इसलिये आवश्यक है कि समिति के सदस्यों की राय (विचारों) का सरलता एवं सुविधा जनक ढंग से विनिमय हो सके।

3. **योग्य सदस्यों का चयन**—समिति की सफलता इसके सदस्यों की योग्यता पर निर्भर करती है। अतः केवल उन्ही सदस्यों का चयन समिति के सदस्यों के रूप में किया जाना चाहिये जो अपने कर्तव्यों के उचित ढंग से निर्वहन में कुशल हो तथा जो अपने विभाग का उचित ढंग से प्रतिनिधित्व कर सकता है।

4. **अध्यक्ष की क्षमता**—समिति की सफलता बहुत सीमा तक समिति के सदस्य की दक्षता(योग्यता)/क्षमता पर निर्भर करती है। इसलिये यह आवश्यक हो जाता है कि समिति के अध्यक्ष का चयन अत्यंत सावधानी पूर्वक किया जाना चाहिये। अध्यक्ष अनुभवी होना चाहिये। जो समिति की सभाओं का उचित ढंग से संचालन कर सके। अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति होना चाहिये। जो आगे बढ़े निर्देश दे सके एवं समिति के अन्य सदस्य पर नियंत्रण स्थापित कर सके।

5. **क्षेत्र का स्पष्टीकरण**—समिति की सफलता हेतु एक महत्वपूर्ण सुझाव यह है कि क्षेत्र (समिति के क्षेत्र) स्पष्टतः परिभाषित तथा उचित ढंग से संसूचित (सम्प्रेषित) हो जिससे कि समिति द्वारा निष्पादित कार्यों के सम्बन्ध में कोई मतभेद न हो।

6. **सदस्यों के अधिकार एवं कर्तव्य स्पष्ट रूप से विनिर्देशित होने चाहिये**—समिति का सफलता हेतु समिति के सदस्यों का आपस में परस्पर विश्वास एवं परस्पर सहयोग आवश्यक है। परस्पर विश्वास एवं सहयोग के विकास हेतु यह आवश्यक है कि समिति के सभी सदस्यों के अधिकार एवं कर्तव्यों का स्पष्टतः परिभाषित किया जाये।

7. **विमर्शित (विचारित) विषयों की उपयुक्तता**—समिति को केवल उचित विषयों पर ही विचार करना चाहिये। उद्यम के लिये महत्वपूर्ण विषयों को ही समिति को अधिन्यासित करना चाहिये। यदि विषय इतना महत्वपूर्ण नहीं है तो इसे

समिति को नहीं संदर्भित करना चाहिये। अन्यथा यह समय ऊर्जा एवं धन का अपव्यय (बर्बादी) होगा।

8. **समिति की सभाएं पूर्व निर्धारित कार्यक्रमों के अनुसार होनी चाहिए.** —समिति की सभा का कार्यक्रम पूर्व में (अग्रिम) ही भली भांति निर्धारित कर लेना चाहिये तथा इसकी सूचना समिति के सभी सदस्यों को प्रदान कर दी जानी चाहिये जिससे कि वे अपने को विचार विमर्श हेतु तैयार कर सकें। यह समय की बचत करेगा तथा निर्णयों को अधिक सुदृढ़ एवं प्रभावी बनायेगा।

## 5.7 संगठनों के मध्य अंतर

कई बिंदुओं पर रेखा तथा रेखा एवं स्टाफ संगठन के मध्य समानता है :

1. संगठन के दोनों प्रकारों में व्यावसायिक गतिविधियों (कार्यों) को विभिन्न विभागों एवं उप विभागों में विभाजित किया जाता है।
2. दोनों संगठनों में आदेश एवं अनुरोध रेखीय रूप में होते है।
3. प्रत्येक अधिकारी के अंतर्गत अधीनस्थों की संख्या सीमित होती है।

उपरोक्त समानताओं के बावजूद दोनों संगठनों में निम्नलिखित आधारों पर अंतर स्थापित किया जा सकता है।

(A) रेखा संगठन एवं रेखा एवं स्टाफ संगठन में अंतर

| क्रमांक | अंतर का आधार | रेखा संगठन | रेखा व स्टाफ संगठन |
|---|---|---|---|
| 1. | विशेषज्ञों की सेवायें | विशेषज्ञों की सेवा का कोई प्रावधान नहीं होता है। | विशेषज्ञों की सेवा उपलब्ध होती है। |
| 2. | विशेषज्ञता की सिद्धांत | विशेषज्ञता के सिद्धांत का पालन नहीं होता है। | विशेषज्ञता के सिद्धांत का पालन होता है। |
| 3. | लोचशीलता | अल्प लोचशीलता होती है। | अधिक लोचशीलता होती है। |
| 4. | जांच (अन्वेषण) | अन्वेषण का कोई प्रावधान नहीं होता है। | अन्वेषण को प्रोत्साहित करता है। |

(B) कार्यात्मक एवं रेखा एवं स्टाफ संगठन में अंतर

| क्रमांक | अंतर का आधार | रेखा संगठन | रेखा व स्टाफ संगठन |
|---|---|---|---|
| 1. | कर्मचारियों से प्रत्यक्ष सम्पर्क | कामगार (कर्मचारी) विशेषज्ञों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में होते है। | कर्मचारी विशेषज्ञों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में नहीं होते है। |
| 2. | विशेषज्ञों द्वारा आदेश | विशेषज्ञ कर्मचारियों को आदेश दे सकते है। | विशेषज्ञ कर्मचारियों को आदेश नहीं दे सकते है। |
| 3. | अनुशासन | ढीला (सुस्त) अनुशासन होता है। | अनुशासन कठोर होता है। |

(C) रेखा–संगठन एवं कार्यात्मक संगठन के मध्य अंतर

| क्रमांक | अंतर का आधार | रेखा संगठन | रेखा व स्टाफ संगठन |
|---|---|---|---|
| 1. | आदेश का प्रवाह | आदेशों का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर होती है। | प्रत्येक कर्मचारी एक समय में कई अधिकारियों |

| | | | |
|---|---|---|---|
| | | | से आदेश व निर्देश प्राप्त करते है। |
| 2. | उत्तरदायित्व निर्धारण | कर्मचारियों के उत्तरदायित्व को सरलता से निर्धारित किया जा सकता है। | कर्मचारियों के उत्तरदायित्व का निर्धारण संभव नहीं है। |
| 3. | विशेषज्ञता | यह विशेषज्ञता के सिद्धांत पर नहीं आधारित होता है। | विशेषज्ञता के सिद्धांत पर आधारित होता है। |
| 4. | विशेषज्ञों की भूमिका | विशेषज्ञों की कोई भूमिका नहीं होती है। | विशेषज्ञ महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते है। |
| 5. | समन्वय | संगठन के कार्यो में सरलतापूर्वक समन्वय स्थापित होता है। | उद्यम के विभिन्न कार्यों में समन्वय कठिन होता है। |
| 6. | अनुशासन | कठोर अनुशासन होता है। | सुस्त (ढीला) अनुशासन होता है। |

## 5.8 सारांश

इस इकाई में संगठन के विविध प्रकारों का वर्णन किया गया। इसके अंतर्गत रेखा एवं स्टाफ कार्यात्मक, आव्यूह एवं समिति संगठन सम्मिलित है। रेखा संगठन सिद्धांत यह बताता है कि कोई संगठन जो अदिश प्रक्रिया से व्यूत्पत्ति हुआ है एकल शीर्ष (मुखिया) होना चाहिये जो इसे नियंत्रित (समादेशित) करे। कार्यात्मक संगठन में उद्यम में समस्त कार्यों को कुछ कार्य के समूहों यथा उत्पादन, विपणन, वित्त एवं कार्मिक को विभिन्न व्यक्तियों के प्रभावों के अंतर्गत रखा जाता है। आव्यूह संगठन का विकास उद्यम के बढ़ते आकार एवं जटिलता से सामना करने हेतु लोचशील संरचना को स्थापित करने हेतु किया गया है।

## 5.9 शब्दावली

**रेखा–संगठन.**—रेखा–संगठन सिद्धांत के अनुसार किसी संगठन में जो अदिश प्रक्रिया से व्युत्पत्ति है एकल मुखिया होता है। जो इसे समादेशित करता है।

**स्टाफ–संगठन.**—इसका आशय ऐसी प्रणाली (पद्धति) से है जिसमें स्टाफ–विशेषज्ञ, रेखा प्रबंधकों को उनके कर्तव्यों के निर्वहन में अपनी विशेषज्ञ सलाह प्रदान करते है।

**समिति.**—समिति व्यक्तियों का एक समूह है जिसे सदस्यों के मध्य विचारों के मुक्त अंर्तविनिमय द्वारा इसे संदर्भित मामलों पर निर्णय लेने हेतु विशेष रूप से पदस्थ किया गया है।

## 5.10 बोध प्रश्न

**A. रिक्त स्थान की पूर्ति करे :**

1. संगठन की संरचना उद्यम में विविध..................के पदानुक्रमिक (पदसोपानिक) व्यवस्था (अनुक्रम/संशोधन) को निरूपित करती है।

2. ...................... प्राधिकार विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञों को समाहित करती है।
3. विशुद्ध ..........................संगठन की प्राप्ति दुर्लभ है।
4. ..................... और विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञता बड़े पैमाने के उत्पादन को सुगम बनाता है। फलतः उत्पादन में मितव्ययिता होती है।

**B. सही या गलत बताये :**

1. कार्यात्मक संगठन संगठन का प्राचीनतम प्रकार है।
2. रेखा एवं स्टाफ संगठन संगठन नियोजित विशेषीकरण पर आधारित है।
3. आव्यूह सदस्यों के मध्य विचारों के मुक्त विनिमय के द्वारा इसे संदर्भित विषयों पर निर्णय लेने हेतु पदस्थ व्यक्तियों का समूह है।
4. रेखा संगठन में अन्वेषण का कोई प्रावधान नहीं होता है।

## 5.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

A.

(1) पद 2. स्टाफ 3. कार्यात्मक 4. मानकीकरण।

B.

1. सत्य 2. गलत (असत्य) 3. गलत 4. सत्य

## 5.12 स्वपरख प्रश्न

1. संगठनों के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिये तथा इनको गुणों दोषों तथा सीमितताओं का वर्णन कीजिये।
2. संगठन के समिति प्रकार (रूप) का वर्णन कीजिये। इस प्रारूप में किन मूलभूत सिद्धांतों का पालन किया जाता है। इसके गुणों व दोषों का भी वर्णन कीजिये।
3. निम्नलिखित के मध्य अंतर स्पष्ट कीजिये :
    1. रेखा–संगठन एवं कार्यात्मक संगठन
    2. रेखा संगठन एवं स्टाफ संगठन
    3. रेखा स्टाफ संगठन एवं कार्यात्मक संगठन

## 5.13 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Kootnz & O'Donnell, Principles of Management.
2. J.S. Chandan, Management Concepts and Strategies.
3. Arun Kumar and R. Sharma, Principles of Business.
4. Management. Sherlerkar and Sherlerkar, Principles of Management.
5. Tripathi and Reddy, Principles of Management.
6. Kimball and Kimball, Principles of Industrial Organisation.

# इकाई 6 अधिकारों का प्रतिानिधायन (प्रत्यायोजन) एवं विकेन्द्रीयकरण

**इकाई की रूपरेखा**


6.1 प्रस्तावना
6.2 अधिकारों का प्रत्यायोजन एवं इसकी विधियॉ,
6.3 प्रत्यायोजन के तत्व एवं इसके प्रकार
 6.3.1 प्राधिकार
 6.3.2 उत्तरदायित्व
 6.3.3. जवाबदेही
 6.3.4 जवाबदेही प्रत्यायोजित नहीं की जा सकती
6.4 प्रत्यायोजन के सिद्धान्त
6.5 प्रत्यायोजन प्रक्रिया के विभिन्न चरण
6.6 प्रत्यायोजन के लाभ
6.7 प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व का सम्बन्ध
6.8 प्राधिकर एवं जवाबदेही में अन्तर
6.9 उत्तरदायित्व एवं प्रत्यायोजन में अन्तर
6.10 प्रत्यायोजन की कठिनाइयों
6.11 विकेन्द्रीयकरण
 6.11.1 विकेन्द्रीकरण की आवश्यक विशेषताएॅ
 6.11.2. विकेन्द्रीयकरण की मात्रा का माप
 6.11.3. विकेन्द्रीयकरण के लाभ
 6.11.4. विकेन्द्रीयकरण की हानियॉ
6.12 विकेन्द्रीकरण बनाम प्रत्यायोजन
6.13 साराँश
6.14 शब्दावली
6.15 बोध प्रश्न
6.16 बोध प्रश्नों के उत्तर
6.17 स्वपरख प्रश्न
6.18 सन्दर्भ पुस्तकें


## उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- प्रत्यायोजन की प्रकृति, संकल्पना, एवं तत्वों को परिभाषित कर सकें।
- प्रत्यायोजन के ऑशय एवं सीमितताओं को समझ सकें।
- प्राधिकार के विकेन्द्रीयकरण के सिद्धान्तों को समझ सकें।

## 6.1 प्रस्तावना

प्रत्यायोजन (प्रतिनिधायन) एक तकनीक है, जिसके द्वारा प्रातिकार एक प्रबंधकीय स्तर से दूसरे स्तर तक पंहुॅचती है। जैसे–जैसे संगठन आकार एवं जटिलता में वृद्धि होती है, कोई एक व्यक्ति अकेले उन समस्त कार्यों एवं अधिकारों का सम्पादन (निष्पादन) नहीं कर सकता हैं । अतः अधिकारों का

प्रत्यायोजन आवश्यक हो जाता हैं। अधिकारों का प्रत्यायोजन संगठन की प्रतिक्रियाओं का मर्म है तथा संगठन के सदस्यों के मध्य उच्चस्थ–अधीनस्थ सम्बन्ध के स्थापन पर बल देता है। प्रबन्धक जिसे उसके उच्चस्थ अधिकारी द्वारा प्राधिकार प्रत्यायोजित किया गया है कतिपय बातों पर निर्णय लेने एवं कतिपय कार्य करने हेतु सशक्त होता है वह कई पहलुओं पर अपने अधीनस्थ की ओर से उनके प्रतिनिधि की भॉति कार्य कर सकता है। अधिकारों का प्रत्यायोजन यह बताया है कि उच्चस्थ अपने अधीनस्थ में निर्णयन शक्ति निरस्त कर रहा हैं कोई भी उन अधिकारों का प्रत्यावेदन नहीं कर सकता जो वह धारण न करता हो।

## 6.2 अधिकारों के प्रत्यायोजन का अर्थ एवं इसकी विधियॉ

प्रत्यायोजन से आशय आवंटित कार्यो अथवा प्रत्यायोजन के निष्पादन हेतु निष्पादन हेतु अधीनस्थों में प्राधिकार को निहित करने से है। यह संगठन की प्रक्रिया का वह भाग है जिसके द्वारा प्रबन्ध दूसरों द्वारा संगठित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु कार्यों को साझा करने के कार्य को संम्भव बनाते है। प्रत्यायोजन से तात्पर्य कुछ क्षेत्रों में (परिभाषित क्षेत्रों में) प्राधिकार अथवा निर्णय लेने के अधिकार करे मंजूरी (स्वीकृति) देने से तथा अधीनस्थों को अभिन्यासित कार्य के करने के लिए कुछ उत्तरदायित्वों से भारित करने से है।

प्रत्यावेदन से ऑशय दूसरों को कार्य अभिन्यासित करने तथा उनको आवश्यक अधिकार (प्राधिकार) प्रदान करने से है जिससे कि वे उन्हें आवंटित (प्रदान किये गये) कार्य को पूर्ण कर सकें।

1. **एफ0जी0 मूरे के शब्दों में–** ''प्रत्यायोजन से ऑशय, दूसरों को कार्य अभिन्यासित (आवंटित/प्रदान करने) करने तथा उन्हें यह कार्य करने हेतु प्राधिकार प्रदान करने से है।
2. **लुईस ए एलने** – ''प्रत्यायोजन प्रबन्ध की गतिकी है। यह वह प्रक्रिया है जो प्रबन्धक उन्हें जो कार्य दिये गये है, उसके विभाजन में प्रयोग करते है, इस प्रकार वे वहीं कार्य करते है, जो वे अपनी अद्वितीय संगठनात्मक पद–स्थापना के कारण प्रभावी ढंग से निष्पादित कर पाते है तथा शेष बचें कार्यों में सहायक हेतु वे अन्य को प्राप्त कर सकते हैं।''
3. **ई0एफ0एल0 ब्रेच के अनुसार –** ''प्रत्यायोजन प्रबन्ध प्रतिक्रिया के चार तत्वों में से यथा समादेश नियोजन, समन्वयक एवं नियन्त्रण, कुछ को अथवा सभी को साझा करने की प्रक्रिया है '' आगे वे कहते है, कि प्रत्यायोजन महज निर्देश निर्गत करने का प्रश्न नहीं है वरन् अधिशाषियों के उत्तर दायित्व को अलग करने (नीचे लाने) तथा कार्यभार को पूर्णतः अथवा अंशताः अन्य व्यक्तियों को स्थानान्तरित (पारेणित) करना है।

   चूॅकि एक व्यक्ति एक मानव की शक्ति ही रखता है इसलिए एफ0जी0 मूरे ने एक बार कहा है कि प्रत्यायोजन इस प्रकार विश्वस्त अधीनस्थों को उसके बोझ को साझा करने हेतु कहने के द्वारा उसकी (प्रत्यायोजन करने वाले को – प्रत्यायोजन के) क्षमता को सम्बन्धित करने हेतु आवश्यक है।''
4. **एस0एस0 चटर्जी के शब्दों में –** ''प्रत्यायोजन के अभाव में संगठन का सम्पूर्ण अस्तित्व तुरन्त ही ध्वस्त हो जायेगा। यदि संगठन में कर्तव्यों को विभाजित नहीं किया जायेगा तथा प्राधिकारों को साझा नहीं किया जायेगा

तो संगठता का अस्तित्व शून्य हो जायेगा तथा निरर्थक हो जायेगा। इस संगठन का प्रबन्ध प्रत्यायोजन के बिना असम्भव हो जायेगा''

इस कारण से कार्यों को एकीकृत, समन्वयित किया जाना चाहिए तथा उद्देश्य की एकता प्राप्त की जानी चाहिए, यह प्रभावी प्रत्यायोजन को आवश्यक बनाता है।

**प्रत्यायोजन की पद्धतियॉं (विधियॉं)** –

एक विशाल निर्माणी उपक्रम में श्रेष्टतर परिणाम एकीकृत निर्देशन एवं समादेश तथा प्रभावी प्रत्यायोजन को सुनिश्चित करने हेतु निम्नलिखित विधियॉं उपयोगी हो सकती है।

(1) **प्रशासनिक प्रत्यायोजन** –

जब कतिपय (कुछ) प्रशासनिक कार्यों को अधीनस्थ स्टाफ को प्रत्यायोजित किया जाता है तो इसे प्रशासनिक प्रत्यायोजन कहा जाता है ये नैत्यिक प्रकृति के कार्य होते है, यथाः अनुशासन बनाये रखना, सजा हेतु संस्तुति करना इत्यादि।

(2) **भौगोलिक प्रत्यायोजन** –

यदि उद्यमता कार्य विभिन्न स्थानों पर स्थित हो तो उस दशा में एक व्यक्ति (एक शीर्ष) द्वारा उन सम्पूर्ण कार्यो को प्रबन्धित कर सकता सम्भव नहीं है। इस दशा में वह अपने प्राधिकार को उन व्यक्तियों को प्रत्यायोजित कर देता है, जो उन स्थानों पर पदस्थ (कार्यरत) व्यक्तियों को कर देता है जहॉं वह शारीरिक रूप से सदैव (वर्ष भर) नहीं पहुॅंच सकता। इस भौगोलिक प्रत्यायोजन कहते है।

(3) **कार्यात्मक (क्रियात्मक) प्रत्यायोजन** –

जब उधम की रचना कार्यात्मक संगठन के आधार पर अवस्थित होता है, उसे ऐसे उधम में प्रत्यायोजन भी कार्यात्मक आधार पर किया जाता है। प्रत्येक विभाग के मुख्यिा (अध्यक्ष/शीर्ष) को उनके ज्ञान, कौशल व कार्य अनुभव के द्वारा अपने विभाग का प्रबन्ध करने का कार्य सौंपा जाता है, तथ वे मुख्य अधिशाषियों के प्रति हिसाब देय होते है।

(4) **तकनीकी प्रत्यायोजन** –

प्रत्यायोजन की यह पद्धति तकनीकी ज्ञान एवं कौशल पर आधारित होता है। इस दशा में तकनीकी रूप से कुशल, विशेषताओं की सेवाओं का लाभ उठाने हेतु प्राधिकार का प्रत्यायोजन किया जाता है।

## 6.3 प्रत्यायोजन के तत्व एवं इसके प्रकार

प्राधिकार के प्रत्यायोजन के तत्वों में तीन चरण समाहित होते हैं,

**1. प्राधिकार** – उच्चस्थ अधिकारी, अपने अधीनस्थ को प्राधिकार स्वीकृत करता है कि वे अधिन्यासित कर्तव्यों, कार्यों का सम्पादन करें। इसके अन्तर्गत संसाधनों के प्रयोग का अधिकार, धन व्यय करने का अधिकार, कर्मचारियों (व्यक्तियों) को नियोजित करने का अधिकार इत्यादि सम्मिलित होते हैं।

**2. उत्तरदायित्व** – उच्चस्थ कुछ दायित्वों को/कर्तव्यों को अपने अधीनस्थ को प्रदान करता है।

**3. हिसाब देयता** – प्राधिकार का अंतिम चरण कर्तव्यों के निर्वहन हेतु अथवा प्रत्यायोजित प्राधिकार का प्रयोग कर किये गये कार्यों से प्राप्त परिणामों के प्रति हिसाब देयता व उत्तरदायित्व के सृजन से सम्बन्धित है। अधीनस्थ प्रत्यायोजित

प्राधिकार के प्रयोग के लिये हिसाब देय होना चाहिए। कर्तव्यों एवं प्राधिकार अपने उच्चस्थ के प्रति उत्तरदायी हो जाता है।

**6.3.1. प्राधिकार** – प्राधिकार प्रत्यायोजित कार्यो के निष्पादन को सम्भव बनाने हेतु एक व्यक्ति को सौंपे गये अधिकारों का योग है। इसके अन्तर्गत धन व्यय करने का अधिकार, कतिपय प्रकार की सामग्रियों के प्रयोग का अधिकार, कर्मचारियो (व्यक्तियों) को नियोजित करने व हटाने (कार्य से निकालने) का अधिकार सम्मिलित होते हैं।

एलन–तीन प्रकार प्राधिकार, ज्ञान का प्राधिकार, पद का प्राधिकार तथा विधिक प्राधिकार, की बात करते हैं। इनके अनुसार, ज्ञान का प्राधिकार सामान्यतः कम्पनी द्वारा नियुक्त स्टाफ विशेषज्ञों द्वारा धारित होती है। परामर्शदाता प्रायः अपने ज्ञान को कारण रेखा–संगठन में कार्यरत व्यक्तियों के कार्यों को प्रभावित करते हैं इसी प्रकार कुछ व्यक्ति अपने पद के कारण (स्थिति) प्राधिकार रखते है, उदाहरणार्थ एक व्यक्ति जो रेखा–प्राधिकार को धारन करने वाले के निकट से वह भी उचित (विचारणीय) प्राधिकार रखता है। प्रबन्ध–निदेशक का निजी सचिव अथवा स्वयं स्टाफ सहायक भी कोई आधिकारिक शैलियॉ प्राधिकार नहीं रखता है, किन्तु वह उच्च प्राधिकार रखे हुये व्यक्ति की निकटता के कारण इन प्राधिकारों का लाभ उठाता है।

विधिक अधिकार वह प्राधिकार है, जो व्यक्ति को उस देश की विधि द्वारा सौंपे जाते है। उदारणार्थः एक कम्पनी जो एक विधिक व्यक्ति है कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत विभिन्न अधिकारों का लाभ उठाती है। संगठन अपने सदस्यों के मध्य प्राधिकार सम्बन्ध के आधार पर निर्मित होते है। प्राधिकार संगठन की निर्माणी शक्ति तथा अधिशाषियों के कार्य की कुंजी है। एक अधिशाषी अन्य व्यक्तियों से कार्य नहीं करा सकता जब तक कि वह उन्हें समादेशित करने का अधिकार न रखता हो।

**6.3.2. उत्तरदायित्व** –

उत्तर दायित्व, संगठन में किसी व्यक्ति की, उसके पद (स्थिति) के कारण अधिन्यासित कार्यो कर्तव्यों को निरूपित करता हैं यह उन समस्त मानसिक और शारीरिक गतिविधियों, जो कि कार्य निष्पादन में अवश्यक ही निष्पादित होनी चाहिए से सम्बन्धित होता है। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति जो अधिन्यासित कार्य के रूप में कुछ शारीरिक अथवा मानसिक गतिविधियों का सम्पादन करता है उत्तरदायित्व रखता है।

अधीनस्थों द्वारा अपने उत्तर दायित्वों को भॅलि–भॉति पूर्ण करने के योग्य बनाने (सशक्त) में ही यह बताये कि उनसे क्यो अपेक्षित है। अन्य शब्दों में प्रत्यायोजन द्वारा उन कार्यों व कर्तव्यों को स्पष्ट रूप से निर्धारित करे जो कि प्रत्यायोजित होनी है। कर्तव्य या तो कार्य या उद्देश्य के रूप में अवश्यक ही अभिव्यक्त होनी चाहिए। यदि कर्मचारी को मशीन का संचालन करने के लिए कहा गया है तो यह कर्तव्य कार्य के पदों में है। किन्तु यदि उससे उत्पाद की निश्चत प्रतियों की संख्या के उत्पादन हेतु कहा गया है तो यह कर्तव्य लक्ष्य या उद्देश्य के रूप में है। उद्देश्य के रूप में कर्तव्यों के निर्धारण अधीनथों को यह जानने में सक्षम करेगा कि उनके निष्पादन को किन मानकों के आधार पर मूल्यांकित किया जायेगा।

<u>एल्विन डाउन के अनुसार</u> –

उत्तरदायित्व को दो अर्थो में समझा जा सकता है। प्रथम अर्थ में, यह उस भाग या भूमि को परिभाषित करता है, जो प्रशासन में निष्पादित की जानी है। दूसरे अर्थ में यह उस भूमिका के निर्वहन के दायित्व को निरूपित करता है। दोनो अर्थ एक दूसरे के व्युत्क्रम है। अधिकांश परिस्थितियों में प्रत्यायोजित कार्य की भूमिका या भाग की परिभाषा तथा उस कार्य के निर्वहन के दायित्व में बहुत बारीक अन्तर है। निर्वहन का दायित्व इन दोनों संकल्पनाओं को एक अपृथकनीय रूप से सम्बन्धित रूप में देखने हेतु अधिक महत्वपूर्ण है। इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुये कई विचारकों ने बताया कि दायित्व को प्रत्यायोजित नहीं किया जा सकता, किस प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व सह–अस्तित्व लिये हुए होते है, तथा प्राधिकार के ढॉचे के अन्तर्गत उत्तर दायित्व अथवा कर्तव्य का प्रत्यायोजन किया जा सकता है। वस्तुतः यह जवाब देयता (दायित्व) हैं जिसे प्रत्यायोजित नहीं किया जा सकता। अतः उत्तरदायित्व तथा जवाबदेही के मध्य अन्तर स्पष्ट करना आवश्यक हैं ।

उत्तर दायित्व अथवा कर्तव्य से तात्पर्य उन कार्यों से है जो एक व्यक्ति को निर्धारित मानकों के अनुसार निभाने हेतु अधिन्यासित (सौंपे/दिये) किये गये है। यह उसे इस संदर्भ में कोई दिक्कत नहीं पेश आनी चाहिए क्योंकि उसका वरिष्ठ (उच्चस्थ) है। वह उस कार्य को प्रत्यायोजित नहीं करेगा। जो उसका अधीनस्थ नहीं कर सकेगा वस्तुतः उसके द्वारा कार्यो का विभाजन एवं उप–विभाजन इस प्रकार किया जाता है कि प्रत्येक अधीनस्थ अपने पसंद का कार्य प्राप्त कर सकें। अतः अधीनस्थों द्वारा इन्हें सौंपे गये कार्यों के सम्बन्ध में किसी आपत्ति का आधार नहीं बनता जब तक कि उच्चस्थ जान–बूझकर एक संकेतिक रूप में यह न करें। यदि वह ऐसा करता है, तो इस स्थिति में अन्य उपचार हैं।

जब भी उच्चस्थ अपने अधीनस्थ को कोई कार्य प्रत्यायोजित करता है, यह विक्षित (अव्यक्त) है कि वह अपने उत्तरदायित्व को भी प्रत्यायोजित करता हैं। इस प्रक्रिया में वह भले ही अपने अधीनस्थ कों उसे सौंपे गये कार्य हेतु जवाब देय बना सकता है, किन्तु अपने मुखिया के सम्मुख वह इस कार्य हेतु जवाबदेय होगा क्योंकि जवाबदेही (हिसाब देयता) को प्रत्यायोजित नहीं किया जा सकता।

प्रत्यायोजित प्राधिकार सौंपे गये उत्तर दायित्वों अथवा कर्तव्यों के अनुशंगिक होना चाहिए। अन्य शब्दों में प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व के मध्य संतुलन स्थापित होना चाहिए हालॉकि व्यवहारतः उत्तरदायित्व एवं प्राधिकार के मध्य संतुलन प्राप्त कर पाना अति दुरूह कार्य हैं।

**<u>मैक्ग्रेगर के अनुसार</u>** – व्यवसाय स्थल पर अधिकांश प्रबन्धक इस स्थिति में है, कि वे सभी चीजों पर नियंत्रण स्थापन नहीं कर सकते जो इनके द्वारा पाये जाने वाले परिणामों को प्रभावित करता है। अनियंत्रणीय घटकों के अन्तर्गत उपभोक्ताओं के वरीयता (पसंद) में अनापेक्षित परिवर्तन, श्रम–संघों के कार्य, सरकारी विधायन (नियम/कानून) तथा व्यापार चक्रो का उच्चावचन सम्मिलित हैं। इन समस्याओं की पहचान इस सिद्धान्त की उपयोगिता को न्यून या नष्ट नहीं करता हैं यदि एक प्रबन्धक समय के साथ चलता है तो वह अधीनस्थों के नियंत्रण के बाहर (परे) की अनदेखी घटनाओं हेतु प्रावधान (व्यवस्था) करेगा। कई घटक उच्चस्थ को पर्याप्त मात्रा में प्राधिकार के प्रत्यायोजन से रोकते है। नियंत्रण खोने का भय एक प्रमुख

घटक है। वास्तविक रूप में अथवा पूर्ण धारण के अनुसार योग्य अधीनस्थों का अभाव प्रत्यायोजन कौशल का अभाव तथा किसी एक की आपरिहार्यता को बढ़ाना ऐसे अन्य कारण है, जो प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व को मध्य असंतुलन के कारण होते है। एक प्रभावी प्रबन्धक आवश्यक अधिकार प्रत्यायोजन की इच्छा रखता है, क्योंकि इसके द्वारा वह ऐच्छिक उद्देश्य की प्राप्ति कर सकता है। उत्तरदायित्व को स्थानान्तरिक या प्रत्यायोजित नहीं किया जा सकता हैं । उच्चस्थत अधिकारी किसी कार्य विशेषकों सम्पादित करने हेतु प्राधिकारी को प्रत्यायोजित कर सकता है । किन्तु वह इस अर्थ में कि एक बार जैसे कर्तव्य सौंपे गये वह अपने दायित्वों से मुक्त हो जायेगा अधीनस्थकों को उत्तरदायित्व का प्रत्यायोजन नहीं किया जा सकता। कार्यों का प्रत्यायोजन उच्चस्थ को उसके अधीनस्थकों के प्रभावी निष्पादन के उसके उत्तरदायित्व से छुठकारा नहीं दिलाता हैं अन्य शब्दों में हम कह सकते है कि प्रत्यायोजन में विभाजित है – (a) परिचालन उत्तरदयित्व, (b) अंतिम उत्तरदायित्व।

अधीनस्थ कार्य हेतु महज परिचालन उत्तरदायित्व रखता है, जबकि वरिष्ठ (उच्चस्थ) कार्य होने का अन्तिम उत्तरदायित्व रखता है। यदि अधीनस्थ कार्य में असफल होता है। (परिचालन उत्तरदायित्व के पालन में) वरिष्ठ (उच्चस्थ) इस असफलता हेतु उत्तरदायीं होगा (अन्तिम (सर्वोच्च) उत्तरदायित्व)। अन्तिम उत्तरदयित्व को स्थानान्तरित या न्यून नहीं किया जा सकता। यह समझाने हेतु न्यूमन उस व्यक्ति का उदाहरण देते है, जों बैंक से ऋण लेता है तथा अपने पुत्र से परिवर्तित करता है। उसका अपने पुत्र के साथ यह अंतरण (लेन–देन) किसी भी प्रकार से उसके बैंक का पैसा चुकाने उसके उत्तरदायित्व को न्यून नहीं करता है।

उत्तरदायित्व विशिष्ट अथवा निरन्तर हो सकता है। यह विशिष्ट अथवा निरन्तर हो सकता हैं, यह विशिष्ट तब होता है ऋण अधीनस्थ द्वारा सम्पन्न (खारिज) कर दिये जाने पर यह दोबारा उत्पन्न नहीं होता। इस प्रकार एक परामर्शक का उत्तरदायित्व विशिष्ट होता है। कार्य की पूर्णता के साथ यह समाप्त हो जाता है। हालॉकि फोरमैन का उत्तरदायित्व निरन्तर प्रकृति का होता है।

**6.3.3 जवाबदेही (उत्तर देयता)** – जवाबदेही प्राधिकार का तार्किक व्युत्पनन है। जब एक अधीनस्थकों को पूर्ण करने की आवश्यकता प्राधिकारिणी के साथ कोई सौंपा जाता है, तो मूल–भूल संगठन सम्बन्ध के अन्तिम चरण में अधीनस्थ परिणामों के लिये उत्तरदायीं होता हैं। अन्य शब्दों में जब अधीनस्थ प्राधिकारी के उचित प्रयोग के द्वारा किसी कार्य को पूर्ण करने का दायित्व लेता है, तो सौंपे गये उत्तर दायित्व के निर्वाह हेतु जवाबदेह होता है।

जवाबदेही उच्चस्थ द्वारा स्थापित निष्पादन मानकों के पदों में उत्तरदायित्व को पूर्ण करके तथा प्राधिकारों का प्रयोग करने का दायित्व है। जवाबदेही का सृजन एक कार्य विशेष को पूर्ण करने हेतु अधीनस्थ को स्वीकृत प्राधिकार के औचित्य को सिद्ध करने की प्रक्रिया हैं इस प्रक्रिया को प्रभावी बनाने हेतु कार्य सौंपे जाने से पूर्व निष्पादन मानकों का निर्धारण कर लेना चाहिये तथा अधीनस्थ द्वारा इसे स्वीकार भी कर लेना चाहिए। यह प्रबन्ध के एक महत्वपूर्ण (प्रमुख) सिद्धान्त (एकल जवाबदेही) से अधिशाषित होता है। एक व्यक्ति महज एक तत्कालिक वरिष्ठ के प्रति जवाबदेही होना चाहिए अन्य किसी के प्रति नहीं।

जवाबदेही की मात्रा (सीमा) प्राधिकार तथा उत्तरदायित्व के प्रत्यायोजन (सीमा) पर निर्भर करती हैं एक व्यक्ति उन कार्यो हेतु जवाब देह नहीं हो सकता जो कि उसके उच्चस्थ द्वारा उसकों आन्तरिक (सौंपे) नहीं किये गये है। उदाहरणार्थ यदि उत्पादन प्रबन्धक को किसी उत्पादक की निश्चित इकाईयों के उत्पादन का दायित्व और प्राधिकार दिया गया है तथा कार्मिक विभाग को कार्य–शक्ति (कार्य बल) के विकास का प्राधिकार एवं दायित्व सौंपा गया है तो उत्पादन प्रबन्धक कार्य–शक्ति के विकास हेतु जवाबदेही नहीं बनाया जा सकता है।

''जवाबदेही उत्तरदायित्व एवं प्राधिकार में सलग्न कार्य की गुणवत्ता एवं भार के कार्यो के साथ सृजित होती है।''

**6.3.4 जवाबदेही प्रत्यायोजित नहीं की जा सकती**

हालॉकि जवाबदेही कार्य के सौंपे जाने तथा प्राधिकार प्रदान करने से उत्पन्न होती है किन्तु जवाबदेही को अपने आप में प्रत्यायोजित नहीं किया जा सकता । उघमी उत्तरदायित्व का त्याग नहीं कर सकते। वे अपने उच्चस्थ के प्रति उन कार्यों के लिये जवाबदेही होगें जो भविष्य में प्रत्यायोजित होते है। चूॅकि जवाबदेही प्रत्यायोजित नहीं हो सकती अतः संगठन के पदानुसार में उच्च स्थान पर आसीन व्यक्तियों की जवाबदेही उनके अधीनस्थों के कार्यों हे शर्त रहित होती है।

**प्रत्यायोजन के प्रकार–**

प्रत्यायोजन के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित है।

**1. सामान्य एवं विशिष्ट प्रत्यायोजन –**

**(a) सामान्य प्रत्यायोजन** – इस प्रकार के प्रत्यायोजन में सामान्य प्रबन्धकीय कार्यो के नियोजन, सांगठनिकरण, निर्देशन इत्यदि के निष्पादन हेतु प्राधिकार प्रदान किया जाता हैं अधीनस्थ प्रबन्धक के इन कार्यो को करता हैं तथा इस उत्तरदायित्व की पूर्ति हेतु आवश्यक प्राधिकारों का लाभ उठाता है। मुख्य अधिशाषी समय–समय पर अपने अधीनस्थों के कार्यो का नियंन्त्रण एवं उनका मार्ग दर्शन करता है।

**(b) विशिष्ट प्रत्यायोजन** – विशिष्ट प्रत्यायोजन किसी कार्य विशेष अथवा सौंपे गये कार्य से सम्बन्धित हैं । उत्पादन प्रबन्धक को उत्पादन कार्य के सम्पादन हेतु प्रत्यायोजित प्राधिकार विशिष्ट प्रत्यायोजन कहलाता है। विभिन्न विभागीय प्रबन्धक अपने विभागीय कर्तव्यों के निर्वहन हेतु विशिष्ट प्राधिकार प्राप्त करते है।

**2. औपचारिक एवं अनौपचारिक प्रत्यायोजन –**

**(a) औपचारिक प्रत्यायोजन** – औपचारिक प्रत्यायोजन को सांगठनिक संरचना का एक भाग माना गया है। जब किसी व्यक्ति को एक कार्य सौंपा जाता है, उसे आवश्यक प्राधिकार भी प्रदान किये जाते है। यह प्रत्यायोजन संगठन की सामान्य कार्य–प्राणाली का भाग होता है। प्रत्येक व्यक्ति को इसके कर्तव्य के अनुसार स्वमेव (स्वचालित ढंग से) प्राधिकार दिया जाता है। जब उत्पादन प्रबन्धक उत्पादन बढ़ाने की शक्ति प्राप्त करता है, तो यह औपचारिक प्राधिकार प्रत्यायोजन है।

**(b) अनौपचारिक प्रत्यायोजन** – प्रत्यायोजन का यह प्रकार पद (स्थिति) के कारण नहीं वरन् विषयों की परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होता है। यह हो सकता है,

कि एक व्यक्ति किसी कार्य को इसलिए नहीं लेता है कि उसे सौंपा गया है वरन् इसलिये क्योंकि वह उसके सामान्य कार्यों के करने हेतु आवश्यक है। इसलिए वह इसका बीड़ा उठाता है।

3. **लिखित अथवा अलिखित प्रत्यायोजन** –

**(a) लिखित प्रत्यायोजन** – लिखित प्रत्यायोजन सामान्यतः पत्रों, निर्देशों परिपत्रों के द्वारा दिया जाता है। जो भी प्रत्यायोजित किया जाता है, वह लिखित होना चाहिए।

**(b) अलिखित प्रत्यायोजन** – अलिखित प्रत्यायोजन सम्बन्धित व्यक्ति को किसी विशेष ढंग से नहीं वरन परम्पराओं प्रथा के द्वारा किया जाता है तथा अन्य पक्ष को उसके अनुसार कार्य करना होता है।

4. **अधोगामी अथवा उर्ध्वगामी प्रत्यावेदन** –

**(a) अधोगामी प्रत्यायोजन** – यह प्रत्यायोजन का सामान्य प्रकार है तथा प्रत्येक प्रकार के कार्यकारी संगठनों (उपक्रमों) में प्रयुक्त होता हैं यह उच्चस्व द्वारा अपने तत्कालिक अधीनस्थ को किया गया प्रत्यायोजन होता है।

**(b) उर्ध्वगामी प्रत्यायोजन** – इस प्रकार के प्रत्यायोजन में अधीनस्थ अपने कुछ कार्यों को अपने उच्चस्थ अधिकारी को प्रत्यायोजित करता है। यह एक विशेष (असामान्य) प्रकार का प्रत्यायोजन होता है तथा इसके उदाहरण का प्रत्यायोजन होता है तथा इसके उदाहरण अति दुर्लभ होते हैं।

## 6.4 प्रत्यायोजन के सिद्धान्त

प्राधिकार के प्रभावी प्रत्यायोजन हेतु निम्नलिखित सिद्धान्त आवश्यक है –

**(i) उचित नियोजन होना चाहिए** – यदि प्रत्यायोजन किया गया है, तो अधिशाषी को यह अवश्य नियोजित करना चाहिए कि इसे क्यो प्राप्त किया जाना हैं इसे प्राधिकार के प्रत्यायोजन द्वारा क्या उद्देश्य प्राप्त किये जाने है, तथा किन कार्यों को किया जाना है उनकों स्पष्टतः परिभाषित करना चाहिए। कार्यो को इस प्रकार अभिकल्पित तथा विभाजित किया जाना चाहिए जिससे कि उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकें। अधीनस्थ को यह भॅलि–भॉति समझना चाहिए कि उन्हें कार्यक्रम निर्वहन करना हैं तथा प्रत्यायोजक का उनसे क्या अपेक्षा है।

**(ii) प्रत्यायोजन हेतु उपयुक्त अधीनस्थ का चयन** – अधीनस्थ का चयन कार्य जिसे कि पूर्ण किया जाना है के आलोक में होना चाहिए। सम्बन्धित व्यक्ति की योग्यता प्राधिकार के प्रत्यायोजन की प्रकृति को प्रभावित कर सकती हैं यह स्टाफिंग के प्रबन्धकीय कार्य का उद्देश्य है जिसे सावधानी पूर्वक विचारित किया जाना चाहिए।

**(iii) प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व की समानता को बनाये रखना** – प्राधिकार का प्रत्यायोजन उत्तरदायित्व की सुसंगतता में होना चाहिए। यह मान्यता है कि यदि अधीनस्त कतिपय कर्तव्यों के निर्वहन/निष्पादन हेतु उत्तरदायी है, यह उचित है कि उन्हें इन कर्तव्यों को पूर्ण करने हेतु आवश्यक प्राधिकार सौंपे जाये। यद्यपि तकनीकी रूप से यह अनुपयुत होगा (सटीक न होना) क्योंकि अधिशाषी की समानता के प्रश्नों पर बहुत जोर (बल देना) दिया जाये क्योंकि अधिशाषी इसे बिना कतिपय प्राधिकार के करते है, कर्तव्य एवं प्रत्यायोजित अधिकार के मध्य पर्याप्त सह–सम्बन्ध होना चाहिए।

**(iv) आदेश की एकता को सुनिश्चित किया जाना चाहिए** – यह हेनरी फॅयोल द्वारा प्रतिपादित संगठन का एक सामान्य सिद्धान्त है जो इस पर जोर देता है कि एक अधीनस्थ को सिर्फ एक स्वामी होना चाहिए जिसके प्रति वह जवाबदेह होना चाहिए, जिससे कि भ्रम व संघर्ष से बचा जा सके। निश्चित ही व्यवहार में इस सिद्धान्त का पालन कर पाना सम्भव नही है।

**(v) पर्याप्त सम्प्रेषण को बनाये रखना** – उच्चस्व एवं अधीनस्थ के मध्य सूचनाओं का मुक्त एवं सतत प्रवाह होना चाहिए जिससे कि अधीनस्थ को उपयोगी सूचकाओं से सुसज्जित किया जा सके ताकि उसको निर्णयन प्रक्रिया में सहायक प्राप्त हो तथा वह उसे प्रत्यायोजित प्राधिकार का उचित निर्वहन कर सके। योजना में परिवर्तित हो सकती है तथा परिवर्तित योजनाओं के आलोक में ही निर्णय लिये जाने चाहिए।

**(vi) प्रभावी प्रत्यायोजन को पुरस्कार** – प्रभावी प्रत्यायोजन तथा प्राधिकार का सफल अनुमार्गण अवश्य ही पुरस्कृत होना चाहिए ऐसा करना भविष्य में प्राधिकार के प्रत्यायोजन तथा प्राधिकार के प्रभावी अनुमार्गण हेतु एक उचित वातावरणीय जलवायू प्रदान करेगा।

**(vii) विश्वास के वातावरण की स्थापना** – जिस अधीनस्थ को प्राधिकार का प्रत्यायोजन किया गया है उसे भय मुक्त होना चाहिए तथा यह विश्वास रखना चाहिए कि प्राधिकार उसके सजा का कारण नहीं बनेगा वरन् उसके स्व–विकास एवं वृद्धि हेतु एक अवसर है।

**(viii) प्रत्यायोजन में मजबूत विश्वास स्थापन** – सफल प्रत्यायोजन हेतु यह आवश्यक है कि प्रत्यायोजक (जो प्राधिकार का प्रत्यायोजन कर रहा है) इस प्रत्यायोजन की आवश्यकता एवं लाभ के प्रति सहमत होना चाहिए। उसे अपने प्रति सहमत होना चाहिए। उसे अपने अधीनस्थकों को गलती करने हेतु अनुमति देनी चाहिए तथपि यदि वही गलती बार–बार की जाती है तो वह कठोर हो सकता है।

**(ix) कार्मिकों का उचित रूप से चयन एवं प्रशिक्षण** – विभिन्न कार्यो हेतु कार्मिकों का चयन उचित (निष्पक्ष) एवं न्यायपूर्ण होना चाहिए। यह स्वैच्छिक नहीं वरन कतिपय सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिए। केवल योग्य (उचित) व्यक्तियों को ही उचित स्थान पर पद–स्थानान्तरित किया जाना चाहिए। चयनित व्यक्तियों को अपने कार्य (सौंपे गये) को कुशलता पूर्व धारण करने हेतु सशक्त (योग्य) बनाने के लिये पर्याप्त प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए। उचित चयन एवं प्रशिक्षण कर्मचारियों के आत्म–विश्वास तथा आत्मबल (मनोबल) की वृद्धि में सहायता करता है।

**(x) नियंत्रण की उचित तकनीके विकसित की जानी चाहिए** – एक अच्छे संगठनों में नियंत्रण की उचित तकनीके विकसित की जानी चाहिए तथा मानकों के सापेक्ष बड़े विचलनों को रोका जाना चाहिए। अधीनस्थ के दैनिक कार्यो में हस्तक्षेप नहीं होना चाहए।

## 6.5 प्रत्यायोजन प्रक्रिया के विभिन्न चरण

निम्नलिखित चरण प्रत्यायोजन प्रक्रिया में महत्वपूर्ण है –

1. प्रत्यायोजन में अपने अधीनस्थों से अपेक्षित परिणामों को परिभाषित किया जाना चाहिए,

2. कर्तव्यों को अधीनस्थों की योग्यता अनुभव तथा तत्परता (उपयुक्ता) के आधार पर ही सौंपे जाना चाहिए। ये कार्य या कार्यो के समुच्चय जो कि अधीनस्थ द्वारा निष्पादित होते है अथवा उनके (अधीनस्थों) कार्यो से अपेक्षित परिणामों के पदों में वर्णित किये जा सकते है।

   **उदाहरणार्थ** – विक्रयकर्ता को कितना विक्रय लक्ष्य प्राप्त करना है ?

   यहॉ यह श्रेष्टतर होगा कि कर्तव्यों को अपेक्षित परिणामों के पदों में सौंपा जाये क्योकि अधीनस्थ अग्रिम रूप से ही यह जानता है कि उसका निष्पादन किन पदों में मूल्यांकित अभिनिश्चियन किया जायेगा जब उनके कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का निर्धारण किया जायेगा । तब प्रत्यायोजन के लिए यह सुनिश्चित आवश्यक है कि अधीनस्थ उसके द्वारा सौंपे गये दायित्व को भली भॉति समझे अन्यथा प्रत्यायोजन अर्थहीन एवं अप्रभावी हो जायेगा।

3. **अधीनस्थ को पर्याप्त प्राधिकार अवश्य प्रदान किया जाना चाहिए**

   प्रत्येक व्यक्ति विशेष को प्रत्यायोजित किये जाने वाले प्राधिकार को अग्रिम में (पूर्व में) ही निर्धारित कर ली जाती है। प्रत्यायोजन अधीनस्थ को सीमित क्षेत्र के अन्तर्गत विशेष ढंग से कार्य करने का अधिकार प्रदान करता है यह निश्चित करता है, कि कौन से कार्य किये जा सकते है, और कौन से कार्य नहीं। उचित समय पर आवश्यक पर्याप्त प्राधिकार अधीनस्थ को न प्रदान करने से अपेक्षित परिणाम नहीं प्राप्त हो पायेगा।

   **उदाहरणार्थ** – कम्पनी के उत्पादों की बिक्री बढ़ाने के दायित्व से भारित एक विक्रय प्रबन्धक को दक्ष विक्रय कर्ताओं को नियुक्त करने, मजदूरी एवं प्रेरणा प्रदान करने, छूट देने (विशेष सीमाओं के अन्तर्गत) के प्राधिकार भी प्रदान किये जाने चाहिए।

4. **अधीनस्थ सौंपे गये कार्य के अपेक्षित परिणाम देने चाहिए**

   अधीनस्थों के लिये यह बाध्यकारी (अनिवार्य) है कि वे उन्हें सौंपे गये कार्य से सम्बन्धित संतोषजनक निष्पादन दे। वे प्रत्यायोजित प्राधिकार एवं सौंपे गये कार्य के निष्पादन हेतु जवाबदेह होते है। जवाबदेही बिना प्राधिकार का दुरूपयोग हो सकता है, इसी प्रकार प्राधिकार बिना जवाबदेही अधीनस्थ को कुण्ठित कर सकती है।

   जवाबदेही की मात्रा (सीमा) प्रत्यायोजित प्राधिकार एवं उत्तरदायी की मात्रा पर निर्भर करती हैं अधीनस्थ उन कार्यों (दायित्वों) के लिए उत्तरदायीं (जवाबदेह) नहीं हो सकता जो उसे नहीं सौंपे गये हो वह केवल अपने तात्कालिक वरिष्ठ के प्रति जवाबदेह होता है।

5. **निष्पादन का उचित मूल्यांकन अवश्य ही किया जाना चाहिए**

   अंततः प्रत्यायोजित (प्राधिकार प्राप्त) अधीनस्थ के निष्पादन की जॉच एवं मूल्यांकन हेतु सूचना एवं नियंत्रण प्रणली अवश्य ही स्थापित की जानी चाहिए। कर्तव्य प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व, प्राधिकार प्रक्रिया के तीन अंर्त सम्बन्धित चरण है। इस सन्दर्भ में

**H.W. NCW Man के शब्दों में** ''ये तीन प्राधिकार के अपरिहार्य गुण एक तिपाये मेज की भॉति है, जिनमें प्रत्येक पूर्णतः खड़ा होने के लिए एक दूसरे पर निर्भर है, तथा कोई भी अकेला खड़ा नहीं हो सकता'' क्या प्रत्यायोजित किया जाना है ? तथा

कब प्रत्यायोजित किया जाना है ? ये दो चतुराईपूर्ण प्रश्न है, जिनका समाधान (उत्तर) प्रत्यायोजित को स्वयं को संगठन के ढॉचे के भीतर प्रदान करना होगा।

**लुईस ए एलेन के अनुसार** – प्रत्यायोजन के दौरान अधिशाषी निम्नलिखित नियमों का पालन कर सकता है।

1. प्राप्त किये जाने वाले लक्ष्यों की स्थापना।
2. अधीनस्थ द्वारा उपयोग किये जाने वाले प्राधिकार को परिभाषित व वर्णित करना तथा वह किन उत्तरदायित्वों को वहन करेगा उसका वर्णन करना।
3. अधीनस्थ कों अभिप्रेरित करना तथा उसे पर्याप्त मार्ग दर्शन प्रदान करना। यदि आवश्यकता महसूस हो तो प्रत्यायोजन के पूर्व अधीनस्थ को पर्याप्त एवं उचित प्रशिक्षण प्रदान करना।
4. कार्य समाप्त करने हेतु कहना। इसी बीच कार्य विधि में अधीनस्थ को किसी सहायता की आवश्यकता पड़ती है तो प्रत्यायोजक स्वयं या ऐसे किसी व्यक्ति के माध्यम से जो उस कार्य का ज्ञान रखता हो, अधीनस्थ की सहायता करनी चाहिए।
5. पर्याप्त नियंत्रण स्थापना जिससे कि पर्यवेक्षण एवं मार्गदर्शन का कार्य हो सके।

## 6.6 प्रत्यायोजन के लाभ

प्रत्यायोजन के लाभ निम्नलिखित है।

**(i) समय के अपव्यय (बर्बादी) को रोकता है।** वर्तमान में प्रबन्ध का कार्य जटिल हो गया है। सत्र प्रबन्धक को अपने दैनन्दिन कार्य में कई प्रकार के कार्यो का सम्पादन करना पड़ता है तथा यह सम्भव नहीं कि वह प्रत्येक कार्य को उचित एवं आवश्यक ध्यान दे सकें। प्रत्यायोजन इस सन्दर्भ में प्रबन्धक की सहायता करता है क्योंकि इसके द्वारा वह अल्प महत्व के कार्य को अपने कनिष्ठों को स्थानान्तरित कर स्वयं प्रमुख एवं गम्भीर मामलों पर ध्यान केन्द्रि कर सकता है।

**(ii) नव–प्रवेशी (पद पर नये नियुक्त) के प्रशिक्षण में सहायता करता है** – निम्न इकाई जो उच्च–प्राधिकारी दायर प्रत्यायोजित प्राधिकारों का प्रयोग कर सौंपे गये कार्यो का निर्वहन करता है वह स्वतः स्फूर्त ढंग से अपनी भावी जिम्मेदारियों को महसूस करता है। वे उन उच्च स्तर के कार्यो के प्रति जागरूक होते है जहॉ वे पदोन्नत हो सकते है। प्रत्यायोजन संगठन के भीतर प्रबन्धकीय कार्मिकों के विकास में भी सहायता करता है।

**(iii) कार्य–अधिक्य को रोकता है** – प्रत्यायोजन कतिपय उत्तरदायित्वों एवं कर्तव्यों को प्रबन्धक के कंधों से स्थानान्तरित कर के जिन अधीनस्थें को प्राधिकार का प्रत्यायोजन किया जा रहा हैं उनके उपर आरोपित कर देता है।

**बीच के शब्दों में** – एक कार्य को बोझ से भरा प्रबन्धक जिसे प्रत्यायोजन की कला आती हो एक ही समय में अपने कार्याधिक्य के बोझ को कम करने अपने अधीनस्थों (आदमियों) की दक्षता बढ़ाने तथा अपनी इकाई प्राप्ति स्तर को ऊॅचा करने (उठाने) में सक्षम (समर्थ) होता है।

**(iv) उत्तरदायित्व की भावना को विकसित करता है तथा बढ़ाता है** – प्रत्यायोजन अधीनस्थ कार्मिकों के भीतर उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न करता है।

यह उनकी कार्य–क्षमता को बढ़ाता है तथा उनकी अधिचिन्हित क्षमताओं को बढ़ाने में सहायक होता है जो प्रबन्ध के लिये उपयोगी हो सकता है।

प्रत्यायोजन उच्च स्तर के उन सभी कार्यो की उपेक्षा करता है जो किसी भी प्रकार से निम्न स्तर की इकाई को सौंपे गये प्राधिकार को खतरे में डाल सकते है।

**(v) विलम्ब को रोकता है** – प्रत्यायोजन समय पर तथा सटीक निर्णय लेने में सहायता करता है निम्न स्तर पर कार्यरत कर्मचारी प्रत्योजित होने पर (प्रत्यायोजन के द्वारा प्राधिकार प्राप्त करने के उपरान्त) तत्परता से कार्य करता है, तथा संगठन की प्रभावी ढ़ंग से तथा कुशलता से सेवा करता है।

## 6.7 प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व का सम्बन्ध

प्रत्येक व्यवसायिक इकाई में उसके कुशल एवं सरल चालन हेतु आंतरिक संगठन आवश्यक है। आंतरिक संगठन के अन्तर्गत कर्तव्यों का निर्धारण किया जाता है तथा इन्हें कर्मचारियों के मध्य वितरित किया जाता है। समस्त गतिविधियॉ संयुग्मित एवं सम्बन्धित होती है। प्राधिकार की रेखा निर्धारित होना चाहिए तथा किसी भी संगठन एवं प्रबन्ध के लिए एक सुविख्यात (मान्यता प्राप्त/सर्वमान्य) सिद्धान्त अपनाया जाना चाहिए।

किसी उपक्रम के आंतरिक संगठन में विभिन्न कार्मिकों के मध्य कर्तव्यों का उचित अधिन्यास (सौंपा जाना) होना चाहिए। इसका अर्थ यह कि कतिपय व्यक्तियों द्वारा कार्य सौंपा जाना चाहिए तथा अन्य के द्वारा वे कार्य सम्पादित (निष्पादित) किये जाने चाहिए। प्रथम प्रकार के व्यक्ति प्राधिकार धारी (प्राधिकारी) होते है तथा पश्चात् वाले उनके अधीनस्थ होते है। विभिन्न समूहों एवं व्यक्तियों के मध्य उत्तरदायित्व एवं प्राधिकार उचित रूप से निर्धारित होनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति का पद (स्थिति) निश्चित होनी चाहिए चाहे वह व्यक्ति प्राधिकारी हो अथवा अधीनस्थ की स्थिति (पद) में हो। यह कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित सिद्धान्तों को पालन किया जाना चाहिए। जिस पद से जितना अधिक उत्तरदायित्व जुड़ा होगा उस पद को धारण करने वाला व्यक्ति पद सोपान के क्रम में उतना ही उच्च व्यक्ति (स्थान) धारण करेगा। अतः यह कहा जा सकता है कि उत्तरदायित्व के साथ प्राधिकार अवश्य होना चाहिए।

जब कर्तव्य सौंपे (आवंटित) जाते है तो दो प्रकार कर्मचारी होते है, कुछ प्राधिकार धारण करते है तथा कुछ उत्तरदायित्व धारण करते है। प्राधिकारी उच्च पदासीन होते है, जबकि अन्य अधीनस्थ पदों पर पदारूढ़ होते है। प्राधिकारी निर्णयों को लेने तथा अधीनस्थों को इन निर्णयों के पालन करने का आदेश देने से सम्बन्धित है। यह सर्वोच्च समन्वयकारी शक्ति है तथा प्रबन्धकीय काय्र के लिए अति महत्वपूर्ण है। उत्तरदायित्व किसी अधीनस्थ के दायित्वों से सम्बन्धित है। प्रत्येक अधीनस्थ को उसे सौंपे गये कार्य को पूरा करना होता है दायित्व प्राधिकार का सॉर है। यह उच्चस्थ–अधीनस्थ सम्बन्ध से उत्पन्न होता है। इसका अर्थ (औचित्य) तभी है जब यह व्यक्ति पर आरोपित (लागू) हो ।

प्राधिकार उच्चस्थ से अधीनस्थ को प्रवाहित होता है। प्रत्येक प्रबन्धक यह पाता है (देखता/समझता) है कि उसके आदेश अनुनय द्वारा उत्पीड़न द्वारा या सामाजिक, आर्थिक प्रतिबंधों द्वारा क्रियान्वित किये जाते है। अनुनय सर्वश्रेष्ट माध्यम है। अन्यथा कार्य सफलता पूर्वक नहीं पूर्ण किया जा सकेगा। उत्तरदायित्व

को प्रत्यायोजित नहीं किया जा सकता किन्तु प्राधिकार को प्रत्यायोजित किया जा सकता है।

जब 'प्राधिकार' एवं 'अधीनस्थता' शब्दों का प्रयोग किया जाता है। तो यह अधीनस्थों के मस्तिष्क में श्रेष्ठता (उच्चस्थ स्थिति) या हीनता का भाव सृजित करने वाला नहीं होना चाहिए। प्राधिकार किसी एक अथवा कुछ व्यक्तियों में संकेन्द्रिय नहीं होना चाहिए। हालॉकि यह प्रतीत होता है कि प्राधिकार उपर से नीचे की ओर प्रवाहित होता है किन्तु ऐसा वास्तव में नहीं होता है। आदेशों का अव्यक्तिकरण होना चाहिए। यह समस्त कर्मचारियों के मध्य श्रेष्ठ औद्योगिक सम्बन्ध के निर्माण में सहायक होता है।

प्रबन्धक साहित्य में उत्तरदायित्व एक प्रमुख रूप से गलत ढंग से समझा गया शब्द हैं उत्तरदायित्व से उत्तरदायित्व धारण करने वाले व्यक्ति द्वारा उत्तरदायित्व का प्रत्यायोजन करने से सम्बन्धित है। व्यक्ति उत्तरदायित्व शब्द का प्रयोग कर्तव्य एक गतिविधि (कार्य) अथवा प्राधिकार के भिन्न अर्थो में भी करते हैं। वस्तुतः उत्तरदायित्व को उसे सौंपे गये कार्यो को पूर्ण करने के दायित्व के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

इस प्रकार दायित्व, उत्तरदायित्व सार (मूल तत्व) है। प्रायः उच्चस्थ–अधीनस्थ सम्बन्ध इस उत्तरदायित्व को बढ़ाता है क्योंकि उच्चस्थ आवश्यक विशेषीकृत सेवाओं की अपने अधीनस्थ से प्राप्ति हेतु उनको अपने प्राधिकार को सौंपता है। व्यवसाय की दशा में यह एक संविदा व्यवस्था का परिणाम होता है जिसके अन्तर्गत अधीनस्थ मौलिक पुरस्कारों (प्राप्तियों) के बदले कतिपय निश्चित सेवाओं के निष्पादन हेतु सहमत होता है। इस अर्थ में, प्राधिकार का प्रवाह उच्चस्थ से अधीनस्थ प्रबन्धक करें, जिससे कि दायित्व सौंपे गये है, प्रवाहित होती है तथा उत्तरदायित्व अधीनस्थ का दायित्व होता है कि वह सौंपे गये इन कार्यों को पूर्ण करें

## 6.8 प्राधिकार एवं जवाबदेही में अन्तर

'जवाबदेही' शब्द का प्रयाग प्रबन्ध क्षेत्र के कुछ लेखकों द्वारा अपने अधीनस्थों के द्वारा कर्तव्यों के उचित निर्वहन के प्रबन्धकों के उत्तरदायित्व को इंगित करने के लिए किया गया है। सेना (रक्षा विभाग) में जवाबदेही कर्तव्यों को इंगित करने तथा एक अधिकारी द्वारा अभिलेखों के सटीक रख–रखाव तथा लोक–सम्पत्ति एवं निधि के रख–रखाव हेतु प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार तीन शब्द प्राधिकार, उत्तरदायित्व तथा जवाबदेही, प्रबन्ध साहित्य में भिन्न–भिन्न भावों (अर्थो) में प्रयुक्त होते है। प्राधिकार का संकुचित अर्थ में प्रयोग कुछ करवाने की शक्ति, तथा उत्तरदायित्व का इस अर्थ में प्रयोग अपने उत्तरदायित्वों के निष्पादन (करने) में असफल होने का दायित्व के रूप में किया जा सकता है। इसी प्रकार जवाबदेही से अभिप्राय अपनी असफलता हेतु अपने स्वामी के प्रति जवाबदेह होना है। जवाबदेही अपने भाग (कर्तव्य का भाग) के पालन करने में असफलता अर्थात अपने दायित्वों का निर्वहन है। उत्तरदायित्वों के पालन हेतु प्रबन्धक को पर्याप्त प्राधिकार या शक्ति की आवश्यकता होती है।

## 6.9 उत्तरदायित्व एवं प्रत्यायोजन में अन्तर

प्रबन्धक अपने प्राधिकार का प्रत्यायोजन अपने अधीनस्थ को कर सकता है किन्तु उत्तरदायित्व का प्रत्यायोजन नहीं किया जा सकता। प्रबन्धक अपने कार्यो (कर्तव्यों) के निर्वहन हेतु उत्तरदायित्व होता है भले ही वह उसे प्रत्यायोजित कर सकता हो तथा अधीनस्थ भी कार्य को पूर्ण करने हेतु उच्चस्थ द्वारा प्राप्त प्राधिकार के कुछ भाग को प्रत्यायोजन कर सकता हैं अतः प्रत्यायोजन प्रबन्धक को अपने कार्यो (कर्तव्यों) के निष्पादन के उत्तरदायित्व से छुटकारा नहीं दिलाता है। संक्षेप में कोई प्रबन्धक अपने उत्तरदायित्व को अपने अधीनस्थों को स्थानान्तरित नहीं कर सकता।

**उदाहरणार्थ** – संचालक मण्डल द्वारा नियुक्त प्रबन्ध निदेशक उधम के संचालन के अपने कुल (सम्पूर्ण) दायित्व से नहीं बच सकता। अतः इस अर्थ में उत्तरदायित्व को प्रत्यायोजित नहीं किया जा सकता। एक प्रबन्धक अपने को अपने उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं कर सकता यद्यपि वह अपने अधीनस्थों को प्राधिकार का प्रत्यायोजन कर सकता है एवं कार्यो को सौंप सकता है।

## 6.10 प्रत्यायोजन की कठिनाईयॉ

प्रत्यायोजन में मय पक्ष (पहलू) होता है जो 'क्या प्रत्यायोजित किया जाना चाहिए' तथा 'किसे प्रत्यायोजन करता है' के निर्णयन में प्रभावी भूमिका निभाता है। अधिशाषी निश्चिततः यह समझते (जानते) है कि एक बार प्राधिकार प्रत्यायोजित हो गया तो वे अपने अधीनस्थों पर अपनी पकड़ तथा परिचालन क्रियाओं पर अपना नियंत्रण खा देगें। परिचालन क्रियाओं पर से अपना नियंत्रण खो देंगें। यह एक प्राकृतिक तथ्य है कि अधिशाषी अधीनस्थों पर से पकड़ तथा संचालन कार्य पर से अपना नियंत्रण नहीं खोना चाहते हैं किन्तु प्रमुख मनोविज्ञान यह है कि अधिशाषी अपनी प्रकृति के कारण अपने अधीनस्थों पर विश्वास नहीं रखते हैं वे सोचते है कि अधीनस्थ उत्तरदायित्व को उठाने के योग्य नहीं है अतः प्रत्यायोजन का प्रश्न ही नहीं उठता है।

कभी–कभी अधिशाषी हीनता के मनोविकार (मनोविकृति) से पीड़ित होते है। वे अवश्य ही जानते है, कि भले ही वे एक पद धारण किये हुये है, किन्तु उनका ज्ञान और योग्यता आदर्श के अनुकूल नहीं है उनके अधीनस्थ भॅली–भॉति सुसजिज्जत है तथा वे इस कार्य को (सौंपे गये) अच्छी रीति से कर सकते है। कोई अधिशाषी प्रत्यायोजन नहीं करना चाहेगा यदि वह अनुभव करता हो कि उसके अधीनस्थ उसे मात दे सकते है। उपरोक्त विमर्श से हम इस निष्कर्ष पर पहुच सकते है कि तीन प्रकार के भय (आशंका) है जो प्रत्यायोजन को हतोत्साहित करते है, इस प्रकार प्रत्यायोजन में बाधा उत्पन्न करते है। ये भय निम्नलिखित है–

1. संचालन (परिचालन) पर से पकड़ एवं नियंत्रण खो देना।
2. जिसे वे प्राधिकार का प्रत्यायोजन कर सकते है उस अधीनस्थ का (द्वारा) बेहतर निष्पादन कर पाने का भय।
3. अधीनस्थ जिसे कि प्राधिकार का प्रत्यायोजन किया जा सकता है द्वारा बेहतर निष्पादन करने का भय।

**उपरोक्त कठिनाईयॉ निम्नलिखित से उत्पन्न होती है–**

1. परस्पर विश्वास की कमी।
2. समूह कार्य (दल कार्य) के वातावरण का न होना।
3. विचार एवं व्यवहार में स्वतंत्रता का न होना।

4. अनुचित एवं अस्पष्ट ढंग से प्राप्त किये जाने वाले लक्ष्यों को परिभाषित किया जाना।
5. विचारों एवं सुझावों का अंर्त–विनिमय न होना।
6. प्रबन्ध वातावरण का अनुकूल न होना।
7. भय एवं कुण्ठा की व्याप्ति।
8. अयोग्य व्यक्तियों के हाथों में अधिशाषी पदों का होना।

प्रत्यायोजन एक प्रमुख प्रबन्धकीय तकनीक है। प्रत्यायोजन को प्रोत्साहित करने हेतु प्रत्येक सम्भव कदम उठाया जाना चाहिए। यह अधीनस्थों के मध्य आत्मीयता की भावना का निर्माण करता है यह अधीनस्थों के व्यक्ति का विकास करता है तथा प्रबन्धकीय निष्पादन के मूल्यांकन में सहायता करता है। यह अधिशाषियों एवं उनके अधीनस्थों, दोनों के भीतर सुरक्षा की भावना को बढ़ाता है। प्रत्यायोजन के प्रोत्साहन हेतु अनुकूल प्रबन्ध वातावरण का निर्माण किया जाना चाहिए।

## 6.11 विकेन्द्रीकरण

विकेन्द्रीकरण शब्द को हम लोग द्वारा प्रायः राजनीतिक दलों तथा व्यवसायिक प्रबन्धकों के बारे में सुना गया है। उनमें से कई विकेन्द्रीकरण को रामबाण अथवा एक जादुई युक्ति के रूप में देखते है जो लाचार प्रबन्धक की क्षति पूर्ति करेगा, सहभागिता को बढ़ायेगा, दक्षता बढ़ायेगा, तथा उत्साह बढ़ायेगा। अधिकांश लोग स्पष्ट रूप से नहीं जानते कि विकेन्द्रीकरण है क्या तथा प्रायः संगठन अनुचित कारणों से विक्रेन्दीकरण को अपनाते है, तथा गलत ढंग से (गलत रूप से) इस पद को समझते एवं प्रयुक्त करते है।

<u>अर्नेष्ट डेल ने</u>– किसी संगठन में विकेन्दीयकरण की मात्रा (स्तर) को मापने हेतु चार मानक सुझावे है। वे कहते है कि जब विकेन्द्रीकरण अधिक होता है तब –

1. निम्न स्तर पर निर्णयों को लेने की संख्या अधिक होती है।
2. अधिक महत्वपूर्ण निर्णय निम्न स्तरों पर लिये जाते है।
3. उन क्षेत्रों की संख्या अधिक होती है जिसके निचले–स्तरों पर निर्णय लिये जा सकते है।
4. निम्न स्तरारें पर लिये जाने वाले निर्णयों पर अल्प व्यक्तियों से परामर्श किया जाता है तथा जॉच की आवश्यकता न्यून होती है।

बहुत से व्यक्ति विकेन्द्रीकरण को प्रत्यायोजन के समान ही इस अर्थ में समझते है कि यह सामान्य रूप से प्राधिकार को नीचे की ओर से अर्थात अधीनस्थों को प्रदान करना हैं किन्तु विकेन्द्रीकरण सामान्य प्रत्यायोजन से बहुत अधिक है। विकेन्द्रीकरण, संगठन एवं प्रबन्ध का दर्शन है,

जो निर्दिष्ट करता है कि चयनात्मक निर्धारण, संगठन में किन प्राधिकारों को नीचे की ओर (निम्न स्तर पर) देना है। प्रत्यायोजन द्वारा प्राधिकार प्राप्त अधीनस्थों को मार्ग दर्शित करने हेतु स्थायी योजनाओं (नीतियॉ ) को बनाना तथा चयनित किन्तु पर्याप्त नियंत्रण जो कि निष्पादन के अनुश्रवण हेतु आवश्यक हो, के क्रियान्वयन किस प्रकार हो।

इस प्रकार विकेन्द्रीकरण संगठन एवं प्रबन्ध का दर्शन है, जो नीतियों के निर्माण तथा चयनित किन्तु पर्याप्त नियंत्रण के द्वारा चयनित प्राधिकार के प्रत्यायोजन तथा प्राधिकार के संकेन्द्रण को सम्मिलित करता है।

**मैक्फारलैण्ड के अनुसार** – विकेन्द्रीकरण एक स्थिति है जिसमें आदेश देने का प्राधिकार तथा परिणामों के लिये अन्तिम उत्तरदायित्व उस दशा (स्तर/मात्रा) तक स्थानीकृत (स्थानीय स्तर/निकाय तक) करना जहॉ तक संगठन का कुशल (दक्ष) प्रबन्धन अनुमति प्रदान करता है।

**एलेन के अनुसार** – ''विकेन्द्रीकरण उन प्राधिकारों के अतिरिक्त जो केन्द्रीय बिन्दु पर ही किये जाने है। समस्त प्राधिकार को निम्न स्तर (निम्नतम स्तर) पर प्रत्यायोजित करने के प्रणालीकृत (व्यवस्थित) प्रयत्न से सम्बन्धित है।''

इस प्रकार विकेन्द्रीकरण से आशय कुछ प्राधिकारों (नियोजन, संगठन, निर्देशित एवं नियंत्रण हेतु) को उच्चस्थ स्तर पर आरक्षित करना तथा नैत्यिक निर्णयों को यथा सम्भव उस स्थान पर लिये जाने के लिए जहॉ कार्य होता है प्राधिकार के प्रत्यायोजन से है।

### 6.11.1 विकेन्द्रीकरण की आवश्यक विशेषताऍ –

विकेन्द्रीकरण की प्रमुख चारित्रक विशेषताऍ निम्नलिखित है –

**(a) विकेन्द्रीकरण, प्रत्यायोजन के सामान (प्रतिरूप) नहीं है** – विकेन्द्रीकरण प्रत्यायोजन से आगे (अधिक) का सिद्धान्त हैं प्रत्यायोजन अर्थात एक व्यक्ति से दूसरे को उत्तरदायित्व एवं प्राधिकार का अर्द्ध–स्थानान्तरण है जबकि विकेन्द्रीकरण से ऑशय सम्पूर्ण संगठन में प्राधिकरण को बिखेरने (फैलाने) से है। यह सम्पूर्ण उपक्रम (उधम) में प्राधिकारों का विसरण है। प्रत्यायोजन एक व्यक्ति से दूसरे तक होता है तथा यह प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है, विकेन्द्रीकरण तभी पूर्ण होता है जबकि समस्त अथवा अधिकांश व्यक्तियों को अधिकतम सम्भव प्रत्यायोजन कर दिया जाये। प्रत्यायोजन के अन्तर्गत नियंत्रण पूर्ण रूप से प्रत्यायोजन के पास रहता है, किन्तु विकेन्द्रीकण में उच्च प्रबन्ध न्यूनतम नियंत्रण कर सकता है तथा नियंत्रण प्राधिकार विभागीय प्रबन्धकों को प्रत्यायोजित कर देता है। यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि सम्पूर्ण विकेन्द्रीकरण सम्भव नहीं हो सकता या वांछनीय नहीं हो सकता किन्तु यह निश्चित ही संगठन में एक से अधिक स्तर को सम्मिलित करता है।

**(b) विकेन्द्रीकरण, प्रसार (प्रकीर्णन) से भिन्न है** –

विकेन्द्रीकरण प्रायः भौतिक सुविधाओं के पृथक्करण से भूमित होता है जोकि सत्य नहीं है । प्रकीर्णन (प्रसार) तब होता है जब सयंत्र भौतिक दूरियों के साथ (पर) विभिन्न स्थानों पर स्थित होते हैं। प्रसरित (प्रकीर्णित) संयत्रों एवं कार्यालयों में कार्य–निष्पादन आवश्यक रूप से विकेन्द्रीकरण नहीं होता विकेन्द्रीकरण सुविधाओं के पृथक्ककरण के बिना भी प्रवृत्त हो सकता (उत्पन्न हो) है तथा सुविधाये विकेन्द्रीकरण के बिना भी पृथक्कृत हो सकती है। एक कम्पनी पूर्ण विकेन्द्रीकृत हो सकती यद्यपि (जबकि) समस्त भौतिक सुविधाये तथा कर्मचारी एक ही भवन में स्थित हो। इसी प्रकार विकेन्द्रीकरण प्रकीर्णन के बगैर भी सम्भव है।

**(c) विकेन्द्रीकरण, संगठन का प्रकार नहीं है** –

कुछ व्यक्ति विश्वास करते है कि एक व्यक्ति कम्पनी अपने संगठनिक संरचना को परिवर्तित कर के विकेन्द्रीकृत कर सकती है, किन्तु यह सत्य नहीं है। विकेन्द्रीकरण, सांगठनिक संरचना में परिवर्तन के बिना भी किया जा सकता है, क्योकित यह प्राथमिक रूप से संगठन में, उद्योग में, व्यवस्थित (प्रणालीकृत) प्राधिकार के प्रत्यायोजन से सम्बन्धित है जिसमें बाजार अल्प–अनिश्चित है,

उत्पादन प्रक्रिया प्रौद्योगिक अल्प गतिशील है, सम्बनध अधिक स्थायी तथा और केन्द्रित होने की ओर अग्रसर है।

**6.11.2 विकेन्द्रीकरण की मात्रा का माप** –

किसी संगठन में विकेन्द्रीकरण कितना होना चाहिए इस सन्दर्भ में कोई कठोर/दृढ नियम नहीं है। निम्नलिखित मार्गदर्शक इस सन्दर्भ में उपयोगी सिद्ध हो सकते है कि किसी कम्पनी में विकेन्द्रीकरण की मात्रा क्या होनी चाहिए।

**(i) प्रबन्धकों पर आरोपित नियंत्रण जितना संकुचित होगा, उतना अधिक विकेन्द्रीकरण होगा** – इस प्रकार एक कम्पनी जिसमें प्रत्येक उत्पाद खण्ड प्रबन्धक को अपने निवेश पर अर्जित प्राप्ति के सम्बन्ध में वर्ष में एक या दो बार प्रतिवेदन देना पड़ता है । अधिक विकेन्द्रीत हैं वह खण्ड जिसमें प्रतिदिन के उत्पादन की विधि का, विपणन तथा कार्मिक निर्णयों का अनुश्रवण किया जाये वे अल्प विकेन्द्रीकृत होते है।

**(ii)** कम्पनी की नीतियों, प्रक्रियाओं एवं नियमों द्वारा प्रदत्त विशेषाधिकार की अधिक मात्रा अधिक विकेन्द्रीकरण स्थापित करते है।

**(iii)** कार्यो की संख्या के पदों में निर्णयों की अधिक चौड़ाई अर्थात अधिक विकेन्द्रीकरण इस प्रकार वह कम्पनी जिसमें खण्ड प्रबन्धक उत्पादन, विपणन एवं कार्मिक निर्णय लेने हेतु अधिकृत है अधिक विकेन्द्रीकृत है उस खण्ड प्रबन्धक की तुलना में जो अपनी कम्पनी में सिर्फ उत्पादन और कार्मिक निर्णय लेने हेतु अधिकृत हो।

**(iv)** निर्णय लेने के पूर्व उच्चस्थ द्वारा अधीनस्थ की कम जॉच/रोक अर्थात विकेन्द्रीकरण की अधिक मात्रा। इस प्रकार एक वह कम्पनी का जिसमें प्रबन्धक को अपने कार्यो (निर्णयों) को अपने उच्चस्थ से जॉच नहीं करानी पड़ती, वह अधिक विकेन्द्रीकृत कम्पनी है इसी प्रकार यदि किसी कम्पनी में प्रबन्धक को अपने अधिकांश निर्णयों को अपने उच्चस्थ से स्वीकृत करना पड़ता है, वह तुलनात्मक रूप से अल्प विकेन्द्रीत है।

**(v)** निर्णय लेने का कार्य उस स्थान (स्तर/बिन्दु) के जितना समीप होगा विकेन्द्रीकरण उतना ही अधिक होगा।

**उदाहरणार्थ** – यदि महाराष्ट्र के उपभोक्ता की समस्या के सन्दर्भ में पश्चिमी खण्ड का प्रबन्धक निर्णयन हेतु अधिकृत होगी उस कम्पनी की तुलना में जिसमें महराष्ट्र के ग्राहक के समस्याओं के लिए नयी दिल्ली (प्रधान कार्यालय) में बैठे स्वामी द्वारा निर्णय लिया जाये।

**(vi)** महत्वपूर्ण निर्णय यदि निम्न स्तर पर लिये जाते है तो यह अधिक विकेन्द्रीकरण को दर्शायेगा।

**उदाहरणार्थ** – यदि एक कम्पनी में खण्ड प्रबन्धक रू0 5 लाख या अधिक का क्रय करने हेतु अधिकृत है तो वह कम्पनी उस कम्पनी की तुलना में जहॉ खण्ड प्रबन्धक महज रू0 1,00,000/– तक के क्रय के लिये अधिकृत है, अधिक विकेन्द्रीकृत होगी।

**6.11.3 विकेन्द्रीकरण के लाभ** – विकेन्द्रीकरण के लाभ निम्नलिखित है –

**(i)** यह संगठन में प्रतिस्पर्धी वातावरण का निर्माण करता है।

**(ii)** यह प्रबन्धक को कार्याधिक्य से मुक्त करता है।

**(iii)** यह निम्न स्तर के कार्यो को अधिक आकर्षक एवं रोचक बनाता है फलतः कर्मचारियों के मनोबल का स्तर बढ़ता है।

**(iv)** यह निचले स्तरों पर पहल (अगुवाई) को प्रोत्साहित करता है जहॉ कर्मचारी निर्णयन प्रक्रिया में भागीदारी हेतु अनुमति प्राप्त किये हुये होते है।

**(v)** वास्तविक स्थितियों के समीप लिए गये निर्णय अधिक यथार्थ होते है। गति एवं प्रथम हस्त ज्ञान जो कि विकेन्द्रीकरण प्रदान करता है के कारण प्रभावी निर्णय सम्भव होते है।

**6.11.4 विकेन्द्रीकरण की हानियॉ** – विकेन्द्रीकरण की हानियॉ निम्नलिखित है –

**(i)** समक्ष/योग्य अधिशाषियों के निम्न स्तर पर नियुक्ति तथा विशेषज्ञ सेवाओं के दुहराव के कारण इसमें प्रशासनिक लागत अधिक होती है।

**(ii)** उच्च प्रबन्धन के लिए यह दुरूह होता है कि वे निम्न स्तर पर कार्यरत व्यक्तियों का कार्योपर नियंत्रण कर सके अथवा यह जान सके कि वे क्या निर्णय ले रहे है।

**(iii)** विकेन्द्रीत संरचना में आपातकालीन निर्णय नहीं लिये जा सकते है। परिवर्तित दशाओं में समायोजन कठिन हो सकता है।

**(iv)** यह निर्णयन में एकरूपता तथा प्रक्रियाओं के स्थायित्व (अविरोध संगतता) को रोकता है।

## 6.12 विकेन्द्रीकरण बनाम प्रत्यायोजन

हालॉकि प्रत्यायोजन एवं विकेन्द्रीकरण सम्बन्धित सिद्वान्त है लेकिन इन दोनों पदों के मध्य के अन्तर को स्पष्ट समझा जा सकता है विकेन्द्रीकरण को प्रत्यायोजन से निम्नलिखित बिन्दुओं पर विभाजित किया जा सकता है।

**(i)** प्रत्यायोजन, उच्चस्थ एवं अधीनस्थ के मध्य प्राधिकार उत्तरदायित्व सिद्धान्त का निर्माण करता है जबकि विकेन्द्रीकरण क्रियात्मक रूप से उच्च प्रबन्धन से सम्बन्धित अर्द्ध–स्वायत्तशाषी निर्णयन इकाईयों अथवा लाभ केन्द्रो की रचना से सम्बन्धित है। अन्य शब्दों में विकेन्द्रीकरण संगठन के बहु–स्तरों पर निर्णयन प्राधिकार का प्रसरण (विसरण) है।

**(ii)** विकेन्द्रीकरण सामान्यतः प्रत्यायोजन का विस्तार नहीं है। प्रत्यायोजन का उद्‌देश्य महत्वपूर्ण (प्रमुख) प्रबन्धकीय पदों पर कार्यरत व्यक्तियों कों कार्य के अत्यधिक बोझ से एवं प्रबन्ध के नवीन दर्शन की सीमा पर अवस्थित गहरे अर्थ रखता है।

**(iii)** प्रत्यायोजन एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा उच्चस्थ अपने नियंत्रण के अधीन कतिपय कार्य एवं उत्तरदायित्व अपने अधीनस्थों को सौंपता है तत्काल अपने निर्णयन प्राधिकार के भाग को अधीनस्थों को प्रदान करता है। जिससे कि अधीनस्थ उन्हें प्रदान (सौंपे गये) किये गये कार्य का दायित्व जो वो प्रत्यायोजन द्वारा प्राप्त प्राधिकारों के द्वारा करने को उत्तरदायी है, उनका निर्वहन कर सकें। किन्तु दूसरी ओर विकेन्द्रीकरण संगठन के समस्त परिचालन स्तरों पर निर्णयन क्षमता (प्राधिकार) का प्रसरण है तथा सम्पूर्ण संगठन में निर्णयन कार्य को उस स्तर पर करने के कार्य से सम्बन्धित है, जहॉ किया जाना है। हालॉकि यह उच्च प्रबन्धन के अन्तिम नियंत्रण के अधीन होता है।

(iv) प्रत्यायोजन उच्चस्थ एवं अधीनस्थ के मध्य होता है तथा सम्पूर्ण प्रक्रिया होती है। इसमें स्वयं कई कार्य समाहित होते है। किन्तु विकेन्द्रीकरण सम्पूर्ण संगठता में निर्णयन शक्ति के प्रकीर्णन से सम्बन्धित है।

(v) प्रबन्धकीय कार्याधिक्य का अतिशय दबाव प्रबन्धकों को बाध्य करता है कि वे अपने भार का कुछ भाग अपने अधीनस्थों को प्रत्यायोजित कर दें। हालांकि इसके अन्य कई विकल्प हो सकते है किन्तु यह उपरोक्त दशा में आवश्यक हो सकता है। दूसरी ओर विकेन्द्रीकरण संगठन की (उद्यम को) परिचालन क्षमता (कार्य) को बढ़ाने हेतु कई विकल्पों में से एक मात्र विकल्प हो सकता है। अर्थात प्रत्यायोजन, विकेन्द्रीकरण के बगैर भी हो सकता है, किन्तु बिना प्रत्यायोजन के विकेन्द्रीकरण सम्भव नहीं है।

(vi) प्रत्यायोजन की दशा में प्रत्यायोजित अपने अधीनस्थ के सम्बन्ध में निर्देशात्मक उत्तरदायित्व रखता है किन्तु विकेन्द्रीकरण में निर्धारण तथा निर्देशन अधिक मात्रा (सीमा में) में उच्च प्रबन्धन के नियंत्रण से प्रतिस्थापित हो जाता है। नियंत्रण व्यवस्था को संगठन को मजबूती प्रदान करने हेतु प्राधिकार के विसरण के रूप में वर्णित किया जा सकता है। विकेन्द्रीकरण में अर्द्ध–स्वायत्तशाषी इकाईयॉ संगठन के जीवन क्षमता एवं जीवंतता पर पूर्ण रूप से केन्द्रित होता है।

(vii) प्रत्यायोजन एक नैत्यिक प्रशासनिक गतिविधि हो सकती है जिसमें केवल प्रबन्धक एवं उनके अधीनस्थ शामिल होते है। जबकि विकेन्द्रीकरण वातावरणीय दबावों, चुनौतियों एवं सम्भावनाओं के अन्तर्गत संगठन के प्रसार एवं वृद्धि हेतु एक संचेतन एवं उद्देश्य रणनीतिक कार्य है।

## 6.13 सारांश

कार्य–प्रत्यायोजन उद्देश्यों में कमी करता है जिनके लिए ध्यान एवं प्रयत्न अवश्य ही निर्देशित होने चाहिए तथा व्यक्तियों तथा व्यक्तियों के समूह के सर्वश्रेष्ठ उपयोग का साधन है। औपचारिक प्रत्यायोजन सांगठनिक संरचना के अन्तर्गत अधिकार का प्रत्यायोजन है। जबकि अनौपचारिक प्रत्यायोजन अनौपचारिक सम्बन्धों के कारण होता है। क्षैतिज अथवा पार्श्विक प्रत्यायोजन, प्रत्यायोजन के अन्य प्रकार है। प्रत्यायोजन, सामान्य अथवा विशिष्ट भी हो सकता है।

प्राधिकार, उत्तरदायित्व एवं जवाबदेही, प्रत्यायोजन के तीन प्रमुख तत्व है। प्राधिकार अधीनस्थ को प्रत्यायोजित कार्य के निष्पादन हेतु निष्पादन अधीनस्थ को दी गयी शैलियों का योग है। उत्तरदायित्व किसी व्यक्ति को संगठन में उसके पद (स्थिति) के कारण प्रदान कार्य अथवा कर्तव्यों से सम्बन्धित हैं जवाबदेही प्राधिकार की तार्किक व्युत्पत्ति हैं । प्राधिकार का प्रयोग एवं उत्तरदायित्वों का निर्वहन अधीनस्थ का दायित्व है। विकेन्द्रीकरण संगठन का दर्शन है जो नीतियों के आरोपण एंव पर्याप्त नियंत्रण के द्वारा चयनात्मक प्रत्यायोजन एवं प्राधिकार के संकेन्द्रण को समाहित करता है।

## 6.14 शब्दावली

<u>प्रत्यायोजन</u> – प्रत्यायोजन एक व्यक्ति द्वारा अन्य व्यक्ति को प्राधिकार एवं उत्तर दायित्व सौंपे जाने से सम्बन्धित है।

**उत्तरदायित्व** – यह किसी व्यक्ति को संगठन को उसकी स्थिति (पद) के कारण कर्तव्य सौंपे जाने सम्बन्धित है।

**प्राधिकार** – प्राधिकार एक व्यक्ति का सौंपे गये कार्य के निष्पादन हेतु प्रदान किये गये अधिकार अथवा शक्ति से सम्बन्धित है।

**जवाबदेही**– जवाबदेही स्थापित निष्पादन मानकों के पदों में उत्तरदायित्व के पालन करने एवं प्राधिकारों के प्रयोग को कहते है।

**विकेन्द्रीकरण** – निर्णयन शक्ति के संगठन के निचले स्तरों पर फैलाव (प्रकीर्णन) को विकेन्द्रीकरण कहते है।

## 6.15 बोध प्रश्न

**A. रिक्त स्थान की पूर्ति करें –**

**(i)** प्रत्यायोजन सौंपे गये कार्य को पूर्ण करने हेतु कार्य को अन्य को सौंपने तथा उन्हें यथोचित....... सौंपना है।

**(ii)** प्रत्यायोजित प्राधिकार की मात्रा (स्तर) सौंपे गये उत्तर दायित्व अथवा कार्यो के साथ .................................... होनी चाहिए।

**(iii)** प्रभावी प्रत्यायोजन एवं प्राधिकार का सफल आवंटन (भारापर्ण) अवश्य ही .. .............................. चाहिए।

**(iv)** .................... की मात्रा प्रत्यायोजित प्राधिकार तथा उत्तरदायित्व की मात्रा पर निर्भर करती है।

**B. सत्य/असत्य –**

**(i)** प्रत्यायोजन अधीनस्थों में अधिक उत्तर दायित्व की भावना पैदा नहीं करता है।

**(ii)** हालॉकि एक प्रबन्धक अपने प्राधिकार का अधीनस्थों को प्रत्यायोजन कर सकता है, किन्तु उत्तरदायित्व को प्रत्यायोजित नहीं किया जा सकता है।

**(iii)** विकेन्द्रीकरण उसी दशा में सम्पूर्ण (पूर्ण) माना जाता हैं। जब अधिकतम सम्भव प्रत्यायोजन सभी व्यक्तियों अथवा अधिकांश व्यक्तियों को कर दिया जाये।

**(iv)** विकेन्द्रीकरण सम्पूर्ण रूप में उद्यम में एक प्रतिर्स्पधात्मक वातावरण निर्माण करता है।

## 6.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

**A.** **(i)** प्राधिकार, **(ii)** अनुरूप, **(iii)** पुरस्कार, **(iv)** जवाबदेही

**B.** **(i)** असत्य, **(ii)** सत्य **(iii)** सत्य **(iv)** असत्य

## 6.17 स्वपरख प्रश्न

**(i)** प्राधिकार के विकेन्द्रीकरण से क्या आशय है ? अधिकारो के प्रत्यायोजन एवं विकेन्द्रीकरण के मध्य अन्तर स्पष्ट कीजिए। आप विकेन्द्रीकरण की मात्रा का निर्धारण किस प्रकार करेगें ?

**(ii)** विकेन्द्रीकरण के लाभ एवं सीमितताओं का वर्णन कीजिए ?

**(iii)** ''प्रत्यायोजन एवं विकेन्द्रीकरण प्रबन्ध एवं संगठन सिद्धान्त में अन्तर्निमेय रूप में प्रयुक्त होते है'' टिप्पणी कीजिए।

**(iv)** ''प्रत्यायोजन प्रशासनिक सफलता की कुंजी है'' स्पष्ट कीजिए।

**(v)** विकेन्द्रीकरण का वर्णन कीजिए तथा इसके प्रमुख लाभों को बताइए। वे कौन से तत्व है, जो किसी संगठन मं विकेन्द्रीकरण की मात्रा को शाषित करते है।

**(vi)** **अन्तर स्पष्ट कीजिए –**

**(a)** प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व।

**(b)** उत्तरदायित्व एवं प्रत्यायोजन।

**(c)** प्राधिकार एवं जवाबदेही।

## 6.18 सन्दर्भ पुस्तकें


1. Henry Fayol, General and Industrial Managements, McGraw-Hill, New York.
2. Douglas S. Basil, Leadership Skills for Executive Action, American Management Association, New York.
3. E.F.L., Brech, The Principles and Practice of Management, Sir Pitman & Sons, London.
4. Prasad, Manmohan, Management Concepts and Practices, Himalaya Publishing House.
5. Bhattacharya, D K, Human Resource Planning, Excel Books.
6. Robbins, S P, Organizational Behavior, Prentice Hall

# इकाई 7 निर्णयन

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 निर्णय एवं निर्णयन
7.3 निर्णयन की विशेषतायें
7.4 निर्णयन की प्रक्रिया
7.5 निर्णयन के प्रकार
7.6 निर्णयन की दशायें
7.7 निर्णयन के नमूने
7.8 व्यक्तिगत एवं समूह निर्णयन
7.9 निर्णयन एवं सृजनात्मकता
7.10 निर्णयन एवं नियोजन
7.11 सारांश
7.12 शब्दावली
7.13 बोध प्रश्न
7.14 बोध प्रश्नों के उत्तर
7.15 स्वपरख प्रश्न
7.16 सन्दर्भ पुस्तकें

## उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- निर्णय एवं निर्णयन को परिभाषित कर सकें।
- निर्णय के विभिन्न प्रकारां एवं निर्णयन की दशाओं की व्याख्या कर सकें।
- निर्णयन की प्रक्रिया एवं इसकें विभिन्न चरणों का वर्णन कर सकें।
- प्रबंधक को बेहतर निर्णयन में सहायता करने वाली तकनीकों का वर्णन कर सकें।
- नियोजन एवं सृजनात्मक के निर्णयन के साथ सम्बन्ध स्थापित कर सकें।

## 7.1 प्रस्तावना

हम सभी के दैनन्दिन जीवन में निर्णयन एक आम बात है। यह प्रबंध प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण भाग है। समस्त स्तरों एवं समस्त संगठनों के प्रबंधक निर्णयन में लिप्त होते है। यह व्यक्तिगत रूप से प्रबंधक अथवा दल की गुणवत्ता दक्षता के निर्णयन के मापक के रूप में प्रयुक्त होता है। व्यवसाय जगत में निर्णयन एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। यह अति विवेकपूर्ण तथा व्यवस्थित ढंग से किया जाता है। क्योंकि यह क्रिया या प्रक्रिया व्यवसाय की दक्षता को प्रभावित करती है।

इस इकाई में हम प्रबंधकीय निर्णयन पर विमर्श करेगे। हम इसकी विशेषताओं एवं प्रक्रिया के अतिरिक्त निर्णयन में समाहित जटिलताओं एवं निर्णयन की तकनीकों के विषय में विमर्श करेगें।

## 7.2 निर्णय एवं निर्णयन

यद्यपि निर्णय एवं निर्णयन लगभग समानकार्य है तथापि सिद्धांततः इन दोनों के मध्य अंतर है। अतः आइये इन्हें पृथकतः परिभाषित करते है। निर्णय. —निर्णय को संसाधनों, कच्चे माल, मशीनरी, वित्त, समय, प्रयत्नों, इत्यादि की विचार एवं क्रिया की एक विशेषीकृत श्रृंखला के वचनबद्धता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। निर्णय महत्वपूर्ण है क्योंकि ये प्रबंधकीय एवं संगठनात्मक दोनों कार्यों को निर्धारित करते हैं।

निर्णय को कार्यों की एक ऐसी श्रृंखला जो विभिन्न विकल्पों के मध्य से अपेक्षित परिणामों की प्राप्ति हेतु जान–बूझकर चयनित की गयी हो, के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। अपेक्षित परिणामों की प्राप्ति हेतु विभिन्न विकल्पों के मध्य से सोच–समझकर चयनित की गयी कार्यों की श्रृंखला के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

यह एक सुसंतुलित धारना एवं कार्यों के प्रति वचनबद्धता को निरूपित करता है। निर्णय प्रदत्त परिस्थितियों में एक विशेषीकृत ढंग से सोचने अथवा व्यवहार करने का साभिप्राय (सचेतना) चयन है। जब एक चयन किया जाता है, एक निर्णय लिया जाता है।

**जे.डब्ल्यू. डंकन**

निर्णयन.—निर्णयन आधुनिक प्रबंध का एक आवश्यक पहलू है। वस्तुतः यह प्रबंध प्रक्रिया अपरिहार्य घटक है। निर्णयन प्रबंधक की गतिविधियों का प्रमुख भाग है।

निर्णयन को विभिन्न वैकल्पिक परिदृश्यों में से कार्यों की श्रृंखला के चयन की मानसिक प्रक्रिया के रूप में समझा जा सकता है। प्रत्येक निर्णयन प्रक्रिया एक अंतिम चयन को प्रदर्शित करती है। अन्य शब्दों में, निर्णयन प्रबंध को उपलब्ध या प्रबंध द्वारा विकसित प्रत्येक विकल्पों के मूल्यांकन के उपरांत सर्वश्रेष्ठ कार्य श्रृंखला के चयन की प्रक्रिया है।

"निर्णयन एक प्रबंधक द्वारा लक्ष्यों की प्राप्त एवं समस्याओं के समाधान के निपटान के प्रभावी साधन के रूप में चयनित कार्यों की श्रृंखला है।" —**थियों हैमेन**

निर्णयन विकल्पों के मध्य से कार्य–श्रृंखला का चयन है, यह नियोजन का सार है।" **कूण्टन व वेहिरिच**

व्यावसाय अधिशासी पेशे से निर्णयकर्ता होते है। अनिश्चितता उनकी प्रतिपक्षी होती है तथा उसे पराजित करना उनका ध्येय होता है। परिणाम चाहे भाग्य या ज्ञान का फल हो निर्णय का क्षण निःसंदेह अधिशासी/कार्यकारी के जीवन की सर्वाधिक रचनात्मक घटना होती है।" जॉन मैबडोनालज

निर्णय एवं निर्णयन को उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम निश्चित कर सकते है, कि निर्णयन एक प्रक्रिया है तथा एक निर्णय उस प्रक्रिया का फल/परिणाम हैं इसलिये निर्णयन प्रक्रिया जितनी बेहतर होगी, उतना ही बेहतर निर्णय प्राप्त होगा।

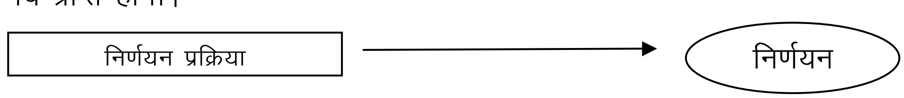


## 7.3 निर्णयन की विशेषतायें

निर्णयन की विशेषतायें निम्नलिखित है :

1. **निर्णयन चयन/विकल्पों को अंर्तनिहित करता है**—निर्णयन मूलतः विकल्पों के मध्य चयन है। निर्णयन में विभिन्न विकल्पों का विवेचनात्मक ढंग से मूल्यांकन किया जाता है। तथा सर्वश्रेष्ठ को चुन लिया जाता है।

2. **सतत गतिविधि/प्रक्रिया**—निर्णयन एक सतत एवं गतिशील प्रक्रिया है। यह प्रत्येक सांगठनिक गतिविधि में व्यापप्त होता है। प्रबंधक को विभिन्न नीतिगत एवं प्रशासनिक मामलों पर निर्णय लेने होते है। यह व्यवसाय प्रबंधन में कभी न समाप्त होने वाली गतिविधि है।

3. **विश्लेषणात्मक बौद्धिक गतिविधि**—निर्णयन एक बौद्धिक गतिविधि/प्रक्रिया है तथा इस हेतु निर्णयकर्ता का ज्ञान, दक्षता, अनुभव एवं परिपक्वता आवश्यक है। यह आवश्यक रूप से मानवीय गतिविधि है।

4. **लक्ष्योन्मुखी प्रक्रिया**—निर्णयन एक लक्ष्योन्मुखी प्रक्रिया है। निर्णय प्रायः कुछ उद्देश्यों या लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु लिये जाते है। निर्णयन का उद्देश्य व्यावसायिक उद्यम की समस्याओं/दुरूहताओं की दी गयी समस्याओं हेतु समाधान प्रदान करना होता है।

5. **साधन है, साध्य नहीं**—निर्णयन समस्याओं के समाधान अथवा लक्ष्यों/उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन मात्र है। अपने आप में साध्य नहीं।

6. **विशिष्ट समस्याओं से सम्बन्धित**—निर्णयन समस्या समाधान के समान नहीं है, वरन इसका मूल्य स्वयं समस्या में अवस्थित होता है।

7. **व्यापक कार्य**—निर्णयन एक सर्वव्यापी कार्य है। इसका अर्थ है कि प्रत्येक स्तर पर कार्यरत प्रबंधकों को अपने क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आने वाले मामलों पर निर्णय लेने होते है।

8. **दायित्वपूर्ण कार्य**—निर्णयन एवं दायित्वपूर्ण कार्य होता है, क्योंकि एक गलत निर्णय संगठन को महंगा पड़ सकता है। निर्णयकर्ताओं का दृष्टिकोण परिपक्व, अनुभवी, ज्ञानपूर्ण एवं विवेकपूर्ण होना चाहिये। निर्णयन को मार्गीय तथा लापरवाह ढंग से नहीं व्यवहत किया जाना चाहिये।

9. **समय, प्रयत्न एवं मुद्दा की प्रतिबद्धता**—निर्णयन समय, प्रयत्न एवं मुद्दा के प्रतिबद्धता को अंर्तनिहित करता है। यह प्रतिबद्धता निर्णय के प्रकार के आधार पर अल्पावधि या दीर्धावधि की हो सकती है। एक बार निर्णय ले लिये जाने पर संगठन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु एक विशिष्ट दिशा में प्रयास/कार्यवाही करता है।

10. **मानवीय एवं सामाजिक प्रक्रिया**—निर्णयन एक मानवीय एवं सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें बौद्धिक योग्यता अंर्तदृष्टि एवं न्याय सम्मिलित होता है। मानवीय एवं सामाजिक सुझाव विभिन्न विकल्पों में से चयन के समय ध्यान में लिये जाते है।

## 7.4 निर्णयन की प्रक्रिया

निर्णयन एक कठिन कार्य है। यह विचार विमर्श/मंत्रणा, मूल्यांकन, अंर्तज्ञान एवं विचार का अंतिम परिणाम है। निर्णयन कई घटकों से प्रभावित होता है। अतः एक व्यवस्थित प्रणाली अथवा व्यवस्थित प्रक्रिया प्रबंधक को अच्छे निर्णयन में सहायता करेगी। निर्णयन की प्रक्रिया समस्या की प्रकृति, संगठन के प्रकार, तथा अन्य कई घटकों के फलस्वरूप भिन्न भिन्न हो सकती है। अतः निर्णयन के

सार्वभौमिक चरणों की पहचान एक दुरूह कार्य है, किंतु सामान्यतः निर्णयन के उभयनिष्ठ चरण निम्नलिखित है।

(1) प्रबंधकीय समस्या को परिभाषित करना;
(2) समस्या का विश्लेषण करना;
(3) वैकल्पिक समाधानों को विकसित करना;
(4) उपलब्ध विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ समाधान का चयन करना;
(5) निर्णय को क्रिया में परिवर्तित करना (क्रियान्वयन)
(6) अनुगमन

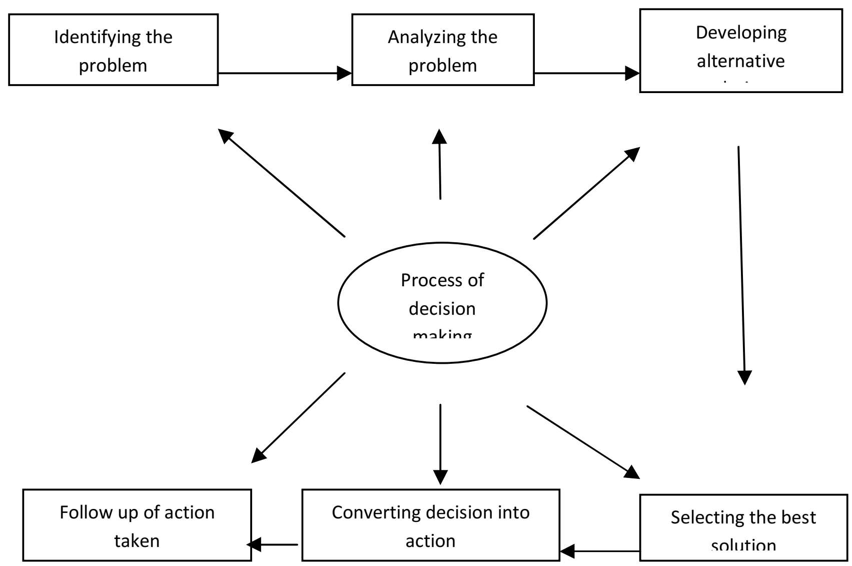


*चित्र 7. 1: निर्णयन प्रक्रिया*

**(1) समस्या की पहचान करना**—समस्या की पहचान करना निर्णयन प्रक्रिया का प्रारंम्भिक चरण है। समस्या से सम्बन्धित सूचनाओं को एकत्रित किया जाना चाहिये जिससे कि समस्या का गंभीर विश्लेषण संभव हो सके। यह समस्या निदान कैसे किया जा सकता है से सम्बन्धित है। समस्या एवं लक्षणों के मध्य स्पष्ट अंतर किया जाना चाहिये जो कि प्रमुख मुद्दो को उलझा सकते है। संक्षेप में प्रबंधक को कार्य में नाजुक (सूक्ष्म) घटकों की खोज करने चाहिये। यह वह बिंदु होता है जहां विकल्प अंतनिहित होता है। इसी प्रकार वास्तविक समस्या की जांच करते समय प्रबंधक को समस्या के कारणों पर भी विचार करना चाहिये तथा यह भी पता लगाना चाहिये (निष्कर्ष निकालना) कि ये समस्याये नियंत्रणीय है, अथवा अ–नियंत्रणीय।

**(2) समस्या का विश्लेषण करना**—समस्या की पहचान के पश्चात निर्णयन प्रक्रिया का अगला चरण समस्या का गहन विश्लेषण है। यह जानने हेतु कि कौन निर्णय लेगा और किन्हें यह निर्णय संसूचित किया जाना है समस्या का वर्गीकरण आवश्यक है। यहां निम्नलिखित चार तथ्य (घटक) मस्तिष्क में रखे जाने चाहिये।

(1) निर्णय का भविष्य;
(2) इसके प्रभाव का क्षेत्र;
(3) सम्मिलित गुणात्मक प्रतिफलों की संख्या;

(4) निर्णय की विशिष्टता (अद्वितीयता)
यह चरण उपयोगी (व्यावहारिक) आंकड़ों के एकत्रीकरण को सम्मिलित करता है। समस्या को परिभाषित करने एवं उसकी प्राकृतिक विश्लेषण करने के पश्चात् अगला चरण इनके बारे में उपयोगी सूचना/आंकड़ों को प्राप्त करना है। सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकास के फलस्वरूप व्यवसाय जगत में सूचना बाढ़ (सूचना का अधिकता) है। समस्त उपलब्ध सूचनाओं को पूर्णतः उपयोग समस्या के विश्लेषण हेतु किया जाना चाहिये। यह समस्या के समस्त पहलुओं में स्पष्टता लाता है।

(3) **वैकल्पिक समाधानों का विकास करना**—समस्या की पहचान एवं जांच के उपरांत प्रबंधक को उपयोगी सूचनाओं के आधार पर ऐसे वैकल्पिक समाधानों के विकास का कार्य करना चहिये जो समस्या के निदान में प्रयुक्त हो सकते है। इस हेतु केवल व्यवहारिक/वास्तविक विकल्पों पर ही विचार करना चाहिये। समय एवं लागत तथा मनोवैज्ञानिक बाधाओं पर भी ध्यान दिया जाता उतना ही महत्वपूर्ण है क्योंकि ये घटक विकल्पों को सीमित कर देंगे। यदि आवश्यक हो तो किसी एक समाधान के अवांछनीय होने की दशा में समूह सहभागिता तकनीक का भी प्रयोग किया जा सकता है।

(4) **सर्वश्रेष्ठ समाधान का चयन**—वैकल्पिक समाधानों के विकास के पश्चात् निर्णयन प्रक्रिया का अगला चरण सर्वाधिक विवेकी विकल्प जो कि समस्या के समाधान हेतु उपयुक्त हो, का चुनाव करना है। इस प्रकार चयनित विकल्प को इससे प्रभावित होने वाले पक्षों तक अवश्य संसूचित किया जाना चाहिये। समूह के सदस्यों द्वारा निर्णय की स्वीकृति निर्णय के प्रभावी क्रियावयन हेतु सदैव वांछनीय एवं उपयोगी होती है।

(5) **निर्णय का कार्यरूप में परिवर्तन/रूपांतरण**—सर्वश्रेष्ठ विकल्प के चयन के उपरांत अगला चरण लिये गये निर्णय को प्रभावी अमल/क्रियांवित करना है। ऐसे किसी कार्य/क्रियान्वयन के बर्गर निर्णय महज अच्छे भावनाओं की घोषणा ही रह जायेगी।
प्रबंधक को अपने नेतृत्व के द्वारा अपने निर्णय को उन सबके निर्णय में परिवर्तित करना होगा। इस हेतु अधीनस्त को विश्वास में लिया जाना चाहिये तथा निर्णय की उपयुक्तता के विषय में सहमत किया जाना चाहिये। तत्पश्चात लिये गये निर्णय के क्रियान्वयन हेतु प्रबंधक को अनुगमन चरण अपनाने होगे।

(6) **प्रतिपुष्टि/ सुनिश्चितिकरण**—प्रतिपुष्टि निर्णयन प्रक्रिया का अंतिम चरण है। यहाँ प्रबंधक को अपेक्षाओं के विरुद्ध वास्तविक प्रगति के सतत परीक्षण हेतु प्रतिपुष्टि की आंतरिक व्यवस्था की सुनिश्चितता हेतु प्रबंध करने होंगे यह अनुगमन उपायों की प्रभावकारिता की जांच है। प्रतिपुष्टि संगठित सूचनाओं, प्रतिवेदनां एवं व्यक्तिगत प्रेक्षणों के रूप में संभव होती है। प्रतिपुष्टि यह निश्चित करने हेतु आवश्यक होते है कि पूर्व में लिये गये निर्णय को जारी रखना चाहिये अथवा परिवर्तित दशाओं के आलोक में परिवर्धित/संशोधित करना चाहिये।

## 7.5 निर्णयन के प्रकार

जैसा कि पूर्व में विर्श किया जा चुका है कि प्रत्येक स्तर के प्रबंधक निर्णयन का कार्य करते है। वस्तुतः प्रबंधक अपने लिये गये निर्णयों एवं उन

निर्णयों से प्राप्त निर्गतों के द्वारा ही जाने/निर्णीत जाते है। निर्णयों को विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है, उनमें कतिपय प्रमुख है :

**आधारभूत/रणनीतिक एवं नैत्यिक/नीतिगत निर्णय**—आधारभूत अथवा रणनीतिक निर्णय किसी विशेष समस्या या स्थिति से सम्बन्धित होते है। इन निर्णयों हेतु विस्तृत विवेचन/ध्यान तथा अधिक धन की आवश्यक होता है तथा ये उच्च स्तरीय प्रबंधकों द्वारा लिये जाते है। इस हेतु प्रबंधक में सृजनात्मकता, अंर्तदृष्टि तथा परख के गुण होना आवश्यक है।

नैत्यिक अथवा नीतिगत निर्णय पुनरावृत्तीय प्रकृति के होते है। इस हेतु अल्प ध्यान की आवश्यकता होती है तथा ये प्रायः अल्पावधि वचनबद्धता से संदर्भित होते है। इनका प्राथमिक उद्देश्य यथासंभव उच्च दक्षता को प्राप्त करना होता है।

**वैक्तिक एवं सांगठनिक निर्णय**—ये निर्णय प्रबंधक के प्राधिकार के प्रयोग को प्रतिबिम्बित करते है। संगठन के हितों को दृष्टिगत कर लिये गये निर्णय सांगठनिक निर्णय तथा व्यक्तिगत हितों को ध्यान में रखकर लिये गये निर्णय वैक्तिक निर्णय कहलाते है।

सांगठनिक निर्णय प्रबंधक द्वारा नियंत्रक के रूप में अपने आधिकारिक अथवा औपचारिक क्षमता के अंतर्गत लिये जाते है। तथा सांगठनिक संसाधनों को आंवटित करते है। ये निर्णय प्रत्यायोजित किये जा सकते है तथा इनका उद्देश्य संगठन के हितो को प्रोत्साहित करना होता है।

व्यक्तिगत क्षमता से लिये गये निर्णय व्यक्तिगत निर्णय कहलाते है। इन्हें प्रत्यायोजित नहीं किया जा सकता। व्यक्तिगत निर्णय संगठन को अप्रत्यक्षतः प्रभावित करते है।

**योजनाबद्ध एवं गैर–योगनाबद्ध निर्णय**—जब निर्णयकर्ता के पास निर्णय स्थिति से सम्बन्धित पर्याप्त सूचनायें उपलब्ध हो तब लिये गये निर्णयों को योजना बद्ध निर्णय कहते है। ये निर्णय नैत्यिक समस्याओं हेतु संरचित होते है तथा पुनरावृत्तीय प्रकृति के होते है। पुनरावृत्तीय समस्याओं के त्वरित समाधान हेतु नियम एवं नीतियों को पूर्व में ही भली–भांति सुस्थापित किया जाता है।

अ–कार्यक्रमिक (गैर–योगजनाबद्ध) निर्णय उन दशाओं को समाहित करती हैं जिनमें विकल्पों का विकास एवं मूल्यांकन नियम एवं नीतियों की सहायता के बिना हुआ हो। अ–कार्यक्रमिक निर्णय असंतोषजनक ढंग से परिभाषित संरचना तथा लक्ष्य सपष्टता के अभाव की विशेषता से युक्त होते है। चूकि ये निर्णय विश्वसनीय एवं सुपरिभाषित सूचना स्त्रोत के अभाव में तथा सुनिश्चित प्रक्रिया के बिना लिये जाते है। अतः ये गैर योजनाबद्ध निर्णय के असंतोषजनक संरचना हेतु उत्तरदायी होते है। ये निर्णय उच्च स्तरीय प्रबंधकों द्वारा लिये जाते है। जैस जैसे हम सांगठनिक परसोपान में उच्च श्रेणी के ओर (आगे की ओर) बढ़ते है। अ–कार्य क्रमित (गैर योजनाबद्ध) निर्णयों को लेने की आवश्यकता बढ़ती जाती है।

## 7.6 निर्णयन की दशायें

वे दशाएं जिनके अंतर्गत निर्णय लिये जाते है, वे ज्ञात एवं अज्ञात तथा पूर्ण निश्चितता व पूर्ण अथवा आंशिक अनिश्चितता के मध्य विचारित होती रहती है। कुछ निर्णय अधिमान्य (पसंदीदा) स्थितियों एवं वातारण में लिये जाते है तथा

कतिपय पूर्णतः गैर पसंदीदा स्थितियों एवं वातावरण में निर्णयन पर्यावरण निम्नलिखित दशाओं को निरूपित करता है।

(1) **निश्चितता**—निश्चितता से अभिप्राय यह है कि निर्णयकर्ता के पास भविष्य की पूर्ण एवं विश्वसनीय सूचना होनी चाहिये तथा प्रबंधक या निर्णयकर्ता सर्वश्रेष्ठ कार्य प्रणाली (सर्वश्रेष्ठ विकल्प) का चयन कर सकते हों। यद्यपि व्यावहारिक जगत में कुछ ही निर्णय निश्चित होते है तथा इस प्रकार की स्थिति वास्तविकताओं में दुलर्भ ही होती है।

(2) **जोखिम**—जोखिम से तात्पर्य यह है कि एक निर्णय एक सुस्पष्ट लक्ष्य रखता है तथा पर्यावरण के बारे में उपलब्ध सूचनायें अपर्याप्त है तथा ये विश्वसनीय हो भी सकती है, अथवा नहीं भी किंतु प्रत्येक विकल्प के साथ सम्बन्धित भावी परिणाम पृथक–पृथक हो सकते है। अपेक्षित परिणाम निश्चयात्मक नहीं वरन महज सम्भाव्य हो सकते है। अधिकांश निर्णय जोखिम की स्थिति में ही लिये जाते है। वस्तुतः सम्भावयता पर आधारित निर्णय प्रबंध को समस्त क्षेत्रों में आम (उभयनिष्ठ) है।

(3) **अनिश्चितता**—इस स्थिति में भविष्य की कोई सूचना उपलब्ध नहीं होती तथा निर्णयकर्ता समस्त विकल्पों से अनभिज्ञ रहता है तथा प्रत्येक विकल्प एवं विकल्पों के परिणाम में जोखिम व्याप्त रहता है। निर्णय प्रबंधक के अनुभव अंर्तदृष्टि तथा परख पद आधारित होते है। निर्णय प्रायः गणित अनुमानों, तथा अंशतः तथ्यात्मक आंकड़ों पर अवस्थित होते है। निर्णयन वातावरण के कतिपय अनिश्चित तत्व आर्थिक राजनैतिक तकनीकी एवं प्राकृतिक परिवर्तन है।

4. **अस्पष्टता**—अस्पष्टता से तात्पर्य है कि प्राप्त किये जाने वाले लक्ष्य या समाधान की जाने वाली समस्या अस्पष्ट है विकल्पों को परिभाषित (पहचान) करना कठिन है तथा परिणामों के बारे में सूचना अनुपत्र बद्ध है। प्रबंधकों के सम्मुख यह सर्वाधिक कठिन निर्णय की स्थिति होती है। सामान्यतया यह स्थिति व्यवसाय जगत में दृष्टगम्य होती है।

## 7.7 निर्णयन के नमूने

निर्णयन को दिशा निर्देशित करने हेतु वाले दो प्रतिदर्श निम्नलिखित है :

1. **विवेकी/आर्थिक मानव प्रतिमान**—निर्णयन के इसे निर्देशात्मक अथवा शास्त्रीय प्रतिमान के नाम से भी जाना जाता है। यह प्रतिमान मानता है कि निर्णयकर्ता प्रबंध के शास्त्रीय सिद्धांत में वर्णित आर्थिक मानव के समान एक आर्थिक मानव है। वह आर्थिक उद्देश्यों एवं स्वहित से निर्देशित होता है तथा समस्याओं के समाधान हेतु सर्वश्रेष्ठ विकल्प के चयन का प्रयत्न करता है। उसका उद्देश्य सभी को अधिकतम करना होता है। यह प्रतिमान निम्नलिखित मान्यताओं पर अवस्थित होता है।

1. निर्णयकर्ता एक सुस्पष्ट सुपरिभाषित लक्ष्य रखता है तथ्य उसे वह अधिकतम करने का प्रयास करता है।
2. निर्णयकर्ता सम्पूर्ण एवं विश्वसनीय सूचनाओं तक पहुँच रखता है, प्राप्त करता है;
3. निर्णयकर्ता के प्राप्त समस्त विकल्प ज्ञात होते है अथवा दिये गये हुये होते है तथा समस्त क्रियाओं के परिणाम भी ज्ञात होते है।

4. निर्णयकर्ता सृजनशील व्यवस्थित एवं अपने विचारों में तर्क संगत होता है;
5. निर्णयकर्ता समस्त विकल्पों को विश्लेषण कर सकता है तथा उन्हें प्राथमिकता के क्रम में श्रेणी बद्ध कर सकता है;
6. निर्णयकर्ता उन विकल्पों का चयन करने की स्वतंत्रता रखता है, जो प्राप्तियों को अनुकूलतम करती हो।
7. निर्णयन को समय लागत तथा सूचना की कोई बाध्य नहीं होती।

उपरोक्त प्रतिमान निर्देशात्मक एवं नियामक होता है, यह वर्णित करता है कि निर्णयकर्ताओं को किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये तथा वास्तविक निर्णयन वह नहीं है जो विवेकी प्रतिमान द्वारा निर्धारित किया गया है। विवेकपूर्णता एक आदर्श है तथा व्यवहारिक जीवन की स्थितियों में कदाचित ही प्राप्त किया जा सकता है।

विवेकपूर्ण निर्णय लेने में प्रबंधकों द्वारा अनुभव की जाने वाली बाधायें निम्नलिखित है :

(1) सुपरिभाषित लक्ष्यों को निर्धारित करना अथवा समस्या को शुद्धतापूर्वक (सही ढंग से) निर्धारित करना असंभव है, जोकि प्रबंधक प्राप्त करना चाहते है।

(2) प्रबंधक की क्षमता वातावरणीय घटकों (प्रभावित करने वाले कारकों) के विषय में सम्पूर्ण सूचनायें एकत्रित करने में सीमित होती है तथा वे समस्त विकल्पों एवं उनके सम्भाग्य परिणामों से अनभिज्ञ होते है। यहां तक कि एक विकल्प के लिये भी वे समस्त सूचनायें नहीं एकत्रित कर सकते।

(3) प्रबंधक अत्यधिक दबाव में कार्य करते है तथा समय की किसी भी बर्तादीक परिणाम अवसर की हानि के रूप में होता है। समय एवं लागत की गहन बाधा में कार्य करने के कारण प्रबंधक अल्प अनुकूल निर्णय निश्चित कर सकते है।

(4) प्रत्येक प्रबंधक विविध विकल्पों के संदर्भ में अपनी समझ/अनुभव रखता है तथा ये व्यक्तिगत वरीयता (पसंद) अथवा समझा उसके निर्णयन व्यवहान को निर्देशित करते है।

(5) यह प्रतिमान निर्णयन प्रक्रिया में शक्ति शाली व्यक्ति एवं समूह के प्रभाव की महत्ता की उपेक्षा करता है। विभिन्न समूह यथा श्रम संघ, उपभोक्ता समूह तथा प्रशासनिक अभिकरण प्रबंधकों द्वारा लिये गये निर्णयों को प्रभावित करते है।

इस प्रकार विवेकी आर्थिक प्रतिमान दोषयुक्त तर्क व तर्क संगतता पर आधारित है। यह एक आदर्श किंतु अ–व्यवहारिक प्रतिमान है। व्यावहारिक जगत की जटिलतायें हमें इस प्रतिमान को अस्वीकृत करने को बाध्य करती है क्योंकि इसकी मान्यतायें दुर्लभता लागू होती दिखती है।

2. **प्रशासनिक व्यक्ति प्रतिमान**—इस प्रतिमान को वर्णनात्मक निर्णयन सिद्धांत अथवा अविवेकी प्रतिमान के नाम से भी जाना जाता है। आर्थिक मानव प्रतिमान के विपरीत प्रशासनिक मानव प्रतिमान वर्णनात्मक प्रकृति का होता है। यह प्रतिमान सुविख्यात अर्थशास्त्री एवं नोबेल पुरस्कार प्राप्त प्रो0 हर्बट साइमन द्वारा व्यक्ति एवं संगठन के निर्णयन व्यवहार के वर्णन के दौरान दिया गया था। जैसा कि हम पहले ही जानते है बहुत से घटक है जो प्रबंधक तथा संगठन को पूर्णतः विवेकी

निर्णय लेने प्रतिबंधित अथवा सीमित करते हैं प्रशासनिक मानव प्रतिमान एवं व्यावहारिक मानव प्रतिमान है तथा परिबद्ध तार्किकता के सिद्धान्त पर आधारित है जो कि संकेत करता है कि प्रबंधक, निर्णयन प्रक्रिया के दौरान केवल सीमित ढंग से ही विवेकी हो सकते है। संगठन में सदैव विवेकशीलता की सीमा होती है। प्रबंधक निर्णयन स्थिति में समस्त सम्भाव्य विकल्पों को विकसित व मूल्यांकित नहीं कर सकते है। वे महज सीमित संख्या में विकल्पों को विश्लेषित करते है तथा वह निर्णय लेते है, जो ठीक (अच्छा)/पर्याप्त होता है। ये निर्णय सदैव अनुकूलतम निर्णय नहीं होते है। ये संतुष्टिकारक निर्णय होते है। ये समस्याओं को सीमित रूप से उपलब्ध सूचनाओं संसाधन के साथ संतुष्टिकारक ढंग से हल करने में सक्षम होते है।

प्रशासनिक मानव निर्णयन प्रतिमान की विशेषतायें निम्नलिखित है :

(1) विकल्पों के मध्य से चयन में प्रशासनिक मानव संतुष्टकारक अथवा पर्याप्त विकल्पों को खोजने का प्रयास करता है जो कि निर्णयन की बाधाओं को हल कर सके।

(2) निर्णयन करते समय प्रबंधकों द्वारा समस्त विकल्पों को पहचानने एवं उनका मूल्यांकन करने की महत्ता नहीं अनुभवित की जाती है। इस कारण से प्रशासनिक मानव संतुष्टिकरण में विश्वास करता है, न कि अधिकतम करेगें।

(3) प्रशासनिक मानव तुलनात्मक रूप से सरल अंगूठे के नियम या व्यापार की चतुराई अथवा आदत के प्रभाव से निर्णय लेने में सक्षम होता है।

## 7.8 व्यक्तिगत एवं समूह निर्णयन

निर्णयन व्यापार संचालन का एक बड़ा (महत्वपूर्ण) भाग है, जहां केवल एक व्यक्ति निर्णय लेने में सम्मिलित हो अथवा निर्णय से प्रभावित हो रहा हो ऐसे निर्णय लेना तुलनात्मक रूप से सरल होता है, किंतु जब सहकर्मी अथवा कर्मचारियों को विमर्श में सम्मिलित करना आवश्यक होता है। तब समूह निर्णय सर्वोत्तम समाधान होता है। व्यक्तिगत एवं समूह निर्णयन के मध्य का चयन लिये जाने वाले निर्णयों की आवश्यकता, प्रभावित होने वाले समूह तथा नियोक्ता की सामान्य नेतृत्व शैली पर आधारित होते है।

**व्यक्तिगत निर्णयन**—समूह के निर्गत के बिना अथवा समूह की राय के बिना लिये गये निर्णय व्यक्तिगत निर्णय होते है। यह अधिकतः परम्परागत निर्णयन दृष्टिकोण होता है तथा उन मामलों में जहां समूह के निर्गत आवश्यक अथवा वांछित नहीं होते है। प्रभावशाली रूप से कार्य करता है।

**लाभ**—चूंकि व्यक्तिगत निर्णय में सिर्फ एक व्यक्ति से मशविरा/विमर्श की आवश्यकता पड़ती है। अतः एक व्यक्ति समूह की अपेक्षा त्वरित निर्णय ले सकते है।

**हानि**—यदि निर्णय से समूह प्रभावित हो रहा हो तो व्यक्तिगत निर्णय से बचना चाहिये।

उदाहरण : अराजपत्रित अवकाश की सूची के निर्धारण का धार्मिक एवं अन्य व्यक्तिगत बाध्यताओं के आधार विरोध होगा।

इन दिनों प्रबंधकों के लिय विभिन्न आधुनिक तकनीक उपलब्ध है, निर्णयन हेतु गणितीय प्रतिमानों अथवा परिचालन शोध अवधि का प्रयोग करती है। आइये इनमें से कुछ तकनीकों को संक्षेप में विर्मश करते है।

1. **सम–विच्छेद तकनीक**—यह तकनीक प्रबंधकों को शून्य लाभ उत्पादन स्तर निर्धारण में सहायता करती है। इस स्तर पर शून्य लाभ–शून्य हानि की दशा प्राप्त होती है तथा इस स्तर के ऊपर लाभ में वृद्धि आरम्भ हो जाती है। इस स्तर पर कुल लागत, जिसमें परिवर्तनशील एवं स्थिर लागते सम्मिलित होती है, कुल राजस्व के समान होता है।

2. **आर्थिक आदेश मात्रा**—यह तकनीक स्टाफ के लागत नियंत्रण में प्रबंधकों की सहायता करती है। अधिक स्टाफ के फलस्वरूप अल्प कार्यशील पूजी तथा अन्य ब्याज लागत होती है। साथ ही न्यून स्टाक के कारण आदेश हानि तथा सुस्त (अकार्यशील) श्रम समय होता है। कुछ अन्य लागते है जो इनवेन्ट्री (स्टाक) प्रबन्ध के साथ जुड़ी होती है यथा उठाया धारी लागत, भंडारण लागत बीमा लागते इत्यादि। आर्थिक आदेश मात्रा स्टाक के उचित स्तर निर्धारण तथा दिये जाने वाले आदेश सहायता करता है।

3. **सम्भावयता सिद्धांत**—भविष्य अनिश्चित होता है। (सम्भावयता) सिद्धांत इन अनिश्चितताओं को न्यून करने में सहायता करता है। किसी घटना के घटने की प्रायिकता शून्य से 1 के मध्य सीमित होती है।
यह सिद्धांत निर्णयकर्ता को भावी घटनाओं के निश्चय हेतु सशक्त आधार प्रदान करता है। ये निर्णय पूर्व अनुभवों तथा मात्रात्मक आंकड़ों की कुछ मात्रा पर आधारित होते है।

4. **खेल सिद्धांता (क्रीड़ा सिद्धांत)**—यह सिद्धांत सन 1944 में जान बान पूमैन तथा आस्कर मार्गन्सर्अन द्वारा विकसित किया गया था। यह सिद्धांत व्यावसायिक संगठनों की अपने प्रतिर्स्पधियों का सामना करने में सहायता करता है। यह ज्ञान का वह निकाय है जो उस दशा में निर्णयन करता है जब दो या अधिक बुद्धिमान एवं विवेकी प्रतिर्स्पधी संघर्ष अथवा प्रतिर्स्पधा की स्थिति में सम्मिलित होते है। इसमें निर्णयकर्ता स्वयं को उनके प्रतिर्स्पधी के रूप में रखता है तथा प्रति नीति नियोजित करता है।

5. **पंक्तिवार सिद्धांत**—इस सिद्धांत को प्रतीक्षा पंक्ति सिद्धांत के नाम से भी जाना जाता है। यह समस्या तब उत्पन्न होती है। जब भी उपभोक्ता सेवा की मांग सुपरिभाषित सेवा सुविधाओं से मेल नहीं करती यथाः रेलवे आरक्षण, सिनेमा, बैंक इत्यादि। यह सिद्धांत पंक्ति की लागत तथा पंक्ति को रोकने की लागत के बीच संतुलन खोजने का प्रयत्न करता है यथाः रेलवे आरक्षण पटल पर पंक्ति की लागत, उपभोक्ता के समय की बर्बादी की लागत, उपभोक्ता को असुविधा की लागत, कभी कभार उपभोक्ता के आदेश की हानि की लागत जहां पंक्ति को रोकने की लागत अधिक मानवीय शक्ति अधिक मशीनरी व्यवस्था की आवश्यकता होगी तथा मानव एवं मशीनों के अकार्यशील समय के जोखिम भी।

6. **निर्णय वृक्ष**—यह एक चित्रीय (रेखाचित्रीय)/चित्रात्मक निर्णयन अस्त्र/उपकरधा होता है। जो ऐसे निर्णयों के मूल्यांकन में जो चरणों की श्रृंखला को धारित करत है प्रयुक्त होते है। यह प्रादिकल साधनों के जिसे अवसर साधन

भी कहा जाता है के प्रयोग से सम्भाव्य कार्य योजनाओं एवं घटनाओं का निरूपण है, जो निर्णयन को वृक्ष–चित्र के द्वारा सर्वाधिक अनुकूलतम पथ के अनुरेखण पता लगाने को संभव करता है। रेखांचित्र एक वृक्ष को निरूपित करता है जो वर्ग द्वारा प्रदर्शित एक आधार जिसे निर्णय बिंदु भी कहते है, को प्रदर्शित करता है। वृक्ष की शाखाएं प्रथम अवसर से आरंभ होती है जो वृत्त द्वारा निरूपित होती है।

उदाहरणतः एक फर्म एक नवीन उत्पाद को प्रक्षेपित करना चाहती है। वह उत्पाद A अथवा उत्पाद B किसी को भी प्रक्षेपित कर सकती है।

कुल आगम में वृद्धि अथवा कमी का प्रायिकता चार्ट अग्रांकित है।

| | **उत्पाद का प्रेषण** | **उत्पाद का प्रक्षेण** |
|---|---|---|
| आगम में वृद्धि (सम्भाग्य) | रु. 70,000<br>(.70) | रु. 80,000<br>(.80) |
| आगम में कमी (सम्भाग्य) | रु. 20,000<br>(.30) | रु. 10,000<br>(.40) |

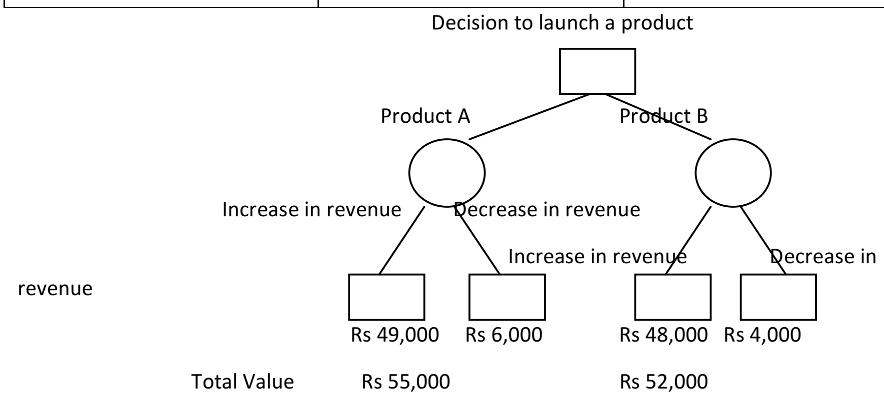


**चित्र 8.2 निर्णय वृक्ष**

7. **रेखीय कार्यक्रम (प्रोग्रामिंग)**—यह एक गणितीय तकनीक है जो संगठन में सीमित संसाधनों के अनुकूलतम आवंटन के लिये प्रयुक्त होती है। रेखीय शब्द का तात्पर्य सीधी पंक्तियों प्रदर्शित होने वाले सम्बन्ध से है। प्रोग्रामिंग पद का अर्थ व्यवस्थित रूप से निर्णयन है। इसका उद्देश्य दो ऐसे दो चरों, जो संसाधनों के सर्वश्रेष्ठ उपयोग को समाहित करते हो, को संयुग्मित कर लाभ को अधिकतम अथवा लागत को न्यूनतम करना होता है।

8. **वरीयता सिद्धांत**—जोखिम के प्रति मनोभाव व्यक्ति के अनुसार चलनशील होते है। कुछ प्रबंधक जोखिम से बचते है। (न्यून जोखिम को लेने के इच्छुक होते है) जबकि अन्य खतरों के साथ खेलते है (अधिक जोखिम लेने के इच्छुक होते है) वरीयता सिद्धांत जिसे उपयोगिता सिद्धांत के नाम से भी जाना जाता है। जोखिम के प्रति वैक्तिक मनोभाव को वर्णित करती है। यहां यह माना जाता है कि निर्णयकर्ता निर्णयन में अनुप्रयुक्त सांख्यिकीय प्राथमिकताओं का पालन करते है।

**समूह निर्णयन**—समूह निर्णयन के कई प्रतिमान है, जिनका प्रयोग किया जा सकता है, यथा सर्वसम्मति (सामंजस्य) एवं परामर्श, सामंजस्य निर्णयन समूहों पर कई विकल्पों के आरोपण तथा सर्वाधिक लोकप्रिय विकल्प द्वारा निर्णयन को

समाहित करता है। परामर्श के अंतर्गत समूहों के सुझावों/मतों को निर्णयन के समय विचारण हेतु ध्यान में लिये जाते है।

दोनों विधियों में समूहों की सहभागिता आवश्यक है, तथा उन प्रबंधकों के लिये समय की माँग है जो निर्णयन प्रक्रिया में समूह के मत तथा आगत को समादरित करती है।

| लाभ | हानि |
|---|---|
| 1. समूह अधिक ज्ञान एकत्र कर सकते है। | 1. समूह प्रायः व्यक्ति की तुलना में धीरे कार्य करते है। |
| 2. समूह एक व्यापक दृष्टिकोण रखते है तथा अधिक विकल्पों पर विमर्श/विचार करते है। | 2. समूह निर्णयन विचारणीय समझौतों को समाहित करता है जो न्यून अनुकूलतम निर्णय की ओर अग्रसारित हो सकता है। |
| 3. समूहों में भाग लेने वाले व्यक्ति निर्णय के साथ ज्यादा संतुष्ट होते है तथा इसे समर्थन देते है। | 3. समूह प्रायः एक व्यक्ति या गुट द्वारा शासित (प्रभुत्व स्थापन) होते है, जिससे समूह की बहुत सी विशेषताये/गुण बेअसर/अस्वीकृत हो जाती है। |
| 4. समूह निर्णय प्रक्रियायें एक महत्वपूर्ण संचार कार्य करती है। | 4. समूह निर्णयों पर अत्यधिक विश्वास/भरोसा प्रबंधन की आवश्यक स्थितियों में त्वरित एवं निश्चयात्मक ढंग से निर्णय लेने की क्षमता को बाधित कर सकती है। |

**व्यक्तिगत बनाम समूह निर्णयन**—उद्देश्यों के निर्धरण/स्थापन में समूह सम्भवतः व्यक्तियों से श्रेष्ठ होते है, क्योंकि समूहों क को ज्ञान की अधिक मात्रा उपलब्ध होती है।

विकल्पों की पहचान में समूह के व्यक्तियों का वैक्तिक प्रयास संगठन के विभिन्न क्रियात्मक क्षेत्रों में वृहद खोज को प्रोत्साहित करता है। विकल्पों के मूल्यांकन में सामूहिक निश्चयन/अभिनिर्णय, दृष्टिकोणों की अपने व्यापक क्षेत्र सीमा के कारण वैक्तिक निर्णयों से श्रेष्ठ होते है। विकल्प के चयन में समूह अंर्तक्रिया एवं सहमति की प्राप्ति वैक्तिक निर्णयों की तुलना में निर्णय स्वीकारने में जोखिम को न्यून करता है।

**समूह निर्णयन तकनीके**—कई विधियां अथवा प्रक्रियायें है जो समूह द्वारा निर्णयन हेतु प्रयुक्त की जाती है। प्रत्येक विधि निर्णयन प्रक्रिया को किसी प्रकार से उन्नत करने हेतु अभिकल्पित की गयी है। कतिपय प्रमुख/सार्वलौकिक समूह निर्णयन विधियां, दिमागी झंझावत द्वंद्वात्मक अनुसंधान (पूछताछ), सांकेतिक (अवास्तविक) समूह तकनीक तथा डेल्फी विधि है।

1. **दिमागी झंझावत विधि**—दिमागी झंझावात समूह के सदस्यों के विचारों/सुझावों अथवा वैकल्पिक कार्य योजना के मौखिक सुझावों को समाहित करती है। दिमागी झंझावात सत्र प्रायः तुलनात्मकतः असंरचनात्मक होता है। इसके अंतर्गत उपस्थित स्थितियों को यथा आवश्यक विस्तार से वर्णित किया जाता है। जिससे कि समूह के सदस्य मुद्दे या समस्या के बारे में पूर्ण समझ रख सके। समूह

का नेता अथवा अनुदेशक तब समूह के सभी सदस्यों से विचार/सलाह याचित करता है। सामानयतया समूह नेता/अनुदेशक इन सुझावों/विचारों को आंकड़ों के चार्ट अथवा चिन्हक पर (मार्कर बोर्ड) पर अभिलेखित करता है। विकल्पों के सृजन का चरण विकल्पों के मूल्यांकन के चरण से इस प्रकार पूर्णतः भिन्न है कि जब तक समस्त विचार प्रस्तुत न हो जाये समूह के सदस्यों को सुझावों के मूल्यांकन की अनुमति नहीं हैं एक बार समूह सदस्यों के विचारों के उत्सत्रावित (निशेषित) हो जाने के पश्चात तब विभिन्न प्रस्तुत सुझावों के उपयोगिता का मूल्यांकन आरम्भ होगा। दिमागी झंझावात विधि यद्यपि विकल्पों के सृजन हेतु एक उपयोगी साधन/तरीका है किन्तु विकल्पों के मूल्यांकन अथवा प्रस्तावित/संभावित कार्य योजना के विषय में कुछ अधिक नहीं प्रस्तुत करता है।

2. **द्वंद्वात्मक अनुसंधान**—द्वंद्वात्मक अनुसंधान एक समूह निर्णयन तकनीक है जो विकल्पों के पूर्ण प्रतिश्रुति के सुनिश्चितीकरण पर केद्रित होती है। आवश्यकतः यह समूह को दो प्रतिद्वंदी पक्षों में विभाजित करती है जो प्रस्तावित समाधानों अथवा निर्णयों के गुण दोषों (लाभ–हानि) पर विमर्श करते है। इसी प्रकार की एक अन्य विधि डेविल्स एडवोकेसी में यह आवश्यक होता है कि समूह का एक सदस्य प्रस्तावित निर्णय को सम्भाव्य समस्याओं को रेखांकित करे। ये दोनो तकनीके यह प्रयास करने एवं सुनिश्चित करने हेतु अभिकल्पित की गयी है कि समूह ने अपने निर्णय की समस्त जटिलताओं पर विचार कर लिया है।

3. **सांकेतिक (अवास्तविक) समूह तकनीक**—सांकेतिक समूह तकनीक एक संरचना युक्त निर्णयन प्रक्रिया है जिसमें समूह के प्रत्येक सदस्य के लिये यह आवश्यक होता है कि वे अपने प्रस्तावित सुझावों/विकल्पों की एक व्यापक लिखित सूची निर्मित करे। सामान्यतया समूह के सदस्य अपने अपने विचार निजी रूप से अभिलेखित करते है। एक बार यह हो जाने पर प्रत्येक सदस्य अपनी सूची से एक मद (आइटम) क्रमवार प्रस्तुत करने हेतु आमंत्रित किये जाते है जब तक कि समस्त सुझाव/विचार अथवा विकल्प चार्ट अथवा चिन्ह पर अंकित न कर लिये जाये। इस अवस्था में मौखिक विमर्श सीमित ही होते है। सुझावों मूल्यांकन या आलोचनाओं हेतु तक ही ये विमर्श मौखिक हो सकते है। एक बार समस्त प्रस्तावों के सार्वजनिक रूप से प्रकाशित हो जाने पर समूह इन सूचित विकल्पों पर विमर्श में संलिप्त होता है। जो कि वरीयताओं के श्रेणी निर्धारण अथवा क्रम–निर्धारण के एक रूप में समाप्त होता है।

4. **डेल्पी तकनीक**—डेल्फी तकनीक एक समूह निर्णयन प्रक्रिया है जो इस दशा में उपयोग में लायी जा सकती जब समूह के सदस्य अलग–अलग स्थानों पर हो। डेल्फी समूह में सदस्यों को इस कारण से चुना जाता है क्योंकि वे समस्या (जो प्रबंध के समक्ष उपस्थित है) के संदर्भ में विशिष्ट ज्ञान अथवा विशेषज्ञता रखते है।

डेल्फी तकनीक में प्रत्येक सदस्य से स्वतंत्र रूप से समस्या के क्रामिक स्तरों में अपने विचार आंगत या वैकल्पिक समाधान प्रस्तुत करने को कहा जाता है। प्रक्रिया के प्रत्येक स्तर में समूह के अन्य सदस्य प्रश्न पूछते है, तथा विकल्पों को एक विशेष प्रकार से श्रेणीबद्ध या नियत किया जाता है। इस प्रकार अनियत चक्रों के पश्चात समूह सर्वश्रेष्ठ कार्य योजना के सर्वसम्मत निर्णय पर पहुँचता है। समूह

द्वारा अथवा समूह की अनुपस्थिति में लिये गये निर्णय क्रियान्वयन व्यक्तिगत रूप से प्रबंधकों द्वारा किया जाता है।

## 7.9 निर्णयन एवं सृजनात्मकता

रचनात्मकता (सृजनात्मकता) निर्णयन हेतु अत्यावश्यक (बहुमूल्य) है चाहे संगठनात्मक निर्णय हो अथवा व्यक्तिगत निर्णय यह अभिनवीकरण का प्रथम चरण है, जो कि संगठन की दीर्धकालिक सफलता हेतु अत्यावश्यक/बहुमूल्य है। व्यवसाय के संदर्भ में सृजनात्मकता से आशय नये विचारों, नयी विधियों अथवा नये उत्पादों/सेवाओं के सृजन (रचना) से है। निर्णयन में विकल्पों के विकास संभावनाओं के समृद्धिकरण तथा अंतिम परिणामों के दृश्यांकन हेतु रचनात्मकता आवश्यक हैं विकल्पों के सृजन, जो कि मूल्यांकन एवं पसंद हेतु विचारित किये जा सकते है में रचनात्मकता की भूमि का सर्वाधिक महत्व है। अद्वितीय (विशेष) अदुहराव की प्रवृत्ति वाली तथा एक (नवीन) बार की समस्याओं के समाधान हेतु रचनात्मकता आवश्यक है क्योंकि ये समस्याये पूर्व अनुभव अथवा ज्ञात विधियों से नहीं हल की जा सकती है। इस प्रकार रचनात्मकता ज्ञान कल्पना एवं मूल्यांकन का कार्य है।

सृजन प्रक्रिया निम्नलिखित अंर्तसम्बन्धित चरणों को समाहित करती है।

1. **संतृप्तता**—यह चरण सामान्यतया समस्या इसके इतिहास, महत्ता, व्यवसाय के अन्य भागों से सम्बन्ध तथा इसके निर्धारण के प्रति गहन परिचय (जानकारी) से प्रारम्भ होता है। यदि प्रबंधक वास्तविक समस्या के बारे में पूर्ण जागरूक है, तब वह उस दिशा में सोच सकता है जो समस्या के समाधान हेतु व्यावहारिक (उपयोगी) हो।

2. **तैयारी**—यह चरण सूचनाओं के संग्रहण, विश्लेषण एवं उनके उपयोग को समाहित करता है। महज ज्ञान नवीन विचारों का सृजन नहीं कर सकता। यहाँ व्यक्ति समस्या के प्रत्येक संबद्ध पहलू में गंभीरतापूर्वक तल्लीन होता है। यह सर्वाधिक निराशयुक्त चरण होता है। क्योंकि इसमें दिन, माह तथा यहाँ तक कि वर्षों भी लग जाते है।

3. **ऊष्मायन (सेना)**—कुछ समय तक, जिसे गर्भकाल भी कहा जाता है, प्रबंधक संग्रहित सूचनाओं पर विचार करता है तथा अपने अवचेतन मानस में निर्णयन करता है। वह निष्क्रिय दिखायी पड़ता है किन्तु वह समस्या के समाधान हेतु ठोस (समर्थ) निर्णय लेने हेतु अपने अवचेतन मानस में चल रहे विषय तथा अपने आस–पास की घटनाओं के मध्य सह सम्बन्ध स्थापन का प्रयत्न कर रहा होता है। यह चरण अभूतपूर्व अनूठे तथा अभिन्नता विकल्पों की खोज करने हेतु विभिन्न विचारण हेतु आमंत्रित किया जाता है।

4. **प्रदीप्ति (उद्‌बोधन)**—इस चरण में प्रबंधक समस्त संभावित समाधानों पर प्रत्येक क्षण विचार करता है वह खाते समय टहलते समय अथवा जब वह सोने जा रहा होता है तब भी सोचता है।

प्रायः एक तेज चमक (प्रदीप्ति) से अंर्तदृष्टि नवीन स्तर प्राप्त होता है। अनुभवी रचनात्मक जन प्रायः एक विचार स्मरण पुस्तक (नोट बुक) साथ रखते है जिससे वे इन अंर्तदृष्टि की चमक (प्रदीप्ति) को अभिलेखित कर सके।

5. **सत्यापन/प्रमाणीकरण**—यह रचनात्मक प्रक्रिया की अंतिम अवस्था है जो अध्ययनांतर्गत समस्या के समाधान हेतु विचारों के प्रमाणीकरण, रूपांतरण तथा संप्रयोजिकरण (लागू करना) को समाहित करता है। सृजन प्रक्रिया का यह बड़ी नाजुक अवस्था होती है, क्योकि नवीन विचार तब तक महत्वहीन है जब तक वे अपने पूर्ण रूप में न आ जाये तथा उन लोगों को उपलब्ध न हो जाये जो कि इसका उपयोग कर सकते है। यदि समाधान साध्य नहीं दिखते है तो यह आवश्यक हो सकता है कि समस्त या कुछ पूर्व के चरणों को वापस (पीछे) लिया जाये। कई अविष्कार एवं पुस्तके जो कालांतर में विशालतः सफल सिद्ध हुयी विभिन्न स्त्रोतों द्वारा अस्वीकृत कर दी गयी थी। हैरी पाटर एवं प्रतिलिपीकरण तकनीक दो ऐतिहासिक महत्व के मामले है।

## 7.10 निर्णयन एवं नियोजन

नियोजन एवं निर्णयन के मध्य निकट सम्बन्ध है। निर्णयन को नियोजन पर वरीयता (प्राथमिकता) प्राप्त है। यह सम्पूर्ण प्रबंध प्रक्रिया का आरम्भ बिंदु हैं एक निर्णय एक प्रकार की योजना होती है जो विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु संसाधनों की प्रतिबद्धता को समाहित करता है। पीटर एफ. डूकर के अनुसार यह उच्च स्तरीय प्रबंधन होता है जो समस्त रणनीतिक निर्णयों यथा व्यावसायिक उद्देश्य, वित्तीय व्यय साथ ही साथ परिचालन निर्णयों यथा मानव शक्ति का प्रशिक्षण के लिये उत्तरदायी होता है। प्रबंधन के निर्णयन के बिना कोई कार्य नहीं हो सकता तथा स्वभावतः संसाधन न निष्क्रिय एवं अनुत्पादक रह जायेगे। प्रबंधकीय निर्णय यथा संभव अधिकतम सही/उपयुक्त होने चाहिये। इस हेतु वैज्ञानिक निर्णयन आवश्यक है।

## 7.11 सारांश

निर्णयन के व्यावहारिक प्रतिमान द्वारा मानव व्यवहार की भूमिका एवं महत्व पर जोर दिया गया है। निर्णयन विकल्पों के मध्य से एक कार्य योजना का चुनाव है। यह नियोजन का सार है। प्रबंधकों को परिसीमित (बाधित तार्किकता) तार्किकता के आधार पर निर्णय लेना चाहिये। हालांकि उन्हे उन समस्त सीखों के आलोक में निर्णयन करना चाहिये जो उन्होंने स्थितियों से सीखी हो किंतु ऐसा नहीं हो सकता है।

क्योंकि एक कार्य योजना के सदैव विकल्प होते है सामान्यतया बहुत से प्रबंधकों को उन कुछ विकल्पों को संकुचित करना चाहिये जो सीमित साधनों से व्यवहारित होते है। ये वे साधन होते है जो ऐच्छिक उद्देश्यों के मार्ग में खड़े होते है। बाधा होते है। इसके बाद विकल्पों का मात्रात्मक एवं गुणात्मक साधनों के पदों में मूल्यांकित किया जाता है। कार्यक्रमित निर्णय संरचनात्मक समस्याओं एवं नैतिक निर्णयों हेतु उपयुक्त होते है। इस प्रकार के निर्णय विशेष रूप से निम्न स्तर के प्रबंधकों व गैर प्रबंधकों द्वारा लिये जाते है।

अ–कार्य क्रमिक निर्णय गैर संरचनात्मक समस्याओं एवं अ–नैत्यिक निर्णयों हेतु प्रयुक्त किये जाते है तथा विशेषतः उच्च स्तर के प्रबंधकों द्वारा लिये जाते है। जोखिम विश्लेषणों में निर्णयों के परिणामों को गणितीय सम्भाव्यता अधिन्यासित की जाती है। निर्णयन तकनीकी सीमांत विश्लेषण एवं लागत प्रभावोत्पादकता विश्लेषण को समाहित करती है। अनुभव, प्रयोगीकरण तथा शोध एवं विश्लेषण भी निर्णयन

में भूमिका का निर्वहन करते है। निर्णय वृक्ष निर्णय बिंदु अवसर घटना तथा प्रत्येक संभावित कार्य योजना की प्रायिकता को उद्घृत करता है। वरीयता सिद्धांत प्रबंधकों की जोखिम वहन की इच्छा को विचारित करता है। जटिल समस्याओं के समाधान में समूह उपयोगी भूमिका निभाता है। समूह निर्णय कई तकनीकों यथा दिमागी झंझावत, अवास्तविक समूह तकनीक वह डेल्फी तकनीक का प्रयोग विभिन्न विकल्पों के विकास हेतु करते है। सृजनात्मकता प्रबंधकों के विचार सृजन अभिनव एवं क्रियात्मक की क्षमता।

## 7.12 शब्दावली

**अस्पष्टता**—वह दशा जिसके अंतर्गत उद्देश्य अस्पष्ट, विकल्पों की पहचान कठिन तथा परिणामों के प्रति जानकारी अनुपलब्ध होती है।

**परिसीमित तार्किकता**—प्रबंधकों की पूर्णतः विवेकी निर्णय लेने की क्षमता जो विभिन्न घटकों यथा ज्ञानात्मक क्षमता (ज्ञान–संबंधी) समय की बाधा इत्यादि द्वारा सीमित होती है।

**दिमागी झंझावात**—एक तकनीक जो प्रबंधको को जितना संभव हो किसी विषय पर अनूठे विचारों को, बिना उनका मूल्यांकन किये, सृजित करने को प्रोत्साहित करती है।

**निश्चितता**—वह दशा जिसमें निर्णयकर्ता को समस्त आवश्यक सूचनाएं उपलब्ध होती है।

**पंसद करना**—पूर्व चिन्हित विकल्पों में से एक की पहचान करना।

**रचनात्मकता**—अभिनव, उद्देश्यपरक एवं क्रियात्मक विचारों को सृजित करने की क्षमता।

**निर्णय**—उपलब्ध विकल्पों में से चयन।

**निर्णयन**—यह एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक व्यक्ति इच्छित परिणामों की प्राप्ति हेतु विविध विकल्पों में से एक कार्य योजना (सर्वश्रेष्ठ) का चयन करता है।

**निर्णय वृक्ष**—श्रृंखलाबद्ध चरणों का एक चित्रीय उपकरण जिसका प्रयोग निर्णयों के मूल्यांकनों हेतु किया जाता है।

**डेल्फी तकनीक**—प्रश्नावली श्रृंखला के माध्यम से कई विशेषज्ञों की सहमति प्राप्त करने की एक विधि।

**नवोमेष/नवरचना**—नवीन विचार का विकास या परिचय कराना कार्य करने का नवीन ढंग /नवीन उत्पाद।

**अ–कार्य क्रमित निर्णय**—विशेष (अद्वितीय) असंरचनात्मक असंतोषजनक ढंग से परिभाषित जो संगठन को अत्यंत प्रभावित करते है।

**समस्या समाधान**—गतिविधि श्रृंखला जो कार्य योजना की प्राप्ति एवं क्रियान्वयन को समाहित करता है। यह निर्णयन, तथा निर्णय के क्रियान्वयन अनुश्रवण एवं रख–रखाव को सम्मिलित करता है।

**कार्यक्रमित निर्णय**—निर्णय जो पूर्व अनुमानित संरचनात्मक तथा आवर्ती हो।

**जोखिम**—विभिन्न विकल्पों से प्राप्त होने वाले परिणामों के साथ संबद्ध अवसर।

**अनिश्चितता**—वह दशा में जिसमें विकल्पों एवं भावी घटनाओं के विषय में अपूर्ण जानकारी ही उपलब्ध होती है।

## 7.13 बोध प्रश्न

**A. रिक्त स्थान की पूर्ति करे :**

1. .......................दी गयी परिस्थितियों में एक विशेष ढंग से व्यवहार करने अथवा सोचने को एक संचेजन पसंद है।
2. ..................... निर्णयन प्रक्रिया का अंतिम चरण है।
3. ........................निर्देशात्मक निर्णयन का प्रतिमान अथवा शास्त्रीय प्रतिमान भी कहा जाता है।
4. .................... प्रबंधकों की स्टाक के उचित स्तर एवं दिये जाने वाले आदेश के उचित आकार को चिन्हित करने में सहायता करता है।

**B. सही या गलत बताये :**

1. निर्णयन लेना भी एक निर्णय है।
2. निर्णय निश्चितता की स्थिति में नहीं लिये जाते है।
3. केवल संकटावस्था की दशा में निर्णय आवश्यक होता है।
4. अकार्य क्रमिक निर्णय लेने हेतु प्रबंधको की पहल आवश्यक है।
5. रणनीतिक निर्णय कार्य क्रमिक निर्णय होते है।
6. वास्तविक जीवन की स्थितियों में निर्णय कभी विवेकपूर्ण एवं उचित नहीं होते।
7. कार्य क्रमिक निर्णय पूर्व परिभाषित नीतियों एवं नियमों पर आधारित होते है।
8. व्यक्तिगत निर्णय कार्य क्रमिक निर्णय होते है।

## 7.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

A- (1) निर्णय 2. प्रतिपुष्टि सुनिश्चितीकरण,
3. विवेकपूर्ण/आर्थिक मानव प्रतिमान 4. आर्थिक आदेश मात्रा

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| B- | 1. | सत्य | 2. | असत्य | 3. | असत्य | 4. | सत्य |
| | 5. | असत्य | 6. | सत्य | 7. | सत्य | 8. | असत्य |

## 7.15 स्वपरख प्रश्न

1. निर्णयन से आप क्या समझते है? इसके प्राथमिक तत्व क्या है?
2. निर्णयन प्रक्रिया का वर्णन कीजिये।
3. परिसीमित विवेकपूर्णता/तार्किकता से क्या आशय है? परिसीमित तार्किकता की अगुवाई करने वाले तत्व कौन कौन से है?
4. निर्णयन प्रक्रिया के विभिन्न उपागमों का वर्णन कीजिये
5. वास्तविक जीवन में प्रबंधक तार्किक निर्णयकर्ता नहीं हो सकते वर्णन कीजिये।
6. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये :
   (a) निर्णय वृक्ष;
   (b) कटार सिद्धांत;
   (c) दिमागी झंझावात;

(d) रचनात्मकता एवं निर्णयन;

(e) सम–विच्छेद तकनीक;

## 7.16 सन्दर्भ पुस्तकें


1. W.H. Newman, C.E. Sumer and E.K Warren, The Process of Management-Concepts, Behaviour and Practice, New Delhi, Prentice Hall of India, 1990.
2. Harlod Koontz and Cyril 0' Donnell, Essentials of Management, New Delhi, Tata McGraw-Hill Book Company, 2000.
3. W. F. Glueck, Management, Hinsdale, Illinois, The Dryden Press, 1990.
4. R.A. Baron, Behaviour in Organisation, Boston, Allyn & Bacon, 2000.
5. Peter F. Drucker, Management; Tasks, Responsibilities and Practices, New Delhi, Allied Publishers, 1975.
6. D.A:Wren and D. Voich, Management, New York, John Wiley, 1990.
7. W.B. Stevenson, J.L. Pierce and L.W. Porter, The Concept of Coalition in Organisation Theory and Research, Academy of Management Review, (10) 1985.
8. Gupta, C.B.; Management Concepts and Practices, Sultan Chand and Sons, New Delhi.
9. Harold, Koontz and Weirich; Management, Tata McGraw Hill Publishing Company, New Delhi.
10. Prasad, L.M.; Principles and Practice of Management, Sultan Chand & Sons, New Delhi.
11. Stephen, P. Robbins and Mary Coulter; Management, Pearson Education, New Delhi.

# इकाई 8 स्टाफिंग एवं निर्देशन

**इकाई की रूपरेखा**


8.1 परिचय
8.2 स्टाफिंग
8.3 मानव संसाधन प्रबंध एवं कार्मिक प्रबंध
8.4 स्टाफिंग प्रक्रिया के तत्व
8.4.1 मानव शक्ति नियोजन
8.4.2 कार्य विश्लेषण
8.4.3 भर्ती
8.4.4 चयन
8.4.5 पद–स्थापन (नियोजन) एवं उन्मुखीकरण
8.4.6 प्रशिक्षण एवं विकास
8.4.7 निष्पादन आगणन
8.5 निर्देशन
8.5.1 निर्देशन की विशेषतायें
8.5.2 निर्देशन का महत्व
8.5.3 निर्देशन के तत्व
8.5.4 निर्देशन के सिद्धांत
8.5.5 निर्देशन की तकनीकें
8.6 सारांश
8.7 शब्दावली
8.8 बोध प्रश्न
8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
8.10 स्वपरख प्रश्न
8.11 सन्दर्भ पुस्तकें


## उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- स्टाफिंग के प्रबंधकीय कार्यों की प्रकृति का वर्णन कर सकें।
- स्टाफिंग प्रक्रिया एवं मानव शक्ति नियोजन प्रक्रिया को परिभाषित कर सकें।
- कार्य–विश्लेषण एवं प्रयोग जिस हेतु यह किया जाता है उससे जुड़े मुद्दों का वर्णन कर सकें।
- प्रशिक्षण एवं विकास विधियों के महत्व एवं प्रकार का वर्णन कर सकें।
- निर्देशन के आधार एवं प्रबंधकीय प्रभावशीलता में निर्देशन की भूमिका का वर्णन कर सकें।

## 8.1 प्रस्तावना

मानव सामग्री एवं मुद्रा उत्पादन के तीन प्रमुख साधन है, इन तीनों में से मानव को सर्वाधिक गतिशील उत्पादन का साधन माना जाता है और मानव के प्रयोग के अभाव में सर्वाधिक दक्ष प्रशासन (यंत्रों का समूह) अथवा उत्पादन के अन्य साधनों

का कोई उपयोग नहीं है। मानव प्रत्येक स्तर पर संगठन की रचना करता है तथा मानव अथवा मानवीय संसाधनों के कुशल प्रयोग से आंगत निर्गत में रूपांतरित किये जाते है, तथा संगठन को उसके लक्ष्य प्राप्ति हेतु समर्थ (समक्ष) बनाते है।
स्टाफिंग प्रक्रिया नियोजन के (रोजगार के) द्वारा मानव संसाधनों को आकर्षित करने विकास आवंटन, उपयोग, क्षतिपूर्ति तथा संरक्षण से सम्बन्धित है।
निर्देशन मानव संसाधनों को निर्देश देने मार्ग–दर्शन करने, अभिप्रेरण, परामर्श देने एवं नेतृत्व करने की एक प्रक्रिया है जिससे वे सांगठिक (संगठकात्मक) उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकें। इस इकाई में हम इन दो सिद्धांतों स्टाफिंग एवं निर्देशन, को विस्तार से विमर्शित करेंगे।

## 8.2 स्टाफिंग

स्टाफिंग का प्रबंधकीय कार्य, कर्मचारियों/कार्य–बलों को आवंटित (अभिन्यासित) भूमिकाओं को भरने हेतु कार्मियों (व्यक्तियों) के उचित एवं प्रभावी चयन, आंकलन एवं विकास के द्वारा संगठन संरचना में अमला पूरा करने (आदमियों से भरना) को सम्मिलित करता है।
स्टाफिंग व्यक्तियों का अधिगृहीत करने, विकसित करने, नियोजित करने, मूल्य निरूपण, पारिश्रमिक प्रदान करने तथा प्रतिधारण करने की प्रक्रिया है, जिससे सही प्रकार के व्यक्ति सही पद पर (सही स्थान पर) सही समय पर संगठन में उपलब्ध हो सकें।
थियों हैमन के अनुसार, स्टाफिंग अधीनस्थों की भर्ती, चयन, विकास एवं प्रतिपूर्ति (क्षतिपूर्ति) से सम्बन्धित है।
मैक्फाटलैण्ड के अनुसार, स्टाफिंग एक कार्य है जिसके द्वारा प्रबंधक व्यक्तियों की भर्ती चयन एवं उनके एक दक्ष कर्मचारी के रूप में विकास के द्वारा संगठन का निर्माण करते है।
एस बेंजामिन के अनुसार, स्टाफिंग को व्यक्तियों के कार्य पर पहचान, निर्धारण, नियोजन, मूल्यांकन एवं निर्देशन में सम्मिलित प्रक्रिया के रूप तें परिभाषित किया है।
इस प्रकार स्टाफिंग उन विस्तृत सीमा (क्षेत्र) की गतिविधियों को समाहित करता है, जिसके द्वारा संगठन में सांगठनिकरण की प्रक्रिया द्वारा रचित पद भरे जाते है।

**स्टाफिंग की प्रकृति**

**1. स्टाफिंग एक प्रमुख प्रबंधकीय कार्य है**—नियोजन, सांगठनिकरण, निर्देशन एवं नियंत्रण के साथ ही स्टाफिंग एक प्रमुख प्रबंधकीय कार्य है। उपरोक्त चारों (नियोजन, सांगठनिकरण, निर्देशन, नियंत्रण) का संचालन (परिचालन) मानव शक्ति पर निर्भर करता है, जो स्टाफिंग कार्य के द्वारा उपलब्ध होती है।

**2. स्टाफिंग एक व्यापक कार्य है**—स्टाफिंग का कार्य जहाँ व्यवसायिक गतिविधियों सम्पादित (संचालित) होती है, वहाँ प्रत्येक प्रबंधकों द्वारा एवं प्रत्येक उपक्रम द्वारा सम्पादित की जाती है।

**3. स्टाफिंग एक सतत कार्य है**—स्थानांतरण एवं पदोन्नति आदि के कारण स्टाफिंग कार्य संगठन के जीवनोपर्यात जारी रहता है।

**4. कार्मिकों का दक्ष (कुशल प्रबंधन) स्टाफिंग कार्य का आधार है**—भर्ती, चयन, नियोजन, प्रशिक्षण एवं विकास, पारिश्रमिक प्रदान करना इत्यादि वे प्रणाली या

उचित विधियाँ है, जिनके द्वारा मानव संसाधन को कुशलता पूर्वक प्रबंधित किया जा सकता है।

5. स्टाफिंग उचित व्यक्ति को उचित स्थान पर नियोजित करने में सहायता करता है। यह उचित भर्ती प्रक्रियाओं, तथा कार्य आवश्यकतानुसार सर्वाधिक उपयुक्त प्रतिभागियों को अंतिम रूप से चयनित कर के किया जा सकता है।

6. स्टाफिंग कार्य व्यवसाय की प्रकृति, कम्पनी के आकार, प्रबंधनों की योग्यता एवं दक्षता के अनुसार (उस पर निर्भरता के अनुसार) प्रत्येक प्रबंधक द्वारा निष्पादित की जाती है।

उदाहरणार्थः लघु कम्पनियों में सामान्यतः स्टाफिंग का कार्य उच्च प्रबंध द्वारा सम्पादित किया जाता है, जबकि मध्यम एवं विशाल उपक्रमों (उद्यमों) में यह कार्य कार्मिक विभाग द्वारा जा कि इस हेतु संरचित होता है, किया जाता है।

## 8.3 मानव संसाधन प्रबंध एवं कार्मिक प्रबंध

**मानव संसाधन प्रबंध**—मानव संसाधन प्रबंध मानव संसाधन के प्रबंध से सम्बन्ध रखता है, पर व्यक्ति एवं संगठनों को एक साथ लाने की प्रक्रिया है जिससे दोनों (प्रत्येक के) उद्देश्य (लक्ष्य) प्राप्त हों। यह व्यक्ति को एक संगठन में उत्पाद न का सर्वप्रमुख एवं उत्पादक धटक मानता है, इसलिये यह संगठन के लक्ष्यों को प्रभावी एवं कुशल (दक्ष) रीति से प्राप्त करने हेतु दक्ष कार्य बल को उपार्जित करने विकास करने एवं अनुरक्षण (बनाये रखने) की कला है।

जहाँ स्टाफिंग व्यक्ति की नियुक्ति से सम्बन्धित है वही मानव संसाधन प्रबंध उचित व्यक्ति (उपयुक्त) को उचित स्थान (कार्य) पर नियोजित करने से सम्बन्धित है, इस प्रकार मानव संसाधन प्रबंध स्टाफिंग से व्यापक है।

**मानव संसाधन प्रबंध (एच.आर.एम.) की प्रकृति**

1. एच.आर.एम. व्यापक प्रकृति का होता है। प्रत्येक संगठन में यह पूर्वनिश्चित होता है। यह प्रत्येक प्रबंधक द्वारा प्रत्येक स्तर पर सम्पादित किया जाता है तथा अकेले कार्यात्मक प्रबंधक का कार्य नहीं है।
2. यह एक प्रक्रिया है तथा इसमें कई कार्य/गतिविधियां अनुक्रम में की जानी आवश्यक होती है। यह कार्य (क्रिया) पर ध्यान केंद्रित करता है, न कि अभिलेखीकरण, लिखित प्रक्रियायें व नियमों पर।
3. यह मानव संसाधन कार्यात्मक प्रबंधकों द्वारा निष्पादित की जाने वाली सतत प्रक्रिया है हेतु मानव सम्बन्धों में स्थायी सर्तकता एवं जागरूकता तथा दैन दिन की परिचालन क्रियाओं में इनकों महत्व दिया जाना आवश्यक है।
4. यह समस्त प्रकार के संसाधनों के अनुकूलतम संदोहण (उपयोग) में सहायता करती है।
5. यह व्यक्ति उन्मुख होता है, यह कर्मचारियों को उनकी क्षमता को पूर्णरूप से विकसित करने में सहायता का प्रयत्न करता है।
6. यह व्यक्तिगत लक्ष्यों को सांगठनिक लक्ष्यों के साथ समन्वयित एवं संश्लेषित करता है तथा संगठन में विभिन्न स्तरों पर कार्यरत व्यक्तियों के मध्य सौहार्दपूर्ण (हार्दिक, आत्मिक) सम्बन्ध बनाता है। यह व्यक्ति उन्मुख होता है।

7. यह एक बहुविपक्षी (बहु अनुशासनात्मक) गतिविधि है, तथा यह मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, नृ–विज्ञान, अर्थशास्त्र से प्राप्त ज्ञान एवं आगत का उपयोग करता है।

**कार्मिक प्रबन्ध**—कार्मिक प्रबंध कार्यरत व्यक्तियों तथा उनके एक दूसरे के साथ (परस्पर) सम्बन्ध से सम्बन्धित है। इसे व्यक्तिगत एवं सांगठनिक लक्ष्यों को अधिकतम करने हेतु अभिकथित कार्यक्रमों, कार्य तथा गतिविधियों के समुच्चय के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यह आवश्यक रूप से यह देखने कि संगठन दक्ष, कल्पनाशील एवं प्रतिभाशाली व्यक्तियों को आकर्षित एवं सेवा में नियोजित कर रहा है, किन से सम्बन्धित है। यह कार्य कर्मचारियों से व्यवहार करने एवं उन्हें संगठन में बनाये रहने की नीतियों के स्थापना से सम्बन्धित है। इस हेतु यह कार्य–दशाओं, प्रतिपूर्ति योजनाओं का खाता बनाना, नियोक्ता कर्मचारी सम्बन्ध इत्यादि के सम्बन्ध में नियम स्थापित करता है।

**कार्मिक प्रबन्ध की प्रकृति**

1. कार्मिक प्रबन्ध व्यक्तियों, व्यक्तिगत रूप से एवं समूह रूप में, के लक्ष्य प्राप्ति से सम्बन्धित है। यह कार्मिकों के व्यवहार, भावनाओं एवं सामाजिक पहलुओं से भी सम्बन्धित है।
2. यह मानवीय संसाधनों यथा ज्ञान, क्षमताओं, दक्षताओं संभावनों (सामर्थ्य) और कर्मचारी लक्ष्यों की प्राप्ति एवं उपलब्धि तथा कार्य संतुष्टि को समाविष्ट करता है।
3. कार्मिक प्रबंध कर्मचारियों के प्रत्येक स्तर (निम्न, मध्यम एवं उच्च) तथा समस्त वर्गों (श्रेणी) (अकुशल, कुशल, तकनीकी, व्यावसायिक, लिपिकीय एवं प्रबंधकीय) को समाविष्ट करता है।
4. यह विश्व में संगठन के समस्त प्रकारों उद्योग, व्यापार सेवा, वाणिज्य, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं सरकारी विभागों के कर्मचारियों पर लागू होता है।
5. कार्मिक प्रबन्ध एक सतत एवं कभी समाप्त न होने वाली प्रक्रिया है।
6. इसका उद्देश्य संगठन के लक्ष्यों को (संगठनात्मक लक्ष्य, व्यक्तिगत लक्ष्य, एवं सामाजिक लक्ष्य) एकीकृत ढंग से प्राप्त करना होता है। सांगठनिक लक्ष्यों में लाभदायकता, उत्पादकता, अभिनवीकरण, उत्कृष्टता के साथ उत्तरजीविता, वृद्धि एवं विकास के लक्ष्य सम्मिलित हो सकते है। व्यक्तिगत कर्मचारियों के लक्ष्यों के अंतर्गत कार्य–संतुष्टि कार्य–सुरक्षा, उच्च वेतन आकर्षक, अनुशंगीलाओं, चुनौती पूर्ण कार्य, गर्व, स्थिति, पहचान (एदाति) विकास के अवसर इत्यादि को सम्मिलित किया जा सकता है।

   समाज के लक्ष्यों के अंतर्गत समान रोजगार अवसर सुविधाहीन वर्गों एवं शारिरिक रूप से दिव्यांग व्यक्तियों का संरक्षण, मजदूरी विभेदों को न्यून करना तथा विकासात्मक गतिविधियों के माध्यम से समान रूप से समाज का विकास इत्यादि को सम्मिलित किया जा सकता है।
7. कार्मिक प्रबन्ध प्रत्येक पंक्ति के प्रबंधकों का दायित्व तथा संगठन में स्टाफ प्रबंधकों को कार्य है।
8. यह कार्य में मानव–संसाधनों के प्रबंधन से विशेष रूप से सम्बन्धित है।

9. कार्मिक प्रबन्ध किसी संगठन की केंद्रीय उप–प्रणाली होती है तथा यह प्रत्येक प्रबंधकीय कार्यों, उत्पादन प्रबंध विपलन प्रबंध एवं वित्तीय प्रबंध में व्याप्त होती है।

10. कार्मिक प्रबंध का उद्देश्य पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु समस्त कर्मचारियों के पूर्ण (साफदिल, स्पष्ट ह्रदय से) सहयोग की प्राप्ति है।

**कार्मिक प्रबन्ध, कार्य.—कार्मिक प्रबन्ध दो कार्य समुच्चयों**

प्रबंधकीय कार्यों एवं प्रवर्तनशील (क्रियात्मक, कियाशील) कार्यों, को निष्पादित करता है। आइये इन्हें संक्षेप में विमर्शित करते है।

**1. प्रबंधकीय कार्य** —मूलभूत (प्राथमिक) प्रबंधकीय कार्य नियोजन, सांगठनिकरण निर्देशन एवं नियंत्रण से सम्बन्धित है।

**(a) नियोजन**—नियोजन भावी क्रियाविधि (कार्यवाही की योजना) एवं उन्हें प्राप्त करने के ढंग के निर्धारण को समाहित करता है। नियोजन कार्य के अंतर्गत कार्मिक प्रबंधक उद्यम की कार्मिक नीतियों एवं कार्यक्रमों की योजना तैयार करता है। ये नीतियाँ एवं कार्यक्रम आवश्यक कार्मिकों को अधिप्राप्ति विकास, प्रतिपूर्ति एवं अनुरक्षण में दक्षता एवं एकरूपता सुनिश्चित करने हेतु अभिकल्पित किये जाते है।

**(b) संगठनीकरण**—सांगठनीकरण विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु विभिन्न कार्यों एवं व्यक्तियों के मध्य प्राधिकार उत्तरदायित्व सम्बन्ध की संरचना की रचना की प्रक्रिया है। कार्मिक प्रबंध को एक साँगठनिक ढाँचे का निर्माण करना होगा जिससे कार्मिक विभाग के विभिन्न क्रियाशील कार्यों को प्रभावी ढंग से प्राप्त (पूर्व) किया जा सके।

**(c) निर्देशन**—निर्देशन से तात्पर्य संगठित क्रियाओं के आरम्भ एवं अनुरक्षण से है। इसके अंतर्गत उद्यम के कार्मिकों का पर्यवेक्षण एवं मार्गदर्शन सम्मिलित होते है। अपने विभाग के व्यक्तियों के प्रयत्नों के निर्देश के क्रम में कार्मिक प्रबंध नेतृत्व एवं सम्प्रेषण का अभ्यास करता है।

**(d) नियंत्रण.**—नियंत्रण यह सुनिश्चित करने का प्रयास करता है कि घटनाये (कार्यक्रम) योजनाओं को यथासंभव निकटता से निश्चित कर रहें है। नियंत्रण से तात्पर्य कर्मचारी के निष्पादन का मानकों से विचलन तथा इन विचलनों के सुधार से है।

**2. क्रियात्मक (कियाशील कार्य) कार्य**—कार्मिक प्रबंध के क्रियात्मक (कार्यशील) कार्य कार्मिकों के विशिष्ट कार्यो यथाः रोजगार, विकास, क्षतिपूर्ति, एकीकरण, अनुरक्षण, अभिलेख एवं शोध से सम्बन्धित है।

**(a) रोजगार**—अधिप्राप्ति अथवा रोजगार (नियोजन) संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु आवश्यक व्यक्तियों की उचित संख्या उवं प्रकार के नियोजन से सम्बन्धित है। यह श्रम–शक्ति के (कार्मिकों के) श्रम–शक्ति नियोजन, भर्ती, चयन एवं स्थापन से सम्बन्धित है। यह कार्य आवश्यक योग्यताओं (गुणों) से युक्त व्यक्तियों से विभिन्न पदों को पूरित (भरना) करना है।

**(b) विकास**—यह कर्मचारियों के कौशल, ज्ञान, रचनात्मक योग्यता, उपयुक्तता, रवैये (रूर) इत्यादि को उन्नत करने, ढालने, परिवर्तित करने एवं विकास करने की प्रक्रिया है जिससे इन कर्मचारियों को दक्ष (कुशल) कर्मचारी बनाया जा सके।

**(c) क्षतिपूर्ति (सम्पूर्ति**–क्षतिपूर्ति (सम्पूर्ति) कार्य के अंतर्गत सॉंगठनिक उद्देश्यों की प्राप्ति में कर्मचारियों के योगदान के लिये उचित एवं न्यायसंगत (निष्पक्ष) पारिश्रमिक सम्मिलित है। विभिन्न प्रकार के कर्मचारियों के लिये न्याय संगत पारिश्रमिक निर्धारण में, कार्य–मूल्यांकन, निष्पादन आगणन, तथा मजदूरी एवं वेतन प्रशासन की अन्य तकनीकें उपयोगी होती है। मौद्रिक क्षतिपूर्ति के अतिरिक्त कई प्रकार के गैर मौद्रिक भुगतानों तथा आवासीय, चिकित्सा, परिवहन एवं अनुलाभ को भी प्रदान (भुगतान किया जा सकता है।)

**(d) एकीकरण**—एकीकरण कर्मचारियों के हितों का सॉंगठनिक लक्ष्यों के साथ सामंजस्य से सम्बन्धित है। इसके अंतर्गत प्रबंध एवं श्रमिकों (कामगारों) के मध्य द्विमार्गीय सम्प्रेषण की एक दक्ष प्रणाली के स्थापन द्वारा सुदृढ़ औद्योगिक सम्बन्ध के निर्माण से सम्बन्धित है। कार्मिक विभाग को औद्योगिक अनुशासन, औद्योगिक शांति, कर्मचारियों की परिवेदना का निवारण, सामूहि सौदेबाजी, प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता को सुनिश्चित करने हेतु श्रम–संधों से सम्पर्क (सम्बन्ध, सहकार) बनाना चाहिये।

**(e) अनुरक्षण**—अनुरक्षण कार्य के अंतर्गत उचित कार्य–दशाओं के निर्माण को सम्मिलित किया जाता है, जिससे कार्मिक सम्पर्ण एवं दक्षता से कार्य कर सके। सुदृढ़ कार्य–दशायें स्वास्थ्य, सुरक्षा, कल्याण, अभिप्रेरण, तथा कर्मचारियों के उत्साह (मनोबल) के अतिरिक्त वायु–संचार, प्रकाशित व्यवस्था, शोर, तापमान, साफ–सफाई इत्यादि तथा कलयाण उपायों यथा बच्चों की शिक्षा मनोरंजन, खेल, जलपान गृह, विश्राम गृहो, समूह बीमा आदि की सुनिश्चित में सहायता करती है। ये कल्याण सेवाये, जो कर्मचारियों के शारीरिक एवं सामाजिक कल्याण को सुनिश्चित करती है, कार्मिक विभाग द्वारा नियोजित एवं प्रशासित होती है।

**(f) अभिलेख एवं शोध**—अनुपस्थिति कर्मचारी उत्पादन, औद्योगिक दुर्घटनायें, औद्योगिक विवाद, मजदूरी भुगतान, परिवेदनाओं इत्यादि का प्रणालीकृत (सुव्यवस्थित) एवं परिवर्धित अभिलेख उचित कार्मिक नीतियों एवं कार्यक्रमों के निर्धारण में उच्च प्रबंधन के सहयोग हेतु आवश्यक है। कार्मिक शोध के अंतर्गत कार्मिक समस्याओं के कारण यथा अनुपस्थिति श्रम–उत्पादन, दुर्घटना, औद्योगिक विवाद की पहचान हेतु सम्बन्धित आकड़ों के संग्रहण एवं विकीर्णन सम्मिलित है।

## 8.4 स्टाफिंग प्रक्रिया के तत्व

स्टाफिंग प्रक्रिया के अंतर्गत निम्नलिखित तत्व/चरण सम्मिलित है

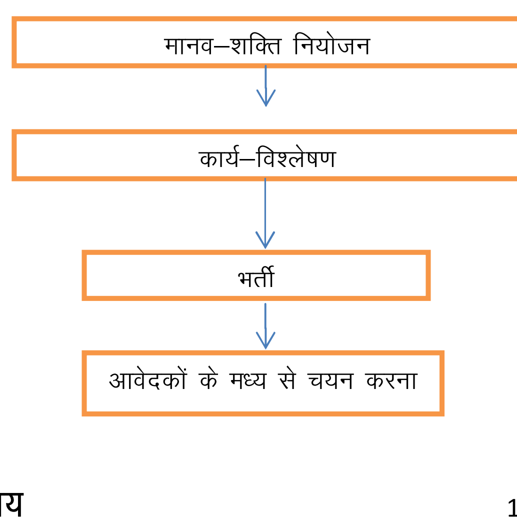

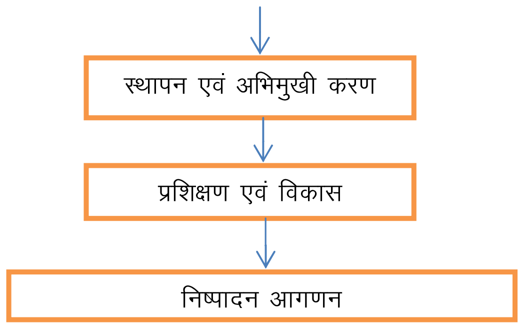


**चित्र : 8.1 स्टाफिंग कार्य**

**चरणों (तत्वों) की विस्तृत व्याख्या**

**8.4.1. मानव–शक्ति नियोजन**—स्टाफिंग क्रिया का प्रमुख कार्यसंगठन में उचित प्रकार के मानव–शक्ति संसाधनों की अधिप्राप्ति विकास एवं उपयोग है। स्टाफिंग प्रक्रिया का प्रथम चरण कार्य–आवश्यकताओं एवं माँग के अनुसार (अनुरूप) आवश्यक मानव शक्ति का नियोजन है। अतः यह सम्बन्धित संगठन के भावी मानव–शक्ति आवश्यकताओं के आकलन (पूर्वानुमान) एवं निर्धारण को समाहित करती है।

एडविन फिल्प्पों.—मानव शक्ति नियोजन कार्यक्रम को संगठन की इसके प्रबंध के साथ (सम्बन्ध) यथानिर्धारित, यथा आवश्यक अधिशासी प्रतिभा को प्रदान करने की योग्यता के आगणन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

मानव–शक्ति नियोजन के मूलभूत तत्व निम्नलिखित है—

1. मानव–शक्ति की भावी आवश्यकताओं का पूर्वानुमान–
2. सुदुढ़ भर्ती एवं चयन प्रक्रिया को विकसित करना–
3. उपलबध मानव–शक्ति का उचित संदोहण (उपयोग)
4. मानव शक्ति लागतों का नियंत्रण एवं पुनरीक्षण।

मानव–शक्ति का नियोजन अल्प अवधि तथा दीर्घावधि के लिये हो सकता है। अल्प अवधि श्रम शक्ति नियोजन वर्तमान दशाओं में कम्पनी के उद्देश्यों को प्राप्त कर सकता है। दीर्ध अवधि मानव शक्ति नियोजन भविष्य में स्टाफ–सदस्यों की आवश्यकता के आंकलन (प्रावकलन पूर्वानुमान) से सम्बन्धित होनी चाहिये।

निम्नलिखित बिंदु मानव–शक्ति नियोजन की महत्ता एवं अभिप्राय को रेखांकित करती है।

मानव–शक्ति नियोजन, एक संगठन की दीर्घावधि में मानव–शक्ति की आवश्यकताओं का पूर्वानुमान करता है। यह कार्मिक नीति जो कि उचित प्रकार के कार्य के लिये उचित प्रकार के व्यक्तियों की अधि प्राप्ति एवं चयन से सम्बन्धित होती है, को मजबूत आधार प्रदान करता है। यह विशेष रूप से वर्तमान मानव–शक्ति की आवश्यकताओं के पूर्वानुमान एवं वर्तमान मानव–शक्ति को भविष्य की रिक्तता को पूरित करने हेतु विकसित कर, अत्यधिक कार्मिक लागतों को न्यून करने में सहायक होता है।

यह वर्तमान कार्मचारियों को अभिप्रेरित करता है तथा संगठन में उनके विकास में विशेष रूप से सहायक है। मानव–शक्ति नियोजन वर्तमान कर्मचारियों की प्रशिक्षण आवश्यकताओं की पूर्ति करती है, जो उनके निष्पादन को उन्नत बनाती है।
यह कामगारों के मध्य आंतरिक प्रबंध अनुक्रम (पदारोहण) की प्रक्रिया के विकास में सहायक होता है। मानव शक्ति नियोजन सम्पूर्ण संगठन में मानव–संसाधन प्रबंध की महत्ता (महत्व) के विषय में सामान्य (आम) जागरूकता लाता है।

**8.4.2 कार्य विश्लेषण**—कार्य–विश्लेषण कार्य के सावधानीपूर्वक अध्ययन से सम्बन्धित है। यह कार्य में संगठित समस्त ज्ञात एवं निर्धारक घटकों, इनके निष्पादन में सम्मिलित कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व वे दशायें जिनके अंतर्गत निष्पादित किया जाना है, कार्य की प्रकृति पर, श्रमिकों (कामगारों/कार्मिकों) हेतु आवश्यक योग्यताओं तथा रोजगार की शर्तों यथा भुगतान घण्टे (भुगतान समय) अवसर एवं विशेष अधिकार, का सम्पूर्ण अध्ययन है। कार्य–विश्लेषण द्वारा एकत्रित सूचनायें कार्य एवं कार्यधारी को सम्बन्धित करती है। कार्य से सम्बन्धित आवश्यकताओं को कार्य विवरण (निरूपण) से तथा कार्यधारी हेतु आवश्यक योग्यताओं (गुणों) को कार्य–विनिर्देश कहा जाता है। कार्य विश्लेषण की प्रमुख विषय–वस्तु निम्नलिखित है।

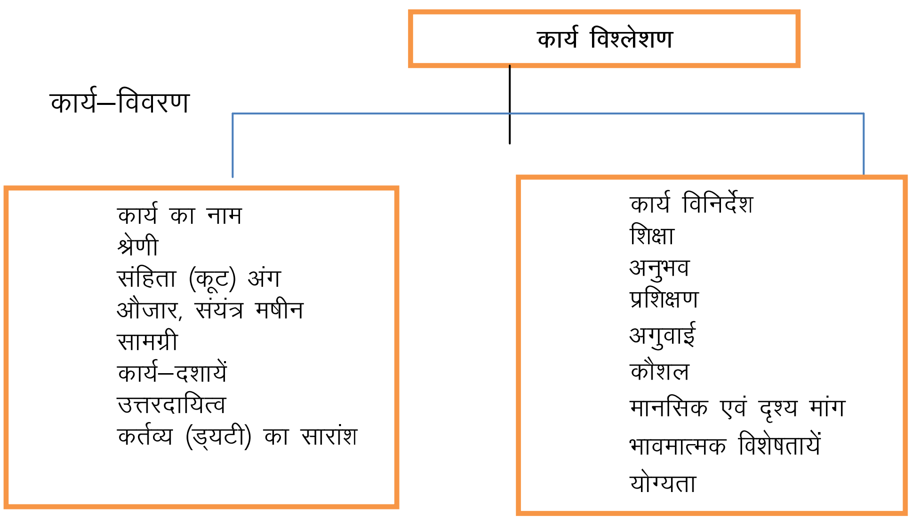


**चित्र 8.2 : कार्य विश्लेषण के घटक**

इस प्रकार कार्य–विश्लेषण कार्य के निगरानी करने एवं इसके विषय में प्रासंगिक (उचित) तथ्यों के संग्रहण की प्रक्रिया है। इसलिये कार्य–विश्लेषण निम्नलिखित क्षेत्र है—

1. कार्य–अभिज्ञान (पहचान)
2. कार्य की विशेषतायें–
3. विशिष्ट संचालन एवं कार्य
4. प्रयुक्त सामग्री एवं उपकरण
5. कार्य किस प्रकार निष्पादित है
6. कार्य दशायें
7. व्यक्तिगत गुण
8. पदोन्नति रेखा (पंक्ति)

**कार्य विश्लेषण की विधिया**– कार्य विश्लेषण हेतु मुख्यतः निम्नलिखित विधियाँ प्रयोग में लायी जाती है।

**1. प्रश्नावली विधि (पद्धति**– इस पद्धति में कार्य के विषय में तथ्य रखने वाले कर्मचारियों के मध्य एक प्रश्नावली संचारित (प्रचलित) की जाती है। यह पद्धति अत्यधिक (अति) असंतोषजनक है। क्योंकि यह कार्यधारियों की सूचना देने की योग्यता पर अधिक विश्वास रखती है। यह विधि लिपिकीय कर्मचारियों के लिये सर्वथा उपयुक्त है। यह एक समय साध्य एवं श्रम–साध्य कार्य है।

**2. प्रेक्षण**—कार्य–विश्लेषण कार्यधारियों को जब वे कार्य कर रहे हो प्रेक्षण (अवलोकन) करता है। व्यक्तिगत अवलोकन (प्रेक्षण) द्वारा विश्लेषक पदधारी से जुड़े तथ्यों कि वह किस प्रकार कार्य करता है, को जान सकता है। साधारण एवं दोहराव पूर्ण (पुनरावृत्ति) कार्यों की दशा में यह विधि सर्वथा उपयुक्त विधि है। यह खर्चीली एवं धीमी विधि है।

**3. साक्षात्कार**—कार्य–विश्लेषक कार्य के सम्बन्ध में सूचना प्राप्त करने हेतु कार्यधारियों का साक्षात्कार आयोजित करता है। व्यक्तिगत प्रेक्षण के साथ युग्मित यह विधि कार्य–विश्लेषण की सर्वोत्कृष्ट विधि है। हालांकि साक्षात्कार आयोजित करना एक कला हैं तथा साक्षात्कार लेने वाले को कार्य के बारे में अधिकतम सूचना प्राप्त करने हेतु साक्षात्कार देने वाले की भाषा में प्रेक्षण संयुग्मित साक्षात्कार कार्य विश्लेषण की प्रचलित पद्धति है।

**कार्य–विश्लेषण के उपयोग**—व्यवस्थित कार्य–विश्लेषण से निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते है।

**1. मानव–शक्ति नियोजन**—यह श्रम आपूर्ति के विकास में सहयोग करता है क्योंकि श्रम–आवश्यकतायें स्पष्ट पदों में वर्णित (दी गयी) होती है।

**2. भर्ती एवं चयन**—यह कर्मचारियों की भर्ती एवं चयन में मार्गदर्शन प्रदान करता है। क्योकिं कार्य की आवश्यकतायें साकार रूप में (यथार्थपूर्ण) वर्णित होती है। ये विश्वसनीय आँकड़े प्रदान करता है। जिसके आधार पर कर्मचारी चयनित होते है। यह विभिन्न पदों के लिये उपयुक्त परीक्षण (परीक्षा) के चयन में सहायता करता है।

**3. पदोन्नति एवं स्थानांन्तरण**—यह वर्तमान कर्मचारियों की पदोन्नति एवं स्थानांन्तरण हेतु मूल्यांकन में सहायता करता है। यदि कार्य के सम्बन्ध में सूचना प्राप्त (उपस्थित) है, तो कर्मचारी बिना किसी जटिलता के एक विभाग से दूसरे विभाग में स्थानान्तरित किये जा सकते है।

**4. प्रशिक्षण एवं विकास**—कार्य सूचना प्रशिक्षण एवं विकास कार्यक्रमों के अंर्तवस्तु विषय (परितृप्ति) तथा विषय–वस्तु के निर्धारण में सहायता करती है। यह कर्मचारियों में अदक्षता तथा कमजोरी का पता लगाने में सहायता करती है। तथा इसके अतिरिक्त प्रशिक्षण योजनाओं (कार्यक्रमों) के सुझाव देने में सहायता करती है।

**5. कार्य–मूल्यांकन**—कार्य–विश्लेषण अन्य कार्यों के सम्बन्ध में कार्य–विशेष के महत्व का मूल्यांकन करने हेतु आंकड़ें प्रदान करता है। जिसके आधार पर कार्य हेतु वास्तविक मजदूरी निश्चित की जाती है।

**6. निष्पादन आगणन**—कार्य–विश्लेषण निष्पादन आगणन में सहायता करता है। कार्य विश्लेषण द्वारा प्राप्त सूचनाओं के आधार पर कर्मचारियों के लिये निष्पादन मानक तय किये जा सकते है तथा वास्तविक निष्पादन की तुलना मानक निष्पादनों से की जा सकती है। यह कर्मचारियों के मूल्य न्याय निर्णयन में प्रबंध की सहायता करता है।

**7. कार्य–सरलीकरण**—यह कार्य सरलीकरण विधियों एवं कार्य स्थान के उन्नयन (सुधार) के विषय में सूचना प्रदान करता है। यह कर्मचारियों की दक्षता बढ़ता है तथा श्रम–लागतों को न्यून करने में सहायता करता है।

**8. मजदूरी विभेदक (अवकल/विशेषक) तय करना**—कार्य–विश्लेषण विभिन्न कार्यों के लिये मजदूरी विभेदक (विशेषक) तय करने में सहायता करता है। क्योंकि कार्य–विश्लेषण द्वारा विभिन्न कार्यों के निष्पादन में सम्मिलित जोखिम एवं संकट (बाधा) प्रदर्शित होते है।

**9. विविध उपयोग**—उपरोक्त लाभों के अतिरिक्त कार्य–विश्लेषण निम्नलिखित कार्यों में सहायता करता है।

(1) कार्य–अभिकल्पन एवं कार्य पुर्न संगठन में–

(2) हानिकारक दशाओं एवं अस्वास्थ्यप्रद वातावरण की पहचान द्वारा स्वास्थ्य एवं सुरक्षा में–

(3) उत्पादन मानकों, उत्तरदायित्व प्राधिकार अधिष्ठापन (प्रवर्तन) कार्य–भार में।

कार्य–विवरण (निरूपण).—कार्य विवरण कार्य विश्लेषण का तात्कालिक (त्वरित) परिणाम होता है। यह निष्पादन किये जाने वाले कार्य, सम्मिलित दायित्व, आवश्यक प्रशिक्षण, कार्य–दशाएँ तथा अन्य कार्यो के साथ सम्बन्ध का वर्णन करता है। कार्य–विवरण का उद्देश्य इसे अन्य कार्यों के साथ विभेदित करना है। कार्य–विवरण के प्रमुख विषय–वस्तु निम्नांकित है।

**कार्य का नाम**

1. श्रेणी
2. संकेतिकी संख्या
3. औजार, उपकरण, मशीन
4. सामग्री
5. कार्य दशाएं
6. उत्तरदायित्व
7. कर्तव्यों का सारांश

**कार्य विनिर्देशन**—कार्य–विनिर्देशन कार्य सम्पादित करने हेतु आवश्यक मानवीय योग्यताओं से सम्बन्धित है। कार्य–विनिर्देशन कार्य जितना सरल नहीं है। एक कार्य विनिर्देशन कार्य विवरण के आधार पर तैयार किया जाता है। ये योग्यतायें (गुण) किसी कार्य के सफल कार्य विवरण हेतु अत्यावश्यक है।

ये गुण प्रबंधक के लिये कर्मचारियों के चयन के समय मार्ग दर्शन का कार्य करते है। कार्य विनिर्देयान में प्रायः (सामान्यतया) निम्नलिखित तत्व समाहित होते है।

1. शिक्षा
2. अनुभव
3. प्रशिक्षण

4. पहल (अगुवाई)
5. कौशल
6. मानसिक एवं दृश्य मांग
7. योग्यता
8. अनुकूलता

**8.4.3 भर्ती**—एक बार भर्ती अधिसूचित (प्रकाशित) हो जाती है, तो संगठन इच्छित अभ्यर्थियों को दिये गये आमंत्रण के अनुसार आमंत्रित एवं मांग करता है। (प्रार्थना करता है) भर्ती वास्तविक एवं पूर्वापेक्षित रिक्तियों हेतु क्षमतावान आवेदकों के खोज की प्रक्रिया है। उन व्यक्तियों की खोज करना जो नियुक्ति हेतु विचारित किये जा सकते है। भर्ती की प्रक्रिया कहलाती है।

**भर्ती**—सामान्यतः भर्ती के दो प्रकार होते है। आंतरिक एवं बाहय।

**आंतरिक भर्ती**—आंतरिक भर्ती भर्ती का वह प्राकर है जिसके अंतर्गत संगठन के अंदर (भीतर) से ही भर्ती होती है।
भर्ती के आंतरिक स्त्रोत संगठन के भीतर सरलता से उपलब्ध होते है। आंतरिक स्त्रोत सामान्यतः तीन होते है—
1. स्थानान्तरण, 2. पदोन्नति 3. पुर्ननियोजन (भूतपूर्व कर्मचारियों का)
आंतरिक भर्ती कर्मचारियों की उत्पादकता बढ़ा सकती है। क्योंकि इससे उनका अभिप्रेरण स्तर बढ़ता है। यह समय धन एवं प्रयास की बचत करता है। किंतु आंतरिक भर्ती की एक कमी यह है कि ये संगठन को नवीन प्रतिभाओं (क्षमता व्यक्तियों) से प्रतिबंधित करती है। समस्त मानव शक्ति आवश्यकतायें आंतरिक भर्ती से पूरी भी नहीं की जा सकता है। मुख्यतया आंतरिक स्त्रोत निम्नलिखित है।
(1) स्थानांतरण–
(2) पदोन्नति (आंतरिक कार्य पदस्थापन द्वारा)
(3) भूतपूर्व कर्मचारियों का पुर्ननियोजन भूतपूर्व कर्मचारियों का पुर्ननियोजन आंतरिक भर्ती के स्त्रोतों में से एक है जिसके अंतर्गत कर्मचारियों को संगठन की रिक्तियों को भरने हेतु आमंत्रित एवं नियुक्त किया जा सकता है। कतिपय परिस्थितियाँ ऐसी होती है जिनमें भूतपूर्व कर्मचारी अयाचित (अप्रार्थित) प्रार्थनापत्र भी देते है।

1. **कारखाना स्तर पर नियोजन (रोजगार)**—वह बाह्य भर्ती का स्त्रोत है जिसके अंतर्गत रिक्तियों के प्रार्थना पत्र (आवेदन पत्र) कारखाने के बाहर अथवा फाटक पर सूचना पट्ट पर प्रदर्शित किये जाते है।
भर्ती का यह प्रकार प्रायः वहाँ लागू होता है, जहाँ कारखाने के श्रमिकों को नियुक्त किया जाता है। ऐसे व्यकित्त होते है जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर कार्य निवेदन करते रहते है। इन आवेदकों को अन्प्रर्थित आवेदक कहा जाता है। इस प्रकार के श्रमिक अपने कार्य के लिये स्वयं ही आवेदन करते है। इस प्रकार की भर्ती हेतु श्रमिक (कामगार) एक कारखाने से दूसरे कारखाने में परिवर्तित (स्थानांतरित बदलते रहने) होते रहने की प्रवृत्ति रखते है। अतः इन्हें बदली कामगार (श्रमिक) कहते है।

2. **विज्ञापन**—यह भर्ती बाह्य स्त्रोत है, जो भर्ती प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। विज्ञापन का सबसे बड़ा (अच्छा प्रमुख) लाभ यह है कि यह व्यापक क्षेत्र

को समाहित (प्रसरित) करता है तथा बिखरे हुये (विकीर्ण)/फैले हुये अभ्यर्थी विज्ञापनों के द्वारा सूचना प्राप्त कर सकते है। विज्ञापन के हेतु प्रयुक्त प्रमुख माध्यम छपाई माध्यम एवं इलेक्ट्रानिक माध्यम है जिनके अंतर्गत क्रमशः समाचार पत्र एवं दूरदर्शन (टेलीविजन) है।

3. **रोजगार केंद्र**—सरकार द्वारा संचालित कतिपय रोजगर केंद्र है। अधिकांश सरकारी उपक्रम एवं संगठन इन्हें केन्द्रों के माध्यम से व्यक्तियों को नियोजित करते है। इन दिनों सरकारी अभिकथनों में भर्ती रोजगार केन्द्र के माध्यक से होना अनिवार्य हो गया है।

4. **रोजगार (नियोजन) अभिकरण**—कतिपय नियोजन अभिकथन होते है, जो व्यक्तियों की भर्ती एवं नियोजन का कार्य देखते है। निजी व्यक्तियों द्वारा संचालित ये निजी अभिकरया जरूरतमंद संगठनों को आवश्यक मानव शक्ति की आपूर्ति करते है।

5. **शैक्षणिक संस्थान**—कतिपय पेशेवर (व्यवसायिक) शैक्षणिक संस्थान होते है, जो अपने संस्थान के नव स्नातकों के द्वारा भर्ती के बाह्य स्त्रोत के रूप में सेवा–प्रदान करते है। इन शिक्षण संस्थानों के द्वारा की गयी भर्तियों को परिसर भर्ती (कैम्पस रिक्रूटमेण्ट) कहा जाता है। वे भर्ती हेतू एक विशेष भर्ती प्रकोष्ठ रखते हैं जो नये अभ्यर्थियों को कार्य (रोजगार) प्रदान करने में सहायता करते है।

6. **संस्तुतियां**—कतिपय व्यक्ति क्षेत्र विशेष में विशेषज्ञता धारित करते हैं ये कम्पनी में ख्याति एवं आधार रखते है। कुछ ऐसी रिक्तियां होती है, जो ऐसे व्यक्तियों की संस्तुति के द्वारा भरे जाते है। इस स्त्रोत का सबसे प्रमुख दोष यह है कि कम्पनी को ऐसे व्यक्ति पर पूर्णतः विश्वास (भरोसा) करना होता है जो कालांतर में अक्षम सिद्व हो सकते है।

7. **श्रम–संविदाकार**—ये विशेषज्ञ व्यक्ति होते है। जो कारखानों अथवा निर्माणी संयत्रों को मानव शक्ति की आपूर्ति करते है। ये संविदाकार संविदा आधार पर नियुक्त किये जाते है, जो एक विशेष समयावधि के लिये होती है उस दशा में जब ये संविदाकार संगठन को त्यागते (छोड़ते) है तो इनके द्वारा नियुक्त व्यक्तियों को भी संगठन छोड़ना पड़ता है।

**8.4.4 चयन**—चयन स्टाफिंग की अनुवीक्षण (संविदा, जाँच, छानबीन) प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत याचित (आवेदित) प्रार्थना पत्र को छाँटने का कार्य किया जाता है तथा उपयुक्त/योग्य अभ्यर्थियों को आवश्यकतानुसार नियुक्त किया जाता है।

कर्मचारी चयन उपयुक्त (उचित) व्यक्ति को उचित स्थान पर रखने की प्रक्रिया है। यह संगठनात्मक आवश्यकताओं के व्यक्तियों की योग्यता एवं कौशल के साथ मेल कराने की प्रक्रिया है।

प्रभावशाली चयन तभी किया जा सकता है जब कि प्रभावकारी मिलान (मेल) हो। आवश्यक कार्यों हेतु सर्वश्रेष्ठ अभ्यर्थियों के चयन द्वारा संगठन कर्मचारियों की गुणवक्तापरक निष्पादन प्राप्त करेगा। किंतु चयन अवश्य ही भर्ती से विभेदित किया जाना चाहिये, हालांकि ये रोजगार (नियोजन) प्रक्रिया के दो चरण है। भर्ती को एक सकारात्मक प्रक्रिया माना जाता है, क्योकि यह अधिकालिक अभ्यर्थियों को कार्य हेतु आवेदन करने को अभिप्रेरित करती है। यह अभ्यर्थियों के समुच्चय (संघ) की रचना करती है। यह आँकड़ों का साधन (मूल) मात्र है।

जबकि चयन एक नकारात्मक प्रक्रिया है क्योंकि इसमें अनुपयुक्त अभ्यर्थियों को छाँटा जाता है। भर्ती, स्टाफिंग प्रक्रिया में, चयन से पहले आता है। चयन के अंतर्गत आवश्यक कार्यों हेतु सर्वश्रेष्ठ योग्यतओं, कौशल तथा ज्ञान युक्त अभ्यर्थियों को सम्मिलित करता है।

**कर्मचारी चयन प्रक्रिया**—कर्मचारी चयन प्रक्रिया निम्नलिखित क्रम में व्यवस्थित होती है—

1. **प्रारम्भिक साक्षात्कार.**—यह विधि उन अभ्यर्थियों को निकालने (हटा देने दूर करने) के लिये प्रयुक्त की जाती है जो कि संगठन द्वारा स्थापित (निर्धारित) न्यूनतम योग्यता को नहीं पूर्ण करते है। साक्षात्कार के दौरान अभ्यर्थी की दक्षता, शैक्षणिक एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि, योग्यता एवं रूचि का परीक्षण किया जाता है। प्रारम्भिक साक्षात्कार अंतिम साक्षात्कार की अपेक्षा अल्प औपचारिक एवं नियोजित होते है। अभ्यर्थियों को कम्पनी के बारे में तथा कार्य प्रालेख (रेखाचित्र, वर्णन) के विषय में संक्षिप्त जानकारी प्रदान की जाती है तथा यह भी परीक्षण किया जाता है, कि अभ्यर्थी कम्पनी के बारे में कितनी जानकारी रखते है।
प्रारम्भिक साक्षात्कार को अनुवीक्षण (संविक्षा) साक्षात्कार भी कहा जाता है।

2. **आवेदन रिक्त–स्थान**—जो अभ्यर्थी प्रारम्भिक साक्षात्कार को उत्तीर्ण कर लेते है, उनकों एक आवेदन रिक्तिक (रिक्त स्थान) भरना आवश्यक होता है। इसमें अभ्यर्थियों के आँकड़ों अभिलेख यथा उम्र, योग्यतायें, पूर्ण कार्य छोड़ने (त्यागने) का कारण अनुभव आदि की विस्तृत जानकारी सम्मिलित होती है।

3. **लिखित परीक्षण**—चयन प्रक्रिया के दौरान आयोजित किये जाने वाले लिखित परीक्षणों में अभिरूचि परीक्षण, बुद्धिमता–परीक्षण, तर्क–शक्ति परीक्षण, व्यक्तित्व परीक्षण इत्यादि सम्मिलित होते हैं। ये परीक्षण क्षमतावान अभ्यर्थियों के वस्तुनिष्ठ निर्धारण (आंकलन) हेतु प्रयुक्त होते है। उन्हें पूर्वाग्रही नहीं होना चाहिये।

4. **नियोजन साक्षात्कार**—यह साक्षात्कार लेने वाले एवं अभ्यर्थी के बीच वैक्तिक (आमने–सामने का) अन्योन्य क्रिया (अंतः क्रिया) है। यह जानने हेतु प्रयुक्त होता है कि अभ्यर्थी आवश्यक कार्य हेतु सर्वश्रेष्ठ (सर्वथा उपयुक्त) है अथवा नहीं। किंतु ये साक्षात्कार समय साम्य एवं धन साक्ष्य (खर्चीले) दोनों होते है। इसके अतिरिक्त अभ्यर्थी की दक्षता अभिनिर्णीत नहीं की जा सकती। कभी–कभी ये साक्षात्कार पूर्वाग्रहित होते हैं। ये साक्षात्कार कक्ष में अन्य मानसिकता (दूसरी ओर ध्यान) नहीं होनी चाहिये। साक्षात्कार लेने वाले एवं अभ्यर्थी के मध्य ईमानदार (सत्य निष्ठ) सम्प्रेषण होना चाहिये।

5. **चिकित्सकीय परीक्षण**—चिकित्सकीय परीक्षण शारीरिक सशक्तता (स्वास्थ्य, योग्यता)/अनुकूलता के परीक्षण की जाँच है जिसके अंतर्गत सम्भावित (सम्भाव्य) अभ्यर्थीयों के स्वास्थ्य एवं आवश्यक कार्य हेतु उनकी शारीरिक अनुकूलता परीक्षित होती है। यह परीक्षण कर्मचारियों की कार्य में अनुपस्थिति के अवसरों को कम (न्यून) करती है।

6. **नियुक्ति पत्र**—चयनित अभ्यर्थी की संदर्भ जाँचोपरान्त उसे औपचारिक नियुक्ति पत्र प्रदान कर अंतिम रूप से नियुक्त किया जाता है।

**8.4.5. पद–स्थापन (नियोजन) एवं उन्मुखीकरण**—एक बार छंटाई का कार्य होने के पश्चात् एवं प्रस्तावित कार्य को व्यक्ति द्वारा स्वीकृत कर लिये जाने के पश्चात् उसे उपयुक्त कार्य में पद–स्थापित किया जाना चाहिये। स्थापन उपयुक्त (उचित) व्यक्ति को उचित स्थान पर स्थापित करने से पूर्ण होता है। इसमें एक कर्मचारी को एक विशिष्ट श्रेणी एवं उत्तरदायित्व नियत करना सम्मिलित होता है। अधिकांश संगठन स्थापन की परिविक्षा पद्धति (उपागम) को अपनाते है, जिसके अंतर्गत ये भर्ती हुये व्यक्ति को निर्दिष्ट समयावधि तक परिवीक्षा पर रखा जाता है तथा उसके निष्पादन को पर्यवेक्षक द्वारा अनुश्रवित किया जाता है। स्थापवन के संदर्भ में अंतिम निर्णय वरिष्ठ प्रबंधकों से परामर्श के उपरांत लिया जाता है।

स्थापन नियोक्ता तथा कर्मचारी दोनों के लिये एक महत्वपूर्ण मानव संसाधन कार्य (गतिविधि), यदि इसकी उपेक्षा की गयी (जाती है, तो) तो यह नियोक्ता हेतु (नियोक्ता के सम्मुख) कतिपय समस्यायें यथाः निम्न निष्पादन, निम्न उत्पादन, दुर्घटना, कार्य से अनुपस्थिति इत्यादि उत्पन्न कर सकती है। कर्मचारी के दृष्टिकोण से यह कुण्ठा, इस्तीफा, तथा संगठन की अनुचित (खराब, त्रुटिपूर्ण) छवि आदि समस्यायें उत्पन्न हो सकती है।

उन्मुखीकरण अथवा प्रवेषण (प्रवर्तन) नये कर्मचारी को संगठन में परिचित कराने (प्रवेश) कराने एवं उन्हें उनके कार्यों का प्रभावपूर्ण ढंग से सम्पादित करने में सहायता हेतु संचालित किये जाते है। उन्मुखीकरण कार्यक्रम निम्नलिखित उद्देश्यों को पूर्ण करते है।

उन्मुखीकरण नये कर्मचारी के नये कार्य के भय को दूर करने में सहायता करता है, तथा क्योंकि उन्मुखीकरण कर्मचारियों को यह भी बताता है, कि उन्हें क्या करना है, इस प्रकार उनकी कार्य को श्रेष्ठतर ढंग से करने में सहायता भी करता है।

उन्मुखीकरण नये भर्ती हुये कर्मचारी के लिये सूचना के बहुमूल्य स्त्रोत के रूप में कार्य करता है। विभिन्न विभागों की गतिविधि (कार्यों) के बारे में सूचना कर्मचारी को सम्प्रेषित की जाती है। नीतियों, कार्यक्रमों प्रक्रिया, अनुसूची आदि की विस्तृत जानकारी कर्मचारियों के सम्मुख वर्णित की जाती हैं यह नये कर्मचारियों के ऊपर अच्छा प्रभाव डालती है। उन्मुखीकरण कर्मचारियों को संगठन की संरचना के विषय में जानने में तथा संगठन में उनकी स्थिति की जानकारी में मदद करता है।

**8.4.6 प्रशिक्षण एवं विकास**—प्रशिक्षण संगठन के भीतर कर्मचारियों को विकसित करने एवं संवृद्धि के क्रम में दिये जाने वाले प्रेरक (प्रेरणा) का एक भाग है। सामान्यतः प्रशिक्षण कार्यों की प्रकृति एवं उनके क्षेत्र के विस्तार की संभावना के अनुसार प्रदान की जाती है। इसके अतिरिक्त श्रमिक (कर्मचारी) अपने कार्यात्मक क्षेत्र के गहन ज्ञान प्राप्ति के अतिरिक्त लाभ प्रदान करने के द्वारा विकसित किये जाते है। विकास के अंतर्गत कर्मचारियों के निष्पादन के विश्लेषण के क्रम में परीक्षण के रूप में उन्हें महत्वपूर्ण एवं प्रधान कार्यों को प्रदान करना सम्मिलित है।

**प्रशिक्षण एवं विकास उद्देश्य**—प्रशिक्षण एवं विकास खण्ड का प्रधान उद्देश्य एक संगठन में दक्ष एवं इच्छित (कार्य करने की इच्छा रखने वाले) कार्यबल की उपलब्धता को सुनिश्चित करना होात हैं। इसके अतिरिक्त चार अन्य उद्देश्य– व्यक्तिगत, संगठनात्मक, क्रियात्मक (कार्यात्मक) सामाजिक, होते है।

(a) **व्यक्तिगत उद्देश्य**—ये उद्देश्य कर्मचारियों को उनके व्यक्तिगकत उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता करते है, जिससे संगठन में कर्मचारी (व्यक्ति की) का योगदान बढ़ाता है।

(b) **संगठनात्मक उद्देश्य**—संगठन की इसके प्रधान (प्रारम्भिक) उद्देश्य व्यक्ति की (व्यक्तिगत) प्रभावोत्पादकता (प्रभाव शीलता) के द्वारा में सहायता करते है।

(c) **क्रियात्मक उद्देश्य**—विभाग के योगदान को संगठन के आवश्यक स्तर पर बनाये रखने में सहायता करते हैं।

(d) **सामाजिक उद्देश्य**—यह सुनिश्चित करते है कि संगठन समाज की चुनौतियों एवं आवश्यकताओं के प्रति नैतिक एवं सामाजिक रूप से उत्तरदायी है।

**प्रशिक्षण एवं विकास के महत्व**

1. **मानवीय संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग**—प्रशिक्षण एवं विकास मानव संसाधन के अनुकूलतम उपयों में सहायता करता है, जोकि कर्मचारी को संगठनात्मक एवं व्यक्तिगत लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता करते है।
2. **मानव–संसाधनों का विकास**—प्रशिक्षण एवं विकास मानव–संसाधनों के विकास, तकनीकी एवं व्यावहारिक कौशल संगठन में, एक अवसर एवं व्यापक संरचना प्रदान करता है।
3. **कर्मचारियों की दक्षता (कौशल) का विकास**—प्रशिक्षण एवं विकास प्रत्येक स्तर पर कर्मचारियों के कार्य–ज्ञान, कौशल एवं व्यवहार को बढ़ाने (वर्द्धन) में सहायक होता है।
4. **उत्पादकता.**—प्रशिक्षण एवं विकास कर्मचारियों की उत्पादकता बढ़ाने में सहायक होता है। संगठन को अपने दीर्घकालिक लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता करता है।
5. **समूह–भावना (दल–भावना)**—प्रशिक्षण एवं विकास समूह कार्य का भाव समूह (दल) भावना तथा अंर्त दल–सहकार्यता की भावना आत्मसात (मन में बैठाने समझाने) कराने में सहायक होती है। यह कर्मचारियों को सीखने के प्रति उमंग (उत्सुकता/उत्ताप) भी भावना अनिर्विष्ट (समझाने, मन में बैठाने) करने में सहायता करती है।
6. **स्वस्थ कार्य–वातावरण**—प्रशिणत एवं विकास स्वस्थ कार्य–वातावरण के निर्माण में सहायता करता है। यह संगठन एवं कर्मचारी के मध्य श्रेष्ठ सम्बन्ध का निर्माण करने में सहायता करता है। जिससे व्यक्ति लक्ष्य, सांगठनिक लक्ष्य के सीध में (एक ही पक्ति) होते है।
7. **स्वास्थ्य एवं सुरक्षा**—प्रशिक्षण एवं विकास संगठन की सुरक्षा एवं स्वास्थ्य को उन्नत करने में सहायता करते है तथा इस प्रकार मूल्य ह्रास (अप्रचलन) को रोकते है।
8. **नैतिक–स्तर (मनोबल)**—प्रशिक्षण एवं विकास कार्य–बल का नैतिक स्तर (मनोबल) उन्नत बनाने में सहायता करते है।
9. **छवि, (प्रतिकृति)**—प्रशिक्षण एवं विकास श्रेष्ठ व्यावसायिक छवि के निर्माण में सहायता करते है।

10. **लाभदायकता**—प्रशिक्षण एवं विकास लाभदायकता को उन्नत करने में तथा लाभ–उन्मुखीकरण के प्रति अधिक सकारात्मक रवैये के निर्माण में सहायता करते है।

**प्रशिक्षण एवं विकास की विधियाँ**—प्रशिक्षण की महत्त्व तथा संगठन में व्यक्ति की मानसिक योग्यता के अनुसार प्रशिक्षण की विविध (पद्धति) तैयार की जा सकती है। प्रशिक्षण के विभिन्न प्रकार निम्नलिखित है।

1. **अंतः कार्य प्रशिक्षण (कार्य के दौरान प्रशिक्षण)**—लघु संगठनों में नित्य (अवसर बारबार) प्रयुक्त प्रशिक्षण पद्धति अंतः कार्य प्रशिक्षण है। इस पद्धति में अधिक ज्ञानवान, अनुभवी एवं दक्ष कर्मचारियों, यथाः प्रबंधक, पर्यवेक्षक, का प्रयोग (उपयोग) तुलनात्मक रूप से अल्प ज्ञानवान, अल्प अनुभवी तथा अल्पदक्ष कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने हेतु किया जाता है।

प्रशिक्षण का यह प्रकार (विधि/पद्धति) प्रायः कार्य स्थल पर अनौपचारिक ढंग से प्रयुक्त किया जाता है। कार्य–विकास की चार तकनीकें निम्नलिखित है।

**(a) कोचिंग (प्रशिक्षण)**—कोचिंग एक वह प्रशिक्षण पद्धति है। जिसे अपर्याप्त निष्पादन के सुधारात्मक विधि के रूप में जाना (विचारित) जाता है।

**(b) परामर्श देना/प्रतिपालन करना**—परामर्श देना (प्रतिपालन) एक सम्बन्ध है जो एक वरिष्ठ एवं कनिष्ठ के मध्य विकसित होती है। परामर्श (प्रतिपालन) कनिष्ठों को यह मार्ग–दर्शन एवं स्पष्ट समझा प्रदान करता है कि संगठन अपने दृविषय (स्वप्न) एवं ध्यये को किस प्रकार प्राप्त करेगा।

**(c) कार्यवर्तन**—इस प्रकार के प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य कर्मचारी के ज्ञान की पृष्ठभूमि को व्यापक (बड़ा/विशाल) करना (बनाना) है। विभिन्न अनुभागों में कार्य करना संगठन की कार्य प्रणाली/कार्य–पद्धति के एकीकृत दृष्टिकोण को विकसित करने में कर्मचारी (प्रशिक्षु) की सहायता करता है।

**(d) कार्य–निर्देश तकनीक**—प्रशिक्षण का यह प्रकार ज्ञान (तथ्यात्मक एवं प्रक्रियात्मक) कौशल एवं प्रकृति (मनोभाव) के विकास पर केन्द्रित होता है।

**2. बाह्य कार्य पद्धति**—बाह्य कार्य प्रशिक्षण पद्धति के अंतर्गत कर्मचारियों (कर्मचारी) को कौशल सीखने अथवा ज्ञान–प्राप्ति हेतु व्यवसाय के बाहर किसी अन्य स्थान पर भेजा जाता है। बाह्य कार्य प्रशिक्षण में निम्नलिखित तकनीकें सम्मिलित होती है।

(1) व्याख्यान एवं प्रदर्शन–
(2) अनुकरण वार्तालाप–गतिविधि एवं खेल–
(3) दिमागी–झंझावात
(4) स्व–अध्ययन–
(5) बाह्य पाठ्यक्रमों में, यथा अधिशासी विकास कार्यक्रम, सम्मिलित होना।

**8.4.7 निष्पादन आगणन**—व्यक्तियों के कार्य के प्रति रवैये (रूख) तथा विचार तथा व्यवहारों के अभिलेख को रखने के क्रम में (रखने हेतु) संगठन की समस्त कार्य–इकाईयों का नियमित निर्धारण करने हेतु इनका मूल्यांकन एवं पर्यवेक्षण किया जाता है। निष्पादन आगणन का अर्थ किसी कर्मचारी के निष्पादन का व्यवस्थित (प्रणालीकृत) मूल्यांकन या तो एक विशेषज्ञ अथवा उसके तत्कालिक

पर्यवेक्षक द्वारा करने से है। कर्मचारी के निष्पादन की तुलना कार्य–मानकों से की जाती है। प्रबंधकों द्वारा प्रभावी आगणन हेतु पहले से ही कार्य–मानकों का निर्धारण कर दिया जाता है। यह संकेत करता है, कि किस प्रकार एक व्यक्ति (कर्मचारी) कार्य–आवश्यकताओं की पूर्ति कर रहा है।

**निष्पादन–आगणन का महत्व**

(1) निष्पादन–आगणन कर्मचारी की वेतन–वृद्धि के निर्णय लेने में प्रबंध की सहायता करता है।

(2) कर्मचारी का सतत मूल्यांकन कार्य–निष्पादन में कर्मचारी की गुणवता को उन्नत करने में सहायता करता है।

(3) निष्पादन–आगणन उन समस्त सुविधाओं को प्रदर्शित करता है (स्पष्ट करता है) जो एक कर्मचारी को उपलब्ध होती है जब कि प्रबंध प्रभावी निष्पादन हेतु पर्याप्त सुविधायें देने हेतु तैयार होता है।

(4) यह नियोक्ता एवं कर्मचारी के मध्य संवादहीनता को न्यून (अल्प) करता है।

(5) निष्पादन–आगणन के आधार पर ही पदोन्नति प्रदान की जाती है।

(6) एक कर्मचारी की प्रशिक्षण आवश्यकताओं को निष्पादन आगणन के माध्यम से चिन्हित (पहचाना जाना) की जा सकती है।

(7) किसी कर्मचारी को किसी कार्य से उन्मोचित (निस्सरण, योचन) करने का निर्णयन भी निष्पादन आगणन के आधार पर होता है।

(8) कर्मचारी के परिवेदना सम्बन्धी मामलों को निष्पादन आगणन के द्वारा हल किया जाता है।

(9) कर्मचारी की कार्य–संतुष्टि उसका मनोबल बढ़ाती हैं जोकि, निष्पादन आगणन के द्वारा प्राप्त की जाती है।

**निष्पादन आगणन के भेद**—निष्पादन आगणन पद्धति के कई भेद (प्रकार) है जिन्हें निम्नलिखित तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

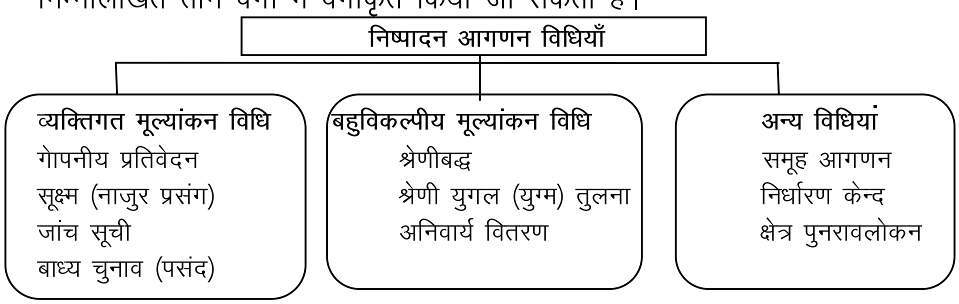


चित्र 8.3 निष्पादन आगणन के प्रकार

**व्यक्तिगत मूल्यांकन पद्धतियाँ विधियाँ**

1. **गोपनीय प्रतिवेदन**—यह एक अत्यन्त सामान्य (सार्वनिष्ठ) पद्धति (विधि) है जो सरकारी संगठनों एवं बड़े व्यावसायिक धरानों द्वारा प्रयुक्त की जाती है। इस विधि में (पद्धति में) एक कर्मचारी अपनले तात्कालिक वरिष्ठ (उच्चस्थ) द्वारा मूल्यांकित किया जाता है तथा गोपनीय रखा जाता है।

2. **सूक्ष्म घटना (प्रसंग)**—इस पद्धति में कर्मचारी का निष्पादन विशेष समयावधि में हुये प्रसंगों के आधार पर किया जाता है। प्रभावी एवं निष्प्रभावी

व्यवहारों (कार्यों) की एक सूची प्रबंधक द्वारा तैयार की जाती हैं तथा यह कर्मचारी के निष्पादन मूल्यांकन में प्रयुक्त होता है।

3. **जाँच सूची**—अनेक प्रश्नों के उत्तर प्राप्त कर कर्मचारी की योग्यता (क्षमता) का आगणन जांच–सूची विधि के नाम से जाना जाता है। जाँच–सूची से श्रेणी निर्धारक (प्रदानकर्ता) द्वारा निर्मित श्रेणी–अंक कर्मचारी के निष्पादन मूल्यांकन में प्रबंधक की सहायता करता है।

4. **बाध्य (अनिवार्य) चुनाव (पसंद)**—इस विधि के अंतर्गत कर्मचारी की विशेषताओं के वर्णन करने वाले वर्णनों में समूह की सूची, जो सकारात्मक अथिवा नाकारात्मक दोनों हो सकती है, कि एक श्रृंखला बनायी जाती है। इस पद्धति का प्रमुख उद्देश्य श्रेणी–निर्धारक द्वारा समस्त कर्मचारियों को स्थिर (स्थायी रूप से) रूप से उच्च अथवा निम्न श्रेणी प्रदान करने की प्रवृत्ति की जाँच तथा सुधार करना होता है। अंतिम श्रेणी दोनों कथनों सकारात्मक तथा नकारात्मक के आधार पर निर्धारित की जाती है। किन्तु श्रेणी निर्धारक यह सरलता से अभिलिखित नहीं कर सकता कि कौन सा कथन योग्य कर्मचारी की श्रेणी हेतु अंतिम है।

**बहु व्यक्ति मूल्यांकन पद्धति**

1. **श्रेणीबद्ध (क्रमबद्ध) करना**—यह विधि निष्पादन आगणन की अति–प्राचीन एवं सरल विधि (प्रकार) है। इस विधि में एक कार्य समूह में कार्यरत एक व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के सापेक्ष एक श्रेणी (क्रम) में रखा जाता है। प्रत्येक कर्मचारी की सापेक्षिक स्थिति उसक अंकीय श्रेणी के पद में परीक्षित होती है। यह किसी व्यक्ति के कार्य–निष्पादन के अन्य प्रतिस्पर्धा के सदस्य के विरुद्ध क्रम (श्रेणी) प्रदान कर के की जा सकती है।

2. **युग्मित तुलना (युगल)**—यह विधि श्रेणी पद्धति का भाग है। युग्म (युगल) तुलना पद्धति के अंतर्गत श्रेणीकरण अधिक विश्वसनीय एवं सरल हो जाती है। एक समय में एक के आधार पर प्रत्येक कर्मचारी की अन्य कर्मचारियों के साथ तुलना की जाती है। मूल्यांकन कर्ता दो कर्मचारियों की तुलना करता है तथा जिसे वह श्रेष्ठतर समझता है। उसके नाम के आगे सही निशान (टिक मार्क) लगा देता है। इसी प्रकार एक कर्मचारी की अन्य समस्त कार्यरत कर्मचारियों के साथ तुलना की जाती है। अंत में वह कर्मचारी जो श्रेष्ठतर होने का सही निशान (टिक मार्क) प्राप्त करता है। उसे सर्वश्रेष्ठ कर्मचारी माना जाता है। तथा उच्च श्रेणी प्रदान की जाती है।

3. **अनिवार्य (बाध्य) वितरण**—इस विधि में श्रेणी–प्रदानकर्ता को पूर्व–निर्धारित वितरण मापक के आधार पर कर्मचारी का आगणन करने को कहा जाता है। श्रेणी प्रदानकर्ता को पूर्वाग्रह, कर्मचारियों को निकालने हेतु, यहाँ हटा (निकाल) दिया जाता है, क्योंकि कर्मचारी मापक (स्केल) के उच्च निम्न छोर (ओर) पर नहीं स्थापित होते है। एक पाँच बिन्दु निष्पादन मापक (स्केल), बिना वर्णन कथनों के प्रयुक्त की जाती है। कर्मचारी दो धाराओं, उत्तम एवं अनुपयुक्त निष्पादन के मध्य स्थापित होते है।

**अन्य पद्धतियाँ**—

(1) **समूह आगणन**—इस विधि के अंतर्गत कर्मचारी का आगणन आगणनों के एक समूह अथवा पैनल (दल) द्वारा किया जाता है। पैनल (दल) में तात्कालिक

उच्चस्थ, अन्य उच्चस्थ तथा कई बार बाहय परामर्श को भी सम्मिलित कर उनकी सेवायें ली जाती है। चूँकि इस विधि में निष्पादन का मूल्यांकन बहु–निर्धारण (रेटिन) द्वारा किया जाता है। अतः यह विधि व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों को किसी एक व्यक्ति के, हटा देती है। यह विधि समय–साध्य होती है तथा इस हेतु उच्च प्रबंध द्वारा नियोजन की आवश्यकता होती है।

2. **निर्धारण केंद्र**—यह अपने आप में निष्पादन आगणन की तकनीक नहीं है। वस्तुतः यह एक प्रणाली या संगठन होता है जहाँ विभिन्न विशेषज्ञों द्वारा विविध तकनीकों के प्रयोग से कई व्यक्तियों का निर्धारण किया जाता है।

3. **क्षेत्र पुनरावलोकन (पुनरीक्षण)**—इस विधि में कर्मचारी का आगणन, श्रेणी प्रदानकर्ता एवं कर्मचारी को तात्कालिक वरिष्ठ अथवा पर्यवेक्षक के मध्य साक्षात्कार के द्वारा होता है। श्रेणी–प्रदानकर्ता कार्मिक विभाग से संबद्ध होता है। श्रेणी प्रदानकर्ता पर्यवेक्षकों से कर्मचारी के निष्पादन के सम्बन्ध में प्रश्नों को पूछता है। कार्मिक विभाग इन एकत्रित सूचनाओं के आधार पर विस्तुत प्रतिवेदन तैयार करता है। पर्यवेक्षक का अनुमोदन (स्वीकृति) प्राप्त होने के पश्चात इस प्रतिवेदन की एक प्रति सम्बन्धित कर्मचारी की फाइल (लेख्य पत्र) में लगा दी जाती है।

## 8.5 निर्देशन

निर्देशन एक प्रबंधकीय कार्य है जो प्रबंध के उच्च स्तर के अधिकारियों द्वारा निष्पादित होता है। जब भी कोई निर्णय लिया गया है उसका उचित क्रियान्वयन अवश्य होना चाहिये यदि ऐसा नहीं है तो उस निर्णय को लेने का कोई उपयोग नहीं है। निर्णय के उचित क्रियान्वयन हेतु निर्देशन आवश्यक है। प्रत्येक प्रबंधक अपने अधीनस्थों को निर्देशन देता है तथा विलोमतः प्रत्येक अधीनस्थ अपने प्रबंधक से निर्देशन प्राप्त करता है। एक प्रबंधक को अपने अधीनस्थों के नेतृत्व करने, अभिप्रेरित करने प्रेरित करने एवं उनसे उपयुक्त सम्प्रेषण हेतु विभिन्न ढंग (तरीकों) की आवश्यकता होती है।

निर्देशन सांगठनिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु मानवीय संसाधनों को निर्देश देने, मार्ग–दर्शन करने, परामर्श देने, अभिप्रेरित करने, एवं उनका नेतृत्व करने की प्रक्रिया है।

हॉयमन के अनुसार, निर्देशन निर्देश निर्गत करने एवं यह सुनिश्चित करने की, कि प्रचालन (सक्रिया) उसी प्रकार संचालित हो रहे है, जैसा कि मूलतः (वास्तव में) नियोजित थे, की प्रक्रिया एवं तकनीक है।"

कूण्टन व ओ डोनल, ने निर्देशन को इस प्रकार परिभाषित किया है,

"निर्देशन प्रबंध करने का अंर्तवैयक्तिक पहलू है, जिसके द्वारा अधीनस्थ संगठन के (उद्यम के) उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु समझने एवं प्रभावी ढंग से अंषदान करने को अग्रसर होते है।"

जे0ए0 मैसी के अनुसार, निर्देशन उन समस्त विधियों (तरीकों) से सम्बन्धित है। जिसमें प्रबंधक अपने अधीनस्थों के कार्यों को प्रभावित करता है। समस्त तैयारियों को पूर्ण कर लेने के पश्चात दूसरों से कार्य लेने हेतु प्रबंधक का यह अंतिम कार्य है।

### 8.5.1 निर्देशन की विशेषतायें

**(a) निर्देशक कार्य का आरंभ करता है.—**निर्देशक एक प्रमुख प्रबंधकीय कार्य है। एक प्रबंधक को संगठन में अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते समय नियोजन, सांगठनीकरण, स्टाफिंग एवं नियंत्रण के साथ निर्देशन कार्य का भी सम्पादन (निष्पादन) करना होता है। निर्देशन के बगैर ये कार्य यथाः नियोजन स्टाफिंग व संगठनीकरण अप्रभावी (निष्प्रभावी) होते है। निर्देशन के माध्यम से प्रबंध व्यक्तियों को संसूचित एवं अभिप्रेरित करता है कि वे सांगठनिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु संगठन में इच्छित ढंग से कार्य करें। जहाँ अन्य कार्य क्रिया हेतु एक तैयारी निश्चित करते है, निर्देशन संगठन में कार्य का आरम्भ करता है।

**(b) निर्देशन प्रबंध के समस्त (प्रत्येक) स्तर पर कार्य करता है.—**प्रत्येक प्रबंधक, उच्च अधिशासी से लेकर पर्यवेक्षक तक, निर्देशन का कार्य करता है। जहाँ उच्चस्थ–अधीनस्थ सम्बन्ध होता है। निर्देशन व्याप्त होता है।

**(c) निर्देशन एक सतत प्रक्रिया है.—**निर्देशन एक सतत प्रक्रिया है। प्रबंधकीय स्थिति (पद) धारण किये हुये व्यक्तियों से निरपेक्ष यह संगठन के जीवनपर्यत चलती रहती है। हम इसका उदाहरण रिलायंस, टी.सी.एस.एच.यू.एल., पी. जी. में देख सकते है। यह प्रबंधकों से स्वतंत्र होता है, क्योंकि प्रबंधक आते–जाते रहते है किन्तु निर्देशन प्रक्रिया सतत जारी रहती है, क्योंकि निर्देशन के अभाव में (अनुपस्थिति) सांगठनिक गतिविधियाँ (कार्य) आगे चालू (जारी) नहीं रह सकते।

**(d) निर्देशन ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित होता है.—**निर्देशन प्रथमतः उच्च स्तर पर आरम्भ (जन्म लेता) होता है तथा सांगठनिक पद सोपान के द्वारा नीचे की ओर प्रवाहित होता है। इसका अर्थ यह है, कि प्रत्येक प्रबंधक अपने तत्कालिक अधीनस्थ को निर्देशित कर सकता है तथा अपने तत्कालिक उच्चस्थ (स्वामी) से निर्देश प्राप्त कर सकता है।

**8.5.2 निर्देशन का महत्व—**

संगठन में निर्देशन के महत्व को इस तथ्य से समझा (देखा जा सकता है) जा सकता है, कि प्रत्येक कार्य निर्देशन से ही प्रारम्भ होते है। संगठन में निर्देशन कार्य के महत्व को निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है।

(a) **कार्य प्रारम्भ करने में सहायता करता है—**निर्देशन ऐच्छिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु व्यक्तियों के कार्य आरम्भ करने में सहायता करता है।

(b) **निर्देशन कर्मचारियों के प्रयासों को एकीकृत करता है—**संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु व्यक्तियों का महज दक्ष होना ही आवश्यक नहीं वरन प्रभावी होना भी आवश्यक है। उनके कार्य (गतिविधि) इस प्रकार अंर्त सम्बन्धित है कि प्रत्येक व्यक्ति का निष्पादन, संगठन में दूसरे के निष्पादन को प्रभावित करता है।

(c) **निर्देशन व्यक्ति से अधिकतम प्राप्त करने का प्रयत्न करता है.—**संगठन में प्रत्येक व्यक्ति कोई न कोई क्षमता एवं योग्यता रखता है। जो उचित अभिप्रेरण, नेतृत्व, सम्प्रेषण निर्देशन के समस्त तत्वों–के अभाव में पूर्णतः संदोजिहत (उपयोगित) नहीं हो पायेगी। निर्देशन इन योग्यताओं को उपयोग करने के ढंग को बताती है तथा यह इन गुणों योग्यताओं को बढ़ाने (अधिक करने) में सहायता करता है।

(d) **निर्देशन संगठन में परिवर्तनों को सुगम बनाता है**—संगठन, समाज में होता है तथा समाज में कोई परिवर्तन संगठन को वातावरणीय परिवर्तन का सामना करने में सक्षम बनाने हेतु परिवर्तित करता हैं । अधिकांशतः ये परिवर्तन सांगठनिक संरचना एवं व्यक्तियों में होते है। इन परिवर्तनों को स्वीकार एवं क्रियान्वित करने हेतु प्रबंधकों उन व्यक्तियों को जो इस परिवर्तन से प्रभावित हो रहे हो, अभिप्रेरित करना चाहिये जो कि निर्देशन का अत्यावश्यक भाग है।

(e) **निर्देशन संगठन में स्थायित्व एवं संतुलन स्थापित करता है**—प्रभावी नेतृत्व सम्प्रेषण एवं अभिप्रेरण संगठन में स्थायित्व लाते है तथा संगठन के विभिन्न भागों में संतुलन स्थापित करते है। इस प्रकार संगठन दीर्घकाल तक बना रहता है तथा इसके समस्त भाग सामंजस्य पूर्ण ढंग से कार्य करते है।

### 8.5.3 निर्देशन के तत्व

निर्देशन एक व्यापक प्रबंधकीय कार्य है। निर्देशन निम्नलिखित तत्वों को समाहित करता है।

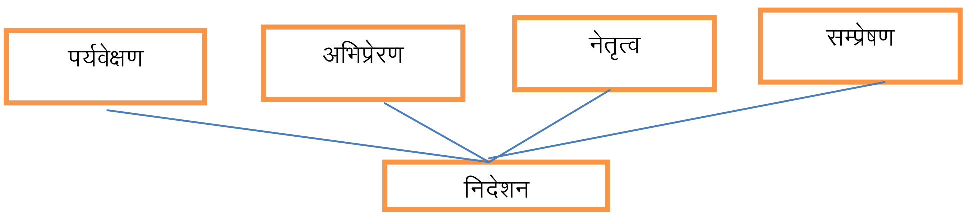


**चित्र : 8.4 निर्देशन के तत्व**

निर्देशन के उपरोक्त समस्त घटक या तत्व परस्पर अंर्त सम्बन्धित होते है, तथा निर्देशन के कार्य को उपरोक्त समस्त कार्यों के मिश्रण के रूप में परिवर्तित करते है। ये समस्त कार्य एक साथ निष्पादित होते है तथा एक दूसरे के संयुग्म के रूप में (संयुग्मित ढंग से) कार्य करते है।

### 8.5.4 निर्देशन के सिद्धांत

निर्देशन एक अत्यंत जटिल प्रबंधकीय कार्य है, क्योकि यह व्यक्तियों के साथ व्यवहार करता है, जिनकी प्रकृति अपने आप में बिल्कुल जटिल एवं अनिश्चित होती है। उचित एवं प्रभावी निर्देशन प्रदान करना एक चुनौती पूर्ण कार्य है, क्योंकि इसमें कई जटिलता सम्मिलित होती है। एक प्रबंधक को विविध पृष्ठभूमि, अपेक्षाओं से युक्त व्यक्तियों से व्यवहार करना पड़ता है। ये निर्देशन प्रक्रिया को जटिल बनाते है। कतिपय मार्ग दर्शन सिद्धांत निर्देशन प्रक्रिया में सहायक हो सकते है। ये सिद्धांत निम्नलिखित है।

**(a) अधिकतम व्यक्तिगत योगदान का सिद्धांत**—संगठनात्मक लक्ष्यों को अधिकतम स्तर (व्यापक स्तर) पर तभी प्राप्त किये जाते है जब संगठन में प्रत्येक व्यक्ति अपनी ओर से अधिकतम योगदान करता है। प्रबंध को निर्देशन तकनीक अपनानी चाहिये जो अधीनस्थों को सर्वाधिक योगदान करने हेतु सक्षम बनाता है।

**(b) उद्देश्यों के सामंजस्य का सिद्धांत**—व्यक्ति अपने कतिपय उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु संगठन में सम्मिलित होते है इस प्रकार संगठन में कार्य करने के दौरान वे अपनी शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयास करते है। उसी समय (उसी के साथ) संगठन भी अपने कतिपय उद्देश्य, व्यावसायिक

उपक्रम के लाभ को अधिकतम करना, रखता है। उपयुक्त निर्देशन तकनीकों के प्रयोग से प्रबंध को संगठनात्मक एवं व्यक्तिगत उद्देश्यों को एकीकृत करने का प्रयत्न करना चाहिये।

**(c) आदेश की एकता का सिद्धान्त**—यह सिद्धांत इस पर जोर देता है, कि एक व्यक्ति को (कर्मचारी) संगठन में एक ही उच्चस्थ से आदेश प्राप्त होने चाहिये। यदि एक से अधिक व्यक्तियों से निर्देश प्राप्त होते है, तो यह संगठन में भ्रम, संघर्ष एवं अव्यवस्था फैलायेंगे। इस सिद्धांत का पालन प्रभावी निर्देशन को सुनिश्चित करता है।

**(d) प्रबंधकीय सम्प्रेषण का सिद्धांत**—संगठन में सफलता उच्चस्थ एवं अधीनस्थों के मध्य प्रभावी सम्प्रेषण पर निर्भर करती है। संगठन में समस्त स्तरों पर प्रभावी सम्प्रेषण निर्देशन को प्रभावी बनाता है। निर्देशन को सम्पूर्ण समझ को विकसित करने हेतु अधीनस्थों को स्पष्ट निर्देश संसूचित करने चाहिये। एक उच्चस्थ अधोगामी सम्प्रेषण के द्वारा कार्य सम्बन्धी आदेश, विचार, अधीनस्थों को सम्प्रेषित करता है तथा अपने अधीनस्थों को सम्प्रेषित करता है तथा अधीनस्थें के उर्ध्वगाामी सम्प्रेषण द्वारा वह यह जानता है, कि उसके अधीनस्थ किस प्रकार कार्य कर रहे है। इस प्रकार प्रभावी सम्प्रेषण दोनो ओर से निर्देशन को प्रभावी बनाता है।

**(e) अनौपचारिक संगठनों के उपयोग का सिद्धांत**—औपचारिक संगठन संरचना व्यक्तियों के मध्य औपचारिक सम्बन्धें को निर्धारित करता है। इसक साथ ही साथ में कार्यरत व्यक्ति आपस में कुछ सम्बन्ध स्थापित कर लेते है, जिस अनौपचारिक समूह या अनौपचारिक संगठन कहते है। इस अनौपचारिक समूह के द्वारा सूचनाएं त्वरित रूप से प्रसारित होती है, हालांकि ये सूचनायें असत्य भी हो सकती है।
प्रबंध को निर्देशन को अति–प्रभावी करने हेतु इन अनौपचारिक संगठनों को समझना पहचानना एवं इनका प्रयोग (उपयोग) करना चाहिये।

**(f) नेतृत्व का सिद्धांत**—नेतृत्व लक्ष्य प्राप्ति हेतु संगठन में व्यक्तियों के व्यवहार को प्रभावित करने की प्रक्रिया है। अधीनस्थों के निर्देशन के समय प्रबंधक को कुशल (श्रेष्ठ) नेतृत्व करना चाहिये जिससे यह अधीनस्थों को सकारात्मक रूप से बिना उनमें असंतोष जागृत किये प्रभावित कर सके।

**(g) पूर्ण करने का सिद्धांत (अनुगणन का सिद्धांत)**—निर्देशन एक सतत प्रबंधकीय प्रक्रिया है। केवल आदेश देना ही पर्याप्त नहीं है। प्रबंधकों को सत रूप से पुनरीक्षण द्वारा यह जााने (अनुगमन) का प्रयास करना चाहिये कि आदेष यथा वर्णित रीति से क्रियान्वित हो गये अथवा किसी समस्या का सामना करना पड़ा। यदि आवश्यक हो, उपयुक्त परिवर्धन (संशोधन) निर्देशों में किये जाने चाहिये।

### 8.5.5 निर्देशन की तकनीकें

**निर्देशन की तीन तकनीकें है**—निर्देशन की तीन तकनीके है, परामर्शक (सलाहकारी) तकनीक, खुली छूट तकनीक तथा अधिकारवादी तानाशाही तकनीक प्रत्येक तकनीक की अपनी शक्तियाँ है। प्रत्येक तकनीक भिन्न–भिन्न दशाओं में प्रयोग में लायी जा सकती है। यह अधीनस्थों एवं उच्चस्थ की प्रकृति तथा स्थिति चरों पर निर्भर करता है।

**परामर्शक सिद्धांत**—इसके अन्तर्गत पर्यवेक्षक निर्देश निर्गत करने के पूर्व अपने अधीनस्थों से परामर्श करता है। परामर्श के द्वारा सम्भाव्यता प्रवर्तनीयता तथा

समस्या की प्रकृति जानने का प्रयास किया जाता हैं इसका यह अर्थ नहीं होता कि उच्चस्थ स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने (कार्य करने में) में सक्षम नहीं हैं अंतिम रूप से निर्णय लेने तथा निर्देश देने का अधिकार उच्चस्थ ही रखता है। किसी निर्देश के सफल क्रियान्वयन हेतु अधीनस्थों का सहयोग आवश्यक है। इस निर्देशन तकनीक का सहयोग आवश्यक है। इस निर्देशन तकनीक में अधीनस्थों को श्रेष्ठतर अभिप्रेरण उपलब्ध होता है।

**खुली छूट**—इस तकनीक के अंतर्गत अधीनस्थों को समस्या के समाधान की खुली छूट होती है। सामान्यतः उच्चस्थ कार्य नियत करता (बाँटता/सौपता) है। अधीनस्थों को समस्या के समाधान हेतु पहल (अगुवाई) करनी चाहिये। केवल (मात्र) उच्च शिक्षित, दक्ष तथा गंभीर अधीनस्थ के द्वारा ही यह निर्देशन तकनीक अपनाना अपेक्षित है।

**अधिकारवादी निर्देशन**—यह खुली–छूट निर्देशन तकनीक के सर्वथा विपरीत प्रकार का निर्देशन हैं इसमें उच्चस्थ अपने अंतर्गत कार्यरत अधीनस्थों को आदेश देता है। तथा निकट पर्यवेक्षण (गहन/बारीक) स्थापित करता है। पयैवेक्षक अपने अधीनस्थों को स्पष्ट एवं सटीक (सूक्ष्म) आदेश देता है तथा अधीनस्थ उसी के अनुसार कार्य करते है। यहाँ अधीनस्थों को अपनी पहल (अगुवाई) दिखाने का कोई अवसर नहीं होता है।

## 8.6 सारांश

उत्पादन के समस्त साधनों में मानव साधन ही एकमात्र सक्रिय उत्पादन साधन है। स्टाफिंग प्रबंधक के जटिल (नाजुक) कार्यों में से है। कार्मिक प्रबन्ध अथवा मानव संसाधन प्रबंध (एच.आर.एम.) समयानुसार दक्ष मानव–शक्ति की आपूर्ति एवं इनके सर्वाधिक प्रभावी एवं दक्ष उपयों (संदोहरण) को सुनिश्चित करने से सम्बन्धित है। स्टाफिंग के अंतर्गत श्रम–शक्ति (मानव–शक्ति) नियोजन, कार्य–विश्लेषण, भर्ती एवं चयन, पद स्थापन, प्रशिक्षण एवं निष्पादन आगणन सम्मिलित है। मानव–शक्ति नियोजन से आषय संगठन की भावी मानव शक्ति आवश्यकताओं से है।

मानव–शक्ति नियोजन के पश्चात कार्य–विश्लेषण कार्य–विनिर्देश का कार्य–विवरण से मिलान किया जाता है। कार्य रंग रूपों की भर्ती (भर्ती का कार्य) संगठन के भीतर अथवा बाह्य स्त्रोंत से की जा सकती है। भर्ती एक सकारात्मक प्रक्रिया है जबकि चयन एक नकारात्मक प्रक्रिया है। पद–स्थापन एवं उन्मुखीकरण नये कर्मचारी एवं संगठन को एक दूसरे से समायोजित करने (अनुकूल बनाने) में सहायता करते है। निर्देशन से आषय प्रबन्ध करने के अंर्तवैयक्तिक पहलू से है, जो सांगठनिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु मानव को कार्य में कियाशील लाती है। पर्यवेक्षण, अभिप्रेरण, नेतृत्व एवं सम्प्रेषण निर्देशन के प्रमुख तत्व है।

## 8.7 शब्दावली

**रेखीय प्राधिकार**—अधीनस्थों को आदेश देने की शक्ति ।

**कार्य**—पदों का एक समूह जो कौशल, उत्तरदायित्व एवं ज्ञान में समान होते है। कार्य अर्वयक्तिक होते है तथा एक शीर्षक अथवा नाम अवश्यक धारित किये होना चाहिये। सम्पूर्ण उद्योग में कार्यों के समूह को उपजीविका (पेशा) कहा जाता है। अतः कार्य अवैयक्तिक तथा पद (स्थिति) वैक्तिक होता है।

**कार्य–विश्लेषण**—यह प्रत्येक कार्य का सुव्यवस्थित (प्रणालीकृत) विश्लेषण है। यह सूचनाओं कार्यधारी क्या करता है, कि न परिस्थितियों के अंतर्गत यह कार्य किया जाना है, तथा कार्य करने हेतु आवश्यक योग्यताये क्या है को एकत्रित करने के उद्‌देश्य से किया जाता है। कार्य–विवरण तथा कार्य विनिर्देश कार्य–विश्लेषण के तात्कालिक उत्पाद है।

**कार्य–विवरण**—कार्य–विवरण किसी कार्य विशेष के उद्‌देश्य क्षेत्र कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का विवरण है।

**कार्य मूल्यांकन**—यह कार्य–विवरण में स्थापित घटकों के पदों में कार्य का मूल्य निर्धारित करने की सुव्यवस्थित प्रक्रिया है।

**कार्य–संतुष्टि**—किसी के कार्य के प्रति सकारात्मक रवैया।

**कार्य विनिर्देश**—यह एक वर्णन है जो कार्य हेतु आवश्यक न्यूनतम योग्यताओं को अवस्थित (निर्धारित, बनाती) करती है।

**निष्पादन**—संसाधनों को प्रयोग करते हुये संगठन द्वारा कुशल एवं प्रभावी ढंग से लक्ष्यों को प्राप्त करने की योग्यता।

**पद**—पद कार्यों का एक समूह है जो व्यक्ति को आवंटित (नियत) किया गया है। संगठन में जितने व्यक्ति होते हैं, पदों की संख्या उतनी ही होती है। यह वैयक्तिक होता है।

**स्टाफिंग**—यह व्यक्तियों को कार्य में आर्कषित करने, विकसित करने एवं उनका मूल्यांकन करने की प्रक्रिया है।

## 8.8 बोध प्रश्न

**1. रिक्त स्थान की पूर्ति करें**

1. कार्य में व्यक्तियों को पहचानने निर्धारण करने, पद–स्थापित करने, मूल्यांकित करने तथा निर्देशित करने की प्रक्रिया..........................कहलाती है।
2. ............................ व्यक्तियों एवं एक दूसरे से उनके सम्बन्धों से सम्बन्धित है।
3. .................निष्पादित कार्यों, सम्मिलित उत्तरदायित्वों, आवश्यक प्रशिक्षण, कार्य–दशाओं तथा अन्य कार्यों से सम्बन्ध को वर्णित करता है।
4. .......................नये कर्मचारी को संगठन से परिचित कराने तथा उन्हें उनका कार्य प्रभावी ढंग से सम्पादित करने में सहायता हेतू आयोजित (संचालित) किये जाते है।
5. ......................सांगठनिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु मानव–संसाधनों को निर्देश देने, मार्ग–दर्शन करने, परामर्श देने अभिप्रेरित करने तथा नेतृत्व करने की प्रक्रिया है।

**2. सत्य या असत्य**

1. कार्य–विश्लेषण के परिणाम कार्य–विनिर्देश में निश्चित किये हुये होते है।
2. स्टाफिंग एवं मानव संसाधन प्रबंध पृथक है।
3. कार्य–विश्लेषण, कार्य–विवरण को कार्य–विनिर्देश से मिलाता है।
4. कार्य–विवरण, कार्य की प्रकृति के विषय में सूचना प्रदान करता है।

5. कार्य–विनिर्देश संगठन की प्रकृति के विषय में सूचना प्रदान करता है।
6. भर्ती कार्य आवेदन–पत्र आमंत्रित करने की सकारात्मक प्रक्रिया है।
7. भर्ती का अर्थ व्यक्तियों को विभिन्न पदों पर स्थापित करना है।
8. भर्ती केवल संगठन के बाहर से आवेदन आमंत्रित करता है।
9. चयन एक नकारात्मक प्रक्रिया है।
10. चयन, कार्य–विवरण एवं कार्य–विनिर्देश के मध्य सर्वश्रेष्ठ मेल है।
11. प्रशिक्षण कार्यरत व्यक्ति को दक्षता को उन्नत करता है।
12. विकास भविष्य के कार्यों के लिये व्यक्ति की दक्षता को उन्नत नहीं करता है।
13. निष्पादन–आगणन सदैव उच्चस्थों द्वारा ही किया जाता है।
14. कार्य–आगणन एवं पदोन्नति सम्बन्धित नहीं है।
15. निर्देशन संगठनों में व्यक्तियों के व्यवहार को प्रभावित करने की क्रिया है।
16. निर्देशन सदैव नियमों एवं विनियमों से समर्थित होता है।

## 8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

**(A)**

1. स्टाफिंग 2. कार्मिक प्रबंध 3. कार्य विवरण
4. उन्मुखीकरण 5. निर्देशन

**(B)**

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. असत्य | 2. असत्य | 3. सत्य | 4. सत्य |
| 5. असत्य | 6. सत्य | 7. असत्य | 8. असत्य |
| 9. सत्य | 10. सत्य | 11. सत्य | 12. असत्य |
| 13. असत्य | 14. असत्य | 15. सत्य | 16. असत्य |

## 8.10 स्वपरख प्रश्न

1. स्टाफिंग को परिभाषित कीजिये। प्रबंध के कार्य के रूप में स्टाफिंग का क्या महत्व है?
2. स्टाफिंग प्रक्रिया में सम्मिलित चरणों को उल्लेखित कीजिये।
3. भर्ती क्या है? भर्ती के विभिन्न स्त्रोत क्या है?
4. भर्ती एवं चयन में मध्य अंतर स्पष्ट करें।
5. प्रशिक्षण से क्या आषय है? प्रशिक्षण की विभिन्न पद्धतियों का वर्णन कीजिये।
6. प्रशिक्षण एवं विकार में अंतर बताइये।
7. निष्पादन–आगणन क्या है? इसके उद्देश्यों एवं महत्व का वर्णन कीजिये?
8. निर्देशन को परिभाषित कीजिये एवं निर्देशन का महत्व उल्लिखित कीजिये।
9. निर्देशन के प्रमुख तत्व क्या है?
10. निर्देशन के अर्थ एवं सिद्धांतों का वर्णन कीजिये?
11. संक्षिप्त टिप्पणी लिखियें
    (1) मानव–संसाधन प्रबंध
    (2) कार्य विश्लेषण
    (3) कार्य विनिर्देश

(4) कार्य विवरण
(5) निर्देशन की तकनीके
(6) पद–स्थापन एवं उन्मुखीकरण

## 8.11 सन्दर्भ पुस्तकें

1. W.H. Newman, C.E. Sumer and E.K Warren, The Process of Management-Concepts, Behaviour and Practice, New Delhi, Prentice Hall of India, 1990.
2. Harlod Koontz and Cyril 0' Donnell, Essentials of Management, New Delhi, Tata McGraw-Hill Book Company, 2000.
3. W. F. Glueck, Management, Hinsdale, Illinois, The Dryden Press, 1990.
4. R.A. Baron, Behaviour in Organisation, Boston, Allyn & Bacon, 2000.
5. Peter F. Drucker, Management; Tasks, Responsibilities and Practices, New Delhi, Allied Publishers, 1975.
6. D.A:Wren and D. Voich, Management, New York, John Wiley, 1990.
7. W.B. Stevenson, J.L. Pierce and L.W. Porter, The Concept of Coalition in Organisation Theory and Research, Academy of Management Review, (10) 1985.
8. Gupta, C.B.; Management Concepts and Practices, Sultan Chand and Sons, New Delhi.
9. Harold, Koontz and Weirich; Management, Tata McGraw Hill Publishing Company, New Delhi.
10. Prasad, L.M.; Principles and Practice of Management, Sultan Chand & Sons, New Delhi.
11. Stephen, P. Robbins and Mary Coulter; Management, Pearson Education, New Delhi.

# इकाई 9 समन्वयन

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 समन्वय–अर्थ
9.3 समन्वयन आवश्यकता, महत्व एवं अभिप्राय
9.4 समन्वय के सिद्धान्त
9.5 समन्वय की प्रक्रिया
9.6 समन्वय की तकनीके
9.7 समन्वय के प्रकार
9.8 समन्वय की समस्यायें
9.9 सारांश
9.10 शब्दावली
9.11 बोध प्रश्न
9.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
9.13 स्वपरख प्रश्न
9.14 सन्दर्भ पुस्तकें

## उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- समन्वय की आवश्यकता, महत्व तथा अभिप्राय के साथ इसकी संकल्पना का वर्णन कर सकें।
- समन्वय प्राप्त करने के विविध सिद्धांतों एवं तकनीकों का वर्णन कर सकें।
- विभिन्न प्रकार के समन्वय के मध्य अंतरस्थापित कर सकें।
- समन्वय प्रक्रिया में आने वाली समस्याओं को पहचानन कर सकें।

## 9.1 प्रस्तावना

प्रत्येक संगठनों में विभिन्न प्रकार के कार्यों का सम्पादन विभिन्न समूहों द्वारा किया जाता है तथा किसी एक समूह से सम्पूर्ण संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति की अपेक्षा नहीं की जा सकती। गैर–मानवीय संसाधनों यथा, मुद्रा (धन) सामग्री, एवं मषीनों का मानवीय संसाधनों के साथ उचित संयोग आवश्यक है। अर्तः यह आवश्यक है कि विभिन्न संसाधनों, कार्य–समूहों तथा विभागों के मध्य सामंजसय होना चाहिये। प्रबन्ध का यह कार्य 'समन्वयन' कहलाता है। यह व्यक्तियों के कार्य समूहों तथा विभागों के मध्य एकता सुनिश्चित करता है तथा विभिन्न कार्यों एवं गतिविधियों के संचालन में संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सामंजस लाता है। इस इकाई में हम लोग समन्वय की संकल्पना पर और विमर्श करेंगे।

## 9.2 समन्वय–अर्थ

समन्वय समान उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु कार्य एकता प्रदान करने हेतु समूह सदस्यों के प्रयत्नों का एकीकरण सामत्रस्यीकरण है। यह एक छिपी हुई (अध्ययन) शक्ति है जो प्रबन्ध के अन्य प्रकार्यों (कार्यों) को बाँधें रखती है।

**कोवरेले के अनुसार,** समन्वय समान उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये कार्यों में एकता प्रदान करने हेतु समूह सदस्यों के प्रयासों का क्रमिक संयोजन (व्यवस्था) है।

**चार्ल्स वर्थ के अनुसार,** समन्वय समझदारी से उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु विविध भागों का एक क्रमिक गुहा (घर) में एकीकरण है।"

**जे० लुण्डी के अनुसार,** समन्वय इच्छित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु उद्देश्यों की एकता तथा नियोजन के सामत्रस्यपूर्ण क्रियान्वयन को समाहित करता है।"

समन्वय को समान उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कार्य में एकता प्रदान करने हेतु समूह प्रयत्नों के क्रमिक प्रबन्ध (व्यवस्था) के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। समन्वय का प्राथमिक (आधारभूत) कारण विभागों एवं कार्य–समूहों की अंर्तनिर्भरता है। अपनी संदर्भित गतिविधियों के निष्पादन के लिये सूचना एवं संसाधन हेतु वे एक दूसरे पर निर्भर है। वह प्रक्रिया जिसकें द्वारा प्रबंधक एक संगठन है में कार्य में एकता लाता है, समन्वय कहलाता है। इस प्रकार प्रबंधक प्रत्येक स्तर पर अधीगणों के प्रयत्नों में समन्वय करने की आवश्यकता होती है।

**कुण्टज और ओडोनल** के अनुसार, यह कहना ज्यादा उपयुक्त होगा कि प्रबन्ध के उद्देश्य के रूप में समूह लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु व्यक्तिगत प्रयासों में सामंजस्य स्थापन हेतु समन्वय प्रबंधकत्व का सार (आत्मा) है। प्रबंध के समस्त कार्य समन्वय में व्यवहार रूप में है।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि समन्वय समस्त प्रबंधकीय कार्यों का आंतरिक (एकीकृत) तत्व है। आइये समन्वय के प्रबंधक अन्य कार्यों से सम्बन्ध पर विमर्श करें।

(1) **नियोजन द्वारा समन्वय**—नियोजन पारस्परिक विमर्श, विचार विनिमय के द्वारा विभिन्न योजनाओं के एकीकरण द्वारा समन्वय प्रदान करती है।
**उदाहरण** :–उत्पादन निर्गत एवं विक्रय के मध्य समन्वय।

(2) **संगठनिकरण द्वारा समन्वय**—मूने ने समन्वय को सांगठनिकरण का सॉर/मूल कहा है। वस्तुतः जब एक प्रबंधक विभिन्न गतिविधियों को समूहित एवं अधीनस्थों में वितरित करता है तथा जब वह विभागों का सृजन करता हैं तब समन्वय उसके मस्तिष्क में सबसे ऊपर रहता है।

(3) **स्टाफिंग द्वारा समन्वय**—एक प्रबन्धक के पास उचित शिक्षा कौशल प्राप्त उचित संख्याओं कार्मिक होने चाहिये जो उपयुक्त कार्य हेतु उपयुक्त व्यक्ति को सुनिश्चित करेगा।

(4) **निर्देशन द्वारा समन्वय**—अधीनस्थों को आदेश देने निर्देश देने तथा मार्ग दर्शित करने का उद्देश्य तभी पूर्ण होगा जबकि उच्चस्थ एवं अधीनस्थ के मध्य सामंजस्य हो।

(5) **नियंत्रण द्वारा समन्वय**—सांगठनिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्रबंधक यह सुनिश्चित करता है कि वास्तविक निष्पादन एवं मानक निष्पाद के समन्वय होना चाहिये।

उपरोक्त विमर्श के आधार पर हम यह निश्चित कर सकते है कि समन्वय प्रबंध का सार है। यह प्रत्येक कार्य मे, तथा प्रतयेक स्तर पर आवश्यक है। अतः इसे पृथक नहीं किया जा सकता समन्वय प्रबंध का सिद्धांत है तथा अन्य समस्त सिद्धांत इसमें समाहित है। इस प्रकार समन्वय सर्वोदय (मातृ) सिद्धांत है।

## 9.3 समन्वय आवश्यकता, महत्व एवं अभिप्राय

समन्वय एक संगठन में प्राथमिक एकताकारी अथवा बंधनकारी शक्ति है। समन्य की आवश्यकता निम्नलिखित अवखंडन तथा विविधतापूर्ण शक्तियों के कारण उत्पन्न होती है।

1. **बड़े संगठनों में संचालन का आकार एवं जटिलता.**—एक विविधतापूर्ण संगठन में संचालन परिमाण में विविध जटिल एवं विशाल होते है। एक बड़े संगठन में बड़ी संख्या में व्यक्ति विभिन्न स्तरों पर कार्यरत रहते हैं यदि इनके प्रयत्न व गतिविधियां उचित ढंग से सम्बन्धित नहीं है तो ये व्यक्ति विपरीत उद्देश्यों के लिये कार्य कर सकते है। यह श्रेष्ठतर समन्वय की आवश्यकता को जन्म देता है।
2. **विशेषीकरण**—वर्तमान संगठनों में कार्य विविध विशिष्ट प्रकार्यों में विभाजित है। इसलिये हम विविकार्ण, वित्तयन, कार्मिक एवं वाणिज्यिक प्रकार्य रखते है। प्रत्येक कार्य अपनी सीमितताए, अपने पाने के लक्ष्य तथा अपने कार्य को सर्वश्रेष्ठ मानने की प्रवृत्ति रखता है। इसलिये न केवल व्यक्तिगत लक्ष्य वरन सांगठनिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु विभिन्न कार्यों में एक दर्शन लाने हेतु समन्वय की आवश्यकता अनुभव की जाती है।
3. **हितों का टकराव (संघर्ष)**—व्यक्तियत मानने/आंकने में असफल होते है, कि सांगठनिक लक्ष्यों की प्राप्ति उनके स्वयं के लक्ष्य की प्राप्ति को संतुष्ट करेगी। अपेक्षाकृत वे अपने संकुचित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु कार्य करते है, तथा सांगठनिक लक्ष्यों का त्याग करते है। समन्वय व्यक्तिगत एवं सांगठनिक लक्ष्यों के मध्य संघर्ष (टकराव) परिवर्जन (टालता) करता है।
4. **भिन्न कार्य–शैली एवं प्रकृति**—व्यक्तियों की क्षमता प्रतिभा एवं गति व्यापक रूप से भिन्न होती है। प्रत्येक व्यक्ति कार्यों को करने तथ समस्याओं से निपटने का अपना ढंग/तरीका रखता है। संगठन में कार्यरत व्यक्तियों के रवैये तथा कार्य शैली में भिन्नता के फलस्वरूप समन्वय की आवश्यकता होती है। कार्यों में एकता सुनिश्चित करने के उद्देश्य से व्यक्तियों के रवैये समय तथा विभिन्न विभागों के प्रयत्नों में भेद के समाधान हेतु समन्वय की आवश्यकता पड़ती है।

**समन्वय की महत्ता.**—निम्नलिखित कथनों से समन्वय की महत्ता को समझा जा सकता है।

1. **समन्वय दल–भावना को प्रोत्साहित करता है**—संगठन में व्यक्तियों, विभागों लाइन एवं स्टाफ इत्यादि के मध्य संघर्ष (टकराव) एवं प्रतिद्वदिता होती है। इसी प्रकार व्यक्तिगत उद्देश्यों एवं सांगठनिक उद्देश्यों के मध्य भी टकराव होते है। समन्वय कार्यों एवं उद्देश्यों को इस प्रकार व्यवस्थित करता है, जिससे संघर्ष एवं प्रतिद्वंदिता न्यूनतम हो। यह कर्मचारियों को दल के रूप में कार्य करते एवं संगठन के समान (उभयनिश्ठ) उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु प्रोत्साहित करता है। यह कर्मचारियों में दल भावना को बढ़ाता है।
2. **समन्वय उचित दिशा–निर्देश प्रदान करता है**—संगठन में कई विभाग होते है। प्रत्येक विभाग भिन्न गतिविधि का निष्पादन करता है। समन्वय संगठन के उभयनिष्ठ लक्ष्यों, उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये इन समस्त गतिविधियों

को एक साथ लाता है। इस प्रकार समन्वय संगठन के समस्त विभागों को उचित दिशा निर्देश प्रदान करता है।

3. **समन्वय अभिप्रेरण को सुगम बनाता है**—समन्वय कर्मचारियों को स्वतंत्रता प्रदान करता है। यह कर्मचारियों को पहल करने को प्रोत्साहित करता हैं यह उन्हीं कई वित्तीय एवं गैर वित्तीय प्रोत्साहन प्रदान करता है। इस कारण से कर्मचारी कार्य संतुष्टि प्राप्त करते हैं तथा श्रेष्ठतर निष्पादन हेतु अभिप्रेरित होते है।

4. **समन्वय संसाधनों का अनुकूलतम उपदान संभव बनाता है**—समन्वय संगइन के मानवीय एवं भौतिक (सामग्री) संसाधनों को एक साथ लाने में सहायता करता है। यह संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग को संभव बनाने में सहायता करता है। ये संसाधन संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु उपयोग में लाये जाते है। समन्वय संगठन में संसाधनों के अपव्यय को न्यूनतम करता है।

5. **समन्वय उच्च दक्षता को अग्रसर करता है**—दक्षता आंगत एवं निर्गत का सम्बन्ध हैं जब आगत न्यून एवं निर्गत अधिक होगे तब दक्षता उच्च होगी। चूँकि समन्वय संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग को संभव बनाता है। अतः इससे निम्न लागत एवं अधिक प्राप्ति होती है। इस प्रकार समन्वय उच्च दक्षता (कुशलता) की अगुआई करता है।

**समन्वय का अभिप्राय (की सार्थकता)**

1. **समूह–प्रयत्न**—समन्वय समूह प्रयत्नों पर आयोजित (लागू) होता है न कि व्यक्तिगत प्रयासों पर समन्वय असम्बन्धित अथवा भिन्न–भिन्न हितों के एकीकरण से सम्बन्ध रखता है जिनको एक साथ लाना अनिवार्य है यदि उद्देश्यपूर्ण कार्यों को प्रभावी ढंग से पूर्ण करता है।

2. **कार्य की एकता**—समन्वय का उद्देश्य समान लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु कार्य की एकता सुनिश्चित करना है। यह विभिन्न विभागों के मध्य बंधनकारी शक्ति (बल) के रूप में कार्य करता है तथा यह सुनिश्चित करता है कि समस्त कार्यों का उद्देश्य संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करना है।

3. **सतत प्रक्रिया**—समन्वय एक बार की नहीं वरन एक सतत प्रक्रिया है। यह उद्देश्यों की प्राप्ति सुनिश्चित करने वाली कभी समाप्त न होने वाली प्रक्रिया है।

4. **व्यापक प्रकार्य (कार्य)**—विभिन्न विभागों की गतिविधियों की अंर्तनिर्भरता की प्रकृति के कारण समन्वय की आवश्यकता प्रबंध के समस्त स्तर पर पड़ती है। यह समस्त स्तर के विभागों के स्तर को एकीकृत करती है। समन्वय के अभाव में सामंजस्य एवं गतिविधियों के एकीकरण के स्थान पर अतिच्छादन (परस्पर व्यापन) होती है।

5. **प्रबंधन का उत्तरदायित्व**—समन्वय संगठन में प्रबंधकों का उत्तरदायित्व हैं। उच्च, मध्य तथा निम्न स्तर तीनो स्तर के प्रबंधनों को अपने गतिविधियों को समबन्धित करना होगा जिससे वे यह सुनिश्चित कर सकें कि कार्य योजनानुसार ही आगे बढ़ रहा है।

6. **उद्देश्यपूर्ण क्रिया (जानबूझकर कृत कार्य)**—प्रबंधक को संगठन के विभिन्न व्यक्तियों के कार्य को प्रयत्नों को संचलन एवं उद्देश्यपूर्ण ढेग से समन्वित करना होता है। यहाँ तक कि जब एक विभाग के सदस्य ऐच्छिक ढंग से सहयोग एवं कार्य करते है। समन्वय उनकी इच्छा की भावना को एक नयी दिषा प्रदान करता है। यह सचेतन प्रबंधकीय क्रियाओं द्वारा प्राप्त किया जाता है। यह स्वचालित नहीं होती है।

## 9.4 समन्वय के सिद्धांत

जैसा कि समन्वय के मूल (प्रथम) सिद्धांत में बताया गया है कि समन्वय शक्ति द्वारा या प्राधिकार के द्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता है। यह व्यक्ति–व्यक्ति तथा पक्षों के पक्षों से सम्बन्ध द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

प्रभावी समन्वय की प्राप्ति एक क्रमबक (अनुक्रमिक) प्रक्रिया है। यह तभी संभव है जब निम्नलिखित दषाएं पूर्ण हो,

1. **स्पष्टतः परिभाषित तथा सुबोध उद्देश्य**—प्रत्यके व्यक्ति तथ विभा को यह अवश्यक बोध होना चाहिये कि संगठन की उनसे अपेक्षायें क्या है। उच्च प्रबंधन द्वारा उद्यम, सम्पूर्ण इकाई के रूप में, हेतु उद्देश्य स्पष्टतः वर्णित किये जाने चाहिये। उद्यम में सूत्रित (प्रतिपादित) समस्त योजनाये अंर्तसम्बन्धित होनी चाहिये तथा एक साथ व्यवस्थित होने के उद्देश्य से अभिकल्पित होनी चाहिये।
2. **कार्य का उचित वितरण, (विभाजन)**—सम्पूर्ण कार्य को व्यक्तियों के मध्य उचित ढंग से विभाजित एवम आवंटित कया जाना चाहिये। यह प्रत्येक वस्तु के लिये एक स्थान, तथा प्रत्येक वस्तु अपने स्थान पर सिद्धांत पर आधारित होना चाहिये।
3. **सरल संगठनिक ढाँचा**—संगठन के विभिन्न विभाग इस प्रकार से समूहित होने चाहिये कि कार्य एक चरण (अवस्था) से दूसरे चरण में सरलता (सुगमता) में आगे बढ़े। अतिषय विशेषीकरण समन्वय के कार्य को जटिल कर सकता है।
4. **प्राधिकार की स्पश्ट रेखा (पंक्ति)**—प्राधिकार का प्रत्यायोजन स्पश्ट ढंग से होना चाहिये। व्यक्ति को यह जानना चाहिये कि उसके उच्चस्थों की उससे क्या अपेक्षायें है। एक बार प्राधिकार स्वीकार कर लेने के पश्चात् अधीनस्थ अपने कार्य क्षेत्र के परिणामों हेतु जवाबदेह होना चाहिये। उच्चस्थ भी संर्घष को समाप्त कर समन्वय प्राप्त कर सकते है।
5. **नियमित एवं समयोचित संचार**:—समन्वय व्यक्तिगत संश्रय (संपूर्ण) समन्वय प्राप्त करने हेतु सर्वश्रेष्ठ संचार साधन है। संगठन में विभिन्न समूहों के उचित एवं समयानुकूल सूचना प्रदान करने हेतु संचार के अन्य साधनों यथा अभिलेख प्रतिवेदन का भी प्रयोग किया जा सकता है।
6. **समर्थ नेतृत्व**:—वास्तविक समन्वय केवल प्रभावी नेतृत्व के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इस हेतु उच्च प्रबंधन निम्नलिखित को प्रदान करने में समर्थ होना चाहिये, (I) अनुकूल कार्य वातावरण; (II) कार्य का उचित आवंटन, (III) अच्छे कार्य हेतु प्रोत्साहन इत्यादि।

यह अधीनस्थों को हितों के पहचान तथा समान दृश्टिकोण अपनाने को राजी करने वाला होना चाहिये।

## 9.5 समन्वय की प्रकिया

जैसा कि समन्वय के प्रथम सिद्धान्त में चर्चा की गयी है, समन्वय को कभी भी बलपूर्वक नहीं प्राप्त किया जा सकता अथवा प्राधिकार द्वारा आरोपित नहीं किया जा सकता। यह व्यक्ति दर व्यक्ति, पक्ष दर पक्ष सम्बन्धों के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

प्रभावी समन्वय की प्राप्ति एक अनुक्रमिक (क्रमबद्ध) प्रक्रिया है। यह निम्न दिशाओं के पूर्ण होने पर ही सम्भव है।

1. **स्पष्टतः परिभाषित एवं समझे गये लक्ष्य :–**

   प्रत्येक व्यक्ति तथा प्रत्येक विभाग को यह अवश्य ही समझना चाहिये कि संगठन द्वारा उनसे क्या अपेक्षित है। उच्च–प्रबन्धन को सम्पूर्णतः उद्यम के उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से वर्णित करना चाहिये। उद्यम में निर्मित विविध योजनायें अवश्य ही अन्र्त सम्बन्धित एवं एक दूसरे से मेलित हों इस प्रकार अभिकल्पित होनी चाहिये।

2. **कार्य का उचित विभाजन :–**

   समस्त कार्यों को व्यक्तियों के मध्यम उचित ढ़ंग से विभाजित एवं वितरित किया जाना चाहिये। यह सभी के लिये एक स्थान एवं सभी अपने स्थान पर के सिद्धान्त पर आधारित होना चाहिये।

3. **सरल संगठन संरचना :–**

   संगठन में कार्यरत समस्त विभागों को इस प्रकार समूहित किया जाना चाहिये जिससे कि कार्य एक चरण (अवस्था) से दूसरे चरण में सुगमता (सरलता, सरसता) के साथ बढ़ सके। अत्यधिक विशेषीकरण (विशेषज्ञता) समन्वयन कार्य को जटिल बनाता है।

4. **प्राधिकार की स्पष्ट रेखा :–**

   प्राधिकार का प्रत्यायोजन स्पष्ट ढंग से होना चाहिये। व्यक्ति को यह अवश्य जानना चाहिये कि उनके वरिष्ठ (उच्चस्थ) उनसे क्या अपेक्षा रखते हैं। एक बार प्राधिकार स्वीकृत हो जाने पर (स्वीकार कर लेने पर) अधीनस्थ अपने कार्य क्षेत्र परिणामों हेतु अवश्य ही हिसाब देय होना चाहिये। उच्चस्थ भी संघर्ष (विवाद) को कम कर के समन्वयन प्राप्त कर सकते हैं।

5. **नियमित एवं समयानुसार सम्प्रेषण :–**

   व्यक्तिगत सम्बन्ध (पहुँच) को समन्वयन प्राप्त करने हेतु सामान्यतः संचार का सर्वश्रेष्ठ प्रकार (ढंग/साधन) माना जाता है। सम्प्रेषण के अन्य माध्यम यथाः अभिलेख, प्रतिवेदन, का भी प्रयोग संगठन में विभिन्न समूहों को समयानुसार (समय पर) तथा सटीक सूचना की आपूर्ति हेतु प्रयोग में लाया जा सकता है।

6. **सुदृढ़ नेतृत्व :–**

   वास्तविक समन्वयन केवल प्रभारी नेतृत्व द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। इस हेतु उच्च प्रबन्ध को निम्नलिखित को प्रदान करने में सक्षम

(योग्य) होना चाहिये, (a) मित्रतापूर्ण कार्य वातावरण, (b) कार्य का उचित आवंटन, (c) श्रेष्ठ कार्य हेतु प्रेरक इत्यादि।
यह अधीनस्थों को समान हितों को रखने एवं एक समान (उभयनिष्ठ) दृष्टिकोण रखने हेतु मनाने (राजी करना) वाला होना चाहिये।

## 9.6 समन्वय की तकनीके

समन्वय प्राप्त करने हेतु प्रबंधन अनके तकनीकें अपना सकते है। कुछ प्रमुख तकनीकें निम्नलिखित हैं :

1. **सुदृढ़ नियोजन**—उद्देश्यों की एकता समन्वय हेतु प्रथम आवश्यक शर्त है। इसलिये संगठन के लक्ष्य तथा इकाइयों के लक्ष्य सुस्पष्टतः परिभाषित होने चाहिये। नियोजन समन्वय की आदर्ष अवस्था है। स्पश्ट उद्देश्य सामंजस्यपूर्ण नीतियाँ, तथा एकीकृत प्रक्रियायें एवं नियम कार्य की एकता को सुनिश्चित करते है।
2. **सरलीकृत संगठन**—एक सरल एवं सुदृढ़ संगठन समन्वय का एक प्रमुख माध्यम है। संगठन संरचना की उच्चस्तर से निम्न स्तर तक प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व की रेखा स्पष्टतः परिभाषित होनी चाहिये। स्पष्ट प्राधिकार सम्बन्ध संघर्षो को कम करता है तथा लोगों (व्यक्तियों) को जिम्मेदार बनाता है। सम्बन्धित गतिविधियाँ एक समूह या एक विभाग में समूहित होनी चाहिये। अत्यधिक विशेषीकरण से बचना चाहियें क्योंकि यह प्रत्येक इकाई को स्वयं में एक छोर बनाने की ओर अग्रसर करता है।
3. **प्रभावी संचार**—खुला एवं नियमित संचार समन्वय की कुँजी है। विचारों एवं समचनाओं का प्रभावी आदान–प्रदान भेदभावों के समाधान में तथा परस्पर समझ सृजित करने में सहायता करता है। व्यक्तिगत एवं आमने–सामने (सम्मुख) का सम्पर्क सर्वाधिक प्रभावी संचार माध्यम एवं समन्वय का साधन है। समितियाँ विभिन्न विभागों के मध्य उद्देश्यों की एकता तथा कार्यों की एकता के प्रोत्साहन में सहायता करती है।
4. **प्रभावी नेतृत्व एवं पर्यवेक्षण**—प्रभावी नेतृत्व नियोजन एवं क्रियान्वयन दोनों अवस्थाओं (स्तरों) पर समन्वय सुनिश्चित करता है। एक अच्छा नेता अपने अधीनस्थों की गतिविधियों को सही दिशा में मार्गदर्शित कर सकता है तथा उनकों समान उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु एक साथ ला सकता है। अच्छा (मजबूत) नेतृत्व अधीनस्थों को हितो में समानता (एकरूपता) लाने तथा समान दृष्टिकोण अपनाने को राजी कर सकता है। व्यक्तिगत पर्यवेक्षण वैचारिक मतभेदों के समाधान की एक प्रमुख विधि है।
5. **आदेश की श्रृंखला**—प्राधिकार संगठन में सर्वोच्च समन्वयकारी शक्ति होती है। पद सोपान अथवा आदेश की श्रृंखला द्वारा प्राधिकार का प्रयोग समन्वय का परम्परागत माध्यम है। अंर्तनिर्भर इकाइयों को एक स्वामी (बाँस) के अधीन रखने से उनमें समन्वय सुनिश्चित किया जा सकता है।
6. **भरोसा एवं प्रेरक (प्रोत्साहन)**—संगठन के सदस्यों में संगठन के लक्ष्य एवं ध्यय के प्रति भरोसा जमाकर एक उदासीन निकाय को प्रतिबद्ध निकाय में रूपांतरित कर सकता है। इसी प्रकार प्रेरक (प्रोत्साहन) का प्रयोग भी

हितों की पारस्परिकता के सृजन तथा संघर्षों को न्यून करने हेतु किया जा सकता है। उदाहरणार्थ लाभ–निभाजन दल भावना के उद्दयन एवं नियोक्ताओं एवं कामगारों के मध्य सहायोग वर्धन में सहायक है।

**7. सम्पर्क (मेल–जोल) विभाग**—जहाँ विभिन्न संगठनिक इकाइयों के मध्य बार बार सम्पर्क आवश्यक होता है। मेलजोल आदि के लिए सम्पर्क अधिकारी नियुक्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिये सम्पर्क अधिकारी यह सुनिश्चित कर सकता है कि उत्पादन विभाग विक्रय विभाग द्वारा वचनित (दिये गये) सुपुर्दगी तिथि एवं विनिर्देशों को संभव बना रहा है। कुछ मामलों में विशेष समन्वयक नियुक्त किये जा सकते है। उदाहरणार्थः विनिर्दिष्ट समयावधि में सम्पादित किये जाने वाले एक प्रयोजना (परियोजना) के विभिन्न पदाधिकारियों की गतिविधियों को समन्वयित करने हेतु एक परियोजना समन्वयक की नियुक्ति की जाती है।

8. **समन्वय स्टाफ (कर्मचारीगण)**—विशाल संगठनों में स्टाफ विषेशज्ञों का केंद्रीकृत समुच्चय समन्वय हेतु प्रयुक्त होता है। एक समन्वय स्टाफ समूह सूचनाओं के समाषोधन गृह के रूप में कार्य करता है तथा समस्त विभागों को विशेषीकृत सलाह देता है। ये सामान्य स्टाफ अंर्त–विभागीय अथवा क्षैतिज समन्वय में अति–सहायक होते है। कार्य–बल एवं परियोजना दल भी समन्वयन में उपयोगी है।

9. **स्वैच्छिक समन्वय**—जब प्रत्येक इकाई अपने सम्बन्धित इकाई के कार्यों की सराहना करती है तथा अपने कार्य–पद्धति को उनकी अनुकूलता के अनुसार परिवर्धित, (संशोधित) करती है। तो यह स्व–समन्वयन कहलाता हैं। स्व समन्वय अथवा ऐच्छिक समन्वय समर्पण एवं परस्पर सहयोग के वातावरण में ही संभव हैं यह संगठन के सदस्यों के मध्य परस्पर विमर्श तथा दल–भावना के कारण होता है। हालाँकि यह प्रबंधक के समन्वयकारी प्रयत्नों का प्रतिस्थाना पत्र नहीं हो सकता है।

## 9.7 समन्वय के प्रकार

समन्वय को प्रमुखतः निम्न आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है :

1. **क्षेत्र**—क्षेत्र अथवा व्याप्ति के आधार पर समन्वय हो सकता है।

**आंतरिक.**—इससे तात्पर्य संगठन के भीतर विभिन्न इकाइयों के मध्य समन्वय से है। तथा इसे उद्यम के विभिन्न विभागों के लक्ष्यों एवं गतिविधियों को एकीकृत करके प्राप्त किया जाता है।

**वाह्य.**—इससे तात्पर्य एक संगठन एवं इसके वाह्य परिवेषों (पर्यावरण/परिस्थिति) जिनमें सरकार, समुदाय, उपभोक्ता, निवेषक, आपूतिहरणार्थ, उत्पाद न विभाग एवं विपणन विभाग के मध्य का समन्य क्षैतिज अथवा पार्ष्व समन्वय है। समन्वय को निम्न आधार पर भी वर्गीकृत किया जा सकता है।

**प्रक्रियात्मक अथवा तात्विक समन्वय;** हर्बट ए. साइमन के अनुसार, प्रक्रियात्मक समन्वय के तात्वर्य संगठन का स्वयं में विनिर्देशन (संगठन के सदस्यों के सम्बन्ध एवं व्यवहारों के सामान्य वर्णन) से है। जबकि दूसरी तरफ तात्विक समन्वय सांगठिक गतिविधियों के विशय वस्तु से सम्बन्धित है।

## 9.8 समन्वय की समस्यायें

प्रबंधन के सरल एवं सफल कार्य–पद्धति हेतु समन्वय आवश्यक है किंतु व्यवहारतः समन्वय को निम्नलिखित समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

1. **प्राकृतिक रूकावटें (बाधायें)**—कतिपय प्राकृतिक बाधाओं के कारण समन्वय प्रभावी नहीं हो पाता, ये प्राकृतिक बाधायें बाढ़, भूकम्प, आर्ग्न इत्यादि है, जो व्यक्तियों तथा समूह के व्यवहारों को प्रभावित करती है, परिणामतः अप्रभावी समन्वय प्राप्त होता है।
2. **प्राकृतिक प्रतिभा का आभाव**—यह समस्या अदक्ष प्रतिभागियों के चयन से उत्पन्न होती है। वे प्रशासनिक कार्यवाहियों को यथोचित रूप से नहीं समझ पाते । परिणामतः अप्रभावी समन्वय की प्राप्ति होती है।
3. **समन्वय की तकनीकों का अभाव**—प्रबंधन प्रभावी समन्वय की नवीन तकनीकों को पाने हेतु प्रायः रूचि नही रखता । जिस कारण से संगठन में विकास का वातावरण नहीं बन पाता। यदि प्रबन्धन समन्वय का विविध तकनीकों को उपयोग में लाता है तो समन्वय की समस्याओं का निदान किया जा सकता है।
4. **विचार एवं उद्देश्य**—प्रत्येक प्रबंधन अपने उद्देश्य रखता है तथा इन्हें प्राप्त करने के ढंग भी रखता है। किंतु प्रबंधक इन उद्देश्यों के साथ विचारों से भूमित हो जाते है। इस कारण से समन्वय की समस्या उत्पन्न होती है।
5. **मिथ्या बोध (गलत फहमी)**—एक संगठन में अनेक कार्मिक नियोजित होते है, वे सभी एक दूसरे के साथ ताल मेल रखते है, किन्तु समन्वय की समस्या प्रायः कर्मचारियों के मध्य गलत फहमी के कारण फैलती है।

## 9.9 सारांश

परिणाम प्राप्ति हेतु प्रबंधकों को भौतिक वित्तीय एवं मानवीय संसाधनों को प्रभावी एवं दक्षतापूर्ण ढंग से संयोजित करना होगा। समन्वय कार्यों की एकता प्राप्त करने हेतु गतिविधियों का सचेतन एवं उद्देश्यपूर्ण सम्मिश्रण है। समन्वय किसी उद्यम की सफलता हेतु महत्वपूर्ण है। यह समस्त कार्यों एवं गतिविधियों को एक साथ लाती है, मानव–सम्बन्ध को उन्नत करती है, अंर्त–विभाग सामंजस्य बढ़ाता है। समन्वय कुछ निश्चित समय–परीक्षित सिद्धांतों के चारों ओर निर्मित है। प्रत्यक्ष अंर्तवैक्तिक समबन्धों एवं संचार के द्वारा सुगमता से प्राप्त किया जा सकता है। समन्वय नियोजन के प्रारंभिक अवस्था से ही आरम्भ होना चाहिये एक खुले प्रणाली की दशा में समस्त विभागों एवं इकाइयों को अपने अपने कार्य की अंर्तनिर्भरता समझनी चाहिये तथा सहयोग की भावना से कार्य करना चाहिये। समन्वय एक सहत प्रक्रिया है तथा प्रबंध के प्रत्येक कार्य में सम्मिलित है। समन्वय की प्रक्रिया निम्न चरणों को समारित करती है : स्पष्ट लक्ष्य, कार्य का उचित बंटवारा, सुदृढ़ संगठन का ढाँचा, स्पष्ट प्रतिवेदन सम्बन्ध, उचित संचार एवं मजबूत नेतृत्व ।

## 9.10 शब्दावली

**अभिवृत्ति (रवैया)**—स्थिरतः अनुकूल अथवा प्रतिकूल तरीके से किसी दिये हुये उद्देश्य/विषय के बारे में, प्रतिक्रिया देने का व्यवहार ।

**सहयोग**—व्यक्तियों की स्वयं साथ कार्य करने की तथा एक–दूसरे की सहायता करने की इच्छा ।

**समन्वय**—समान उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु कार्य की एकता प्रदान करने को समूह प्रयत्नों की क्रमिक व्यवस्था ।

**नेतृत्व**—लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु व्यक्तियों को अभिप्रेरित करने का अउत्पीड़क प्रयत्न ।

**अभिप्रेरण**—संकल्पना जो व्यक्ति के अंदर या व्यक्ति पर कार्य करने वाली पक्तियों को जो आरम्भ करती है तथा प्रत्यक्ष व्यवहार को प्रभावित करती है को वर्णित करता है।

**विशेषीकरण**—कार्य–विभाजन का भाग जिसमें, दिये गये कार्य को यथा संभव उपकार्यों में विभाजित किया जाता है, जिनमें से प्रत्येक कार्य कार्मिक विशेष का उत्तरदायित्व हो जाता है।

**बोध प्रश्न**

**A. रिक्त स्थान की पूर्ति करें :–**

1. ...................समान उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कार्य की एकता प्रदान करने को समूह प्रयत्नों की क्रमिक व्यवस्था।
2. ............................. के प्रारंभिक अवस्था में समन्वय सरलता से प्राप्त किया जा सकता है
3. ....................... प्रबंध सोपान के समान स्तर पर अवस्थित समस्त विभागो एवं इकाइयों के मध्य समन्वय से है।
4. ......................समन्वय सुनिश्चित करता है कि संगठन के सभी स्तर सामंजस्य पूर्ण ढंग से तथा संगठन के लक्ष्यों एवं नीतियों के अनुरूप कार्य करें।

**B. सही या गलत**

1. समन्वय सहयोग के समान ही है।
2. समन्वय की आवश्यकता एक संगठन की गतिविधियों को एकीकृत करने हेतु अनुभव की जाती है।
3. स्वतंत्र इकाइयों के सृजन से समन्वय की आवश्यकता बढ़ती है।
4. समन्वय व्यवसायिक एवं व्यक्तिगत उद्देश्यों सामंजस्य लाता है।
5. पद सोपान प्रभावी संचरण भरोसा कुछ प्रमुख समन्वय तकनीके है।
6. समन्वय को नियोजन के आरंभिक अवस्था में ही अवलोकित कर लेना चाहिये।
7. क्षैतिज समन्वय एक तरफा स्थित होती है,
8. अधिक समन्वय की आवश्यकता अनुक्रमिक अंर्तनिर्भरता में पड़ती है न कि समुच्चय अंर्तनिर्भरता में।
9. प्रबंधकीय गतिविधि हेतु समन्वय एवं नियंत्रण आवश्यक है।
10. आंतरिक समन्वय समन्वय है शाखा कार्यालयों कर्मचारियों व प्रबंधकों का समान विभाग (एक विभाग) के कर्मचारियों के साथ।

## 9.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

A.

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | समन्वय | 2. | नियोजन एवं नीति निर्माण |
| 3. | क्षैतिज या पार्श्विक समन्वय | 4. | उर्ध्व |

B.

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | गलत | 2. | सही | 3 | . गलत | 4. | सही |
| 5. | सही | 6. | सही | 7. | सही | 8. | गलत |
| 9. | सही | 10. | सही | | | | |

## 9.13 स्वपरख प्रश्न

1. समन्वय को परिभाषित कीजिये। समन्वय के क्या कारण है?
2. समन्वय के महत्व व सिद्धांतों को वर्णन कीजिये
3. समन्वय प्राप्ति की तकनीके बताइये।
4. समन्वय प्रक्रिया का वर्णन कीजिये। इस प्रक्रिया में क्या समस्यायें आती है।
5. प्रबंध विशिष्ट उद्देश्यों के लिये समस्त संसाधनों का समन्वय एवं एकीकरण है। व्याख्या कीजिये।
6. समन्वय प्रबंधक मूल तत्व है। क्या आप सहमत है? कारण बताइये।

## 9.14 सन्दर्भ पुस्तकें


1. Robbins S. P. and Decenzo David, “A. - Fundamentals of Management: Essential Concepts and Applications”, Pearson Education, 5th Ed.
2. Hillier Frederick S. and Hillier Mark S. - Introduction to Management Science: A Modeling and Case Studies Approach with Spreadsheets, Tata Mc Graw Hill, 2nd Ed., 2008.
3. Weihrich Heinz and Koontz Harold, “Management: A Global and Entrepreneurial Perspective”, Mc Graw Hill, 12th Ed., 2008.
4. R. Satya Raju and A. Parthasarathy, “Management Text and Classes”, PHI, 2nd Ed., 2009.
5. Stoner, Freeman & Gilbert Jr, Management, Prentice Hall of India, 6th Edition.
6. Koontz, Principles of Management, Tata Mc Graw Hill, Ist Edition.
7. Robbins & Coulter, Management, Prentice Hall of India, 8th Edition.

# इकाई–10 सम्प्रेषण (संदेश वाहन) संरचना

## इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 सम्प्रेषण : परिचय
10.3 सम्प्रेषण के कार्य
10.4 सम्प्रेषण का महत्व
10.5 सम्प्रेषण प्रक्रिया के तत्व
10.6 सम्प्रेषण के मूलभूत सिद्धांत
10.7 सम्प्रेषण के प्रकार
10.7.1 संगठनात्मक सम्बन्ध के आधार पर
10.7.2 सम्प्रेषण के प्रकार की दिशा के आधार पर
10.7.3 अभिव्यक्ति के ढंग के आधार पर
10.8 सम्प्रेषण में बाधाएं
10.8.1 अर्थ सम्बन्धी बाधायें
10.8.2 सांगठनिक बाधायें
10.8.3 भावनात्मक या मनोवैज्ञानिक बाधायें
10.8.4 व्यक्तिगत बाधायें
10.9 सम्प्रेषण की प्रभावोत्पादकता को उन्नत करना
10.10 सारांश
10.11 शब्दावली
10.12 बोध प्रश्न
10.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
10.14 स्वपरख प्रश्न
10.15 सन्दर्भ पुस्तकें

## उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- सम्प्रेषण के सिद्धांत, महत्व एवं कार्य का वर्णन कर सकें।
- सम्प्रेषण की प्रक्रिया का वर्णन कर सकें।
- सम्प्रेषण के विभिन्न प्रकारों के मध्य अंतर कर सकें।
- सम्प्रेषण की बाधाओं के चिन्हिकरण (पहचान) कर सकें।
- सम्प्रेषण को प्रभावी बनाने के उपाय की पहचान कर सकें।

## 10.1 प्रस्तावना

संदेशवाहन से अर्थ एक व्यक्ति तक सूचनाएं एवं समझ फैलाने (आगे बढ़ाने/पारित करना) से है। यह दो या अधिक व्यक्तियों द्वारा तथ्यों, विचारों, सुझावों अथवा भावनाओं के विनिमय को सम्मिलित करता है। कार्य के उचित निष्पादन हेतु यह आवश्यक हैं। सम्प्रेषण प्रबंध के कार्य का एक भाग भी है। एक प्रबंधक के रूप में उसे उचित (श्रेष्ठ) सहयोग हेतु प्रबंध की नीतियो, योजनाओं, कार्यक्रमों को अधीनस्थों, एवं कनिष्ठों को सम्प्रेषित करनी चाहिये। इस इकाई में

हम सम्प्रेषण के सिद्धांत एवं दैनिन्दन जीवन में, वर्तमान प्रबंध के परिप्रेक्ष्य में, महत्व को विमर्शित करेगे।

## 10.2 सम्प्रेषण (संदेशवाहन) : परिचय

सम्प्रेषण पद की व्युत्पत्ति लैटिन शब्द 'कम्यूनिस' से हुयी है जिसका अर्थ उभयनिष्ठ (सार्व)/समान है। इस प्रकार एक व्यक्ति को समान सूचना उसे सम्प्रेषित की जानी चाहिये। मानवीय अंर्तक्रिया के आधार प्रदान करने के कारण सम्प्रेषण मानव सम्बन्धों का आवश्यक तत्व बन गया है। यद्यपि सम्प्रेषण प्रबंध के समस्त चरणों में लागू होता है, किंतु नेतृत्व (मार्गदर्शन/प्रधान) की अनुपस्थिति में यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाता है।

सम्प्रेषण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक सूचना, विचार, राय प्रेषक से अभिग्राही (गृहीता) तक अभिग्राही द्वारा समझने की सूचना के साथ स्थानांतरित होता है।

**रोजर्स के अनुसार,** "सम्प्रेषण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति साझा (सार्व) समझा तक पहुँचने हेतु सूचनायें सृजित एवं साझा करते है।"

**न्यूमैन एवं सेमर के अनुसार,** "सम्प्रेषण उन समस्त चीजो का योग है जो एक व्यक्ति करता है जब वह दूसरे के मस्तिष्क में समझ उत्पन्न करना चाहता है। यह कथन श्रवण एवं समझ की प्रणालीकृत एवं सतत प्रक्रिया को सम्मिलित करता है।"

**विलियम स्कॉट के अनुसार,** सम्प्रेषण एक प्रक्रिया है जो सांगठनिक उद्देश्यों को प्राप्त करने वाले कार्यों को प्राप्त करने के उद्देश्य द्वारा पोषण एवं विचारों की प्रतिवृति की सुनिश्चितता की प्रक्रिया है।

**कूण्टन एवं ओ. डोनेल के अनुसार,** सम्प्रेषण शब्दों, अक्षरों, प्रतीकों अथवा संदेशों द्वारा पारस्परिक व्यवहार है तथा एक ढंग है जिससे एक संगठन के सदस्य दूसरे सदस्य के साथ अर्थ एवं समझ साझा करते है।

## 10.3 सम्प्रेषण के कार्य

1. **सूचना कार्य**—संगठन हो या व्यक्ति किसी भी जीवित (सजीव) प्रणाली की कार्यशीलता हेतु सूचना आवश्यक है। कोई भी संगठन अपने उद्देश्यों को नहीं प्राप्त कर सकता सिवाय वहां तक जहां तक कि सूचना प्रक्रियायें इसके उद्देश्य प्राप्ति के आंदोलन (प्रयास) को आगे बढ़ाती है। अतः यह व्यक्ति का उत्तरदायित्व है कि वे एक दूसरे को सम्प्रेषण के द्वारा प्रभावित करें जो कि व्यक्ति के सूचना प्रदान करने एवं प्राप्त करने के पहलू की स्थिति की महत्ता को बहुत अधिक बढ़ाता है।

2. **नियंत्रण निर्देशात्मक कार्य**—सम्प्रेषण नियंत्रण एवं निर्देशात्क कार्य निष्पादित करता है। वे जो पदानुक्रम में उच्च है, चाहे परिवार में, व्यवसाय, असैन्य (मानव समाज) अथवा सेना में, प्रायः सम्प्रेषण की अगुवाई (आरम्भ) करते है। महज अपने अधीनस्थों को सूचित करने हेतु ही नहीं वरन प्रायः उन्हें यह बताने हेतु कि क्या करना है, उन्हें निर्देश देने हेतु अथवा किसी ढंग से उनके व्यवहार को नियंत्रित करने हेतु।

3. **प्रभावित करना एवं प्रबोधक (प्रेरक/प्रत्यायक) कार्य**—सम्प्रेषण संगठन के समस्त स्तरों में कार्य करता (उपस्थित रहता) है। नेतृत्व काफी हद तक (उच्च परिमाण/सीमा) इस पर निर्भर करता है कि प्रबंधक अपने कर्मचारियों तथा अन्य

जो संगठन से किसी प्रकार सम्बन्धित हो सकते है से किस प्रकार संदेशवाहन (सम्प्रेषण) करता है।

4. **अनुकलनात्मक (संपूर्णात्मक) कार्य**—सम्प्रेषण का अनुकलनात्मक कार्य संगठन के विविध घटकों (अवयवो) के मध्य साम्य स्थापन में सहायक होता है। अनुकलनात्मक कार्य समस्त व्यवहार विज्ञान परिचालनें को समाहित करता है। जो

(1) जो संगठन को परिचालन में करने में सहायता (सेवा) देते है;

(2) अंर्तक्रिया प्रक्रिया को नियमित (विनियमन करना) करने का कार्य करते है;

(3) उन विशेष अंर्तक्रिया है किन्तु विशेष स्थिति है के संदर्भ में संदर्भ विशेषकों व्यापक संदर्भ से सम्बन्धित करते है।

## 10.4 सम्प्रेषण का महत्व

सम्प्रेषण प्रबंधकीय कार्यो (गतिविधियों) का सर्वाधिक केंद्रित (अति केंद्रीय) पहलू है। प्रबंध की नीतियों एवं कार्यक्रमों का क्रियान्वयन सिर्फ प्रभावी संदेशवाहन से ही संभव है। सम्प्रेषण की महत्ता को निम्नलिखित बिंदुओं की सहायता से विचारित (चर्चा) किया जा सकता है।

1. **प्रबंधकीय निष्पादन में सहायक**—सम्प्रेषण संगठन की कार्य पद्धति (कार्यशीलता) का आधार है। प्रबंधक सम्प्रेषण की सहायता से उचित (उपयुक्त) निर्णय ले सकता है। प्रबंधक सम्प्रेषण के द्वारा संगठन के उद्देश्यों को अधीनस्थों में वितरित कर सकता है।

2. **नियोजन में सहायक**—सम्प्रेषण सामान्य रूप में निर्णयन प्रक्रिया तथा विशेषतः नियोजन में सहायक होता है। सम्प्रेषण नियोजन प्रक्रिया में कई ढंग से सहायता करता है यथा (1) यह अधिशासियों को परस्पर मिलने (अंर्तक्रिया करने) एवं नियोजन हेतु बहुमूल्य आगत (समचना सुझाव) देने में, (2) यह अधिशासियों को अधीनस्थों के साथ सम्बन्ध स्थापन में उनके दृष्टिकोण को समझने तथा यर्थाथपरक सूचनाये प्राप्त करने में जिनसे मजबूत उचित योजनायें निर्मित की जा सके सहायता करता है (3) यह अधिशासियों को योजना की विषय वस्तु स्पष्ट रूप से वर्णित करने एवं उन पर अधीनस्थों की सहमति प्राप्त करने में सहायता करता है।

3. **नेतृत्व में सहायक**—सम्प्रेषण नेतृत्व का आधार है। प्रबंध सम्प्रेषण को अपने विचार, भावनाये, सुझाावों तथा निर्णयों को कर्मचारियों तक अग्रसारित करने (पहुचाने) हेतु प्रेषित (ट्रांस मीटर) की भांति प्रयुक्त करता है। कर्मचारी अपनी समस्याओं, आवश्यकतायें तथा प्रतिक्रियाये, प्रबंध को संसूचित करते है। इस द्विमार्गी सम्प्रेषण के अंतर्गत प्रबंध अपने को स्वयं अपने कर्मचारियों का नेता (प्रबंधक) मान सकता है। नेता एवं उसके अनुयायियों के मध्य श्रेष्ठतर सम्प्रेषण अर्थात प्रचलित (वर्तमान में अस्तित्व में रहने वाला) नेतृत्व की प्रक्रिया में समूह द्वारा अच्छे परिणाम की प्राप्ति।

4. **समन्वय के आधार के रूप में कार्य करता है**—विशाल आकार का संगठन बड़ी संख्या में कर्मचारियों को नियोजित करता है। जहां सांगठनिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु इन कर्मचारियों के मध्य समन्वय की आवश्यकता होती है। यह समन्वय महज सम्प्रेषण के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

5. **निर्णयन में सहायक**—उचित सम्प्रेषण वे समस्त आवश्यक सूचनायें प्रदान करता है जो प्रबंधक को उचित समय में गुणवत्ता परक निर्णय लेने को सक्षम बनाती है। सम्प्रेषण के अभाव (अनुपस्थिति में) में प्रबंधकों के लिये अर्थपूर्ण निर्णय लेना संभव नहीं हो सकता है।

6. **सम्प्रेषण अधिकारों के प्रत्यायोजन (प्रतिनिधायन) को सुगम (सुसाध्य) बनाता है**—अधिकारों का प्रत्यायोजन पूर्णतः सम्प्रेषण की प्रक्रिया पर आधारित है। उच्चस्थ एवं अधीनस्थ के मध्य सम्प्रेषण की मुक्त रेखा (पंक्ति) का निर्माण सफल प्रत्यायोजन की पूर्व आवश्यकता है।

7. **सम्प्रेषण श्रेष्ठ जन–संपर्क (जन–सम्बन्ध) निर्माण में सहायता करता है**—जन (लोक) शब्द उपभोक्त, संभावित उपभोक्ता, अंशधारियों जनता के सदस्यों राज्य सरकार केंद्र सरकार इत्यादि को सम्मिलित करता है। प्रबंध उचित एवं प्रभावी सम्प्रेषण के द्वारा जनता के मध्य अच्छी छवि का निर्माण कर सकता है। इस प्रकार प्रबंध श्रेष्ठ जन संपर्क (जन सम्बन्ध) स्थापित कर सकता है।

8. **उत्साह वर्धन तथा अभिप्रेरणा प्रदान करता है**—सम्प्रेषण की प्रभावी प्रणाली प्रबंध को अधीनस्थों को अभिप्रेरित प्रभावित करने एवं संतुष्ट करने हेतु सक्षम बनाता है। सम्प्रेषण सहभागी एवं लोकतांत्रिक प्रबंध पद्धति का आधार है। सम्प्रेषण कर्मचारियों एवं प्रबंधकों के उत्साह वर्धन में सहायता करता है।

## 10.5 सम्प्रेषण प्रक्रिया के तत्व

एक प्रक्रिया होने के कारण सम्प्रेषण को प्रक्रिया पूर्ण करने हेतु कतिपय तत्वों से युक्त होना चाहिये। ये तत्व प्रेषक, संदेश, कूटलेखन, श्रृंखला, प्राप्तकर्ता (अभिग्राही) कूटानुवाद (कूट शब्दों को पड़ना/डिकोडिंग) तथा प्रतिपुष्टि है जो चित्र रूप में (चित्र सं. 10.1) वर्णित है।

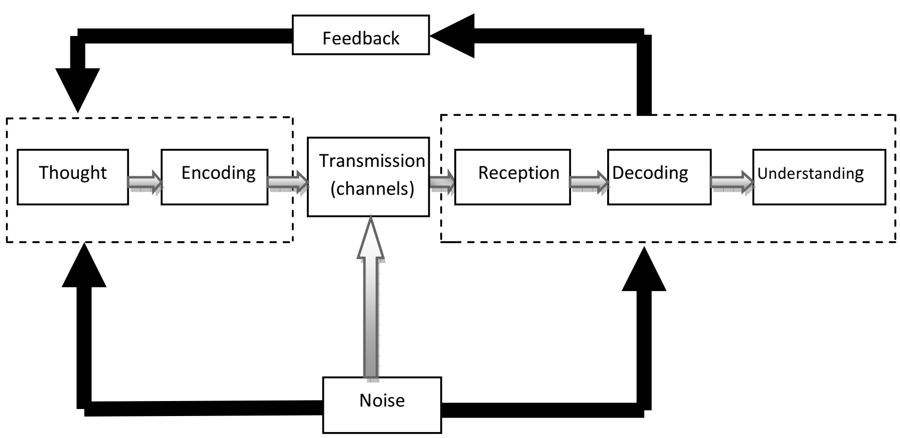


चित्र10.1:- सम्प्रेषण प्रक्रिया का मॉडल

1. **प्रेषक**—प्रेषक से आशय ऐसे व्यक्ति से है जिससे यह अपेक्षित है कि वह अपने विचारों अथवा सुझावों को प्राप्तकर्ता को सूचित/प्रकट/व्यक्त सम्प्रेषित करेगा। संगठन के दृष्टिकोण से प्रेषक एक उच्चस्थ, एक अधीनस्थ, समानपदस्थ या कोई अन्य व्यक्ति हो सकता है। प्रेषक की संगठनात्मक स्थिति (पद) संगठन में सम्प्रेषण की दिशा निर्धारित करती है। उच्चस्थ (उच्च पदस्थ) से अधीनस्थ की ओर प्रवाहित संदेश को नीचे की ओर का (गिरता हुआ) सम्प्रेषण कहते है तथा

अधीनस्थ से उच्चस्थ की ओर प्रवाहित संदेश उर्ध्व मुखी (ऊपर की ओर) सम्प्रेषण कहलाता है। समान पदों पर कार्यरत दो व्यक्तियों के मध्य प्रवाहित संदेश को क्षैतिज सम्प्रेषण कहा जाता है।

2. **संदेश**—यह सम्प्रेषण प्रक्रिया का पार्श्व (आधार) चरण है जो संदेशवाहन (सम्प्रेषण) के विषय वस्तु, जो कि संदेशवाहन प्रक्रिया को आरम्भ करने की प्रक्रिया के लिये आवश्यक है के निर्माण का कार्य करता है। यह विचारों, भावनाओं, सुझावों आदि की विषय सामग्री होती है। कभी–कभी व्यक्ति संदेश एवं संदेशवाहन (सम्प्रेषण) को विनियमयता के अनुसार (एक दूसरे के स्थान पर) प्रयोग करते है, उदाहरणार्थ : 'अ' 'ब' से पूछता है कि क्या तुमने कभी अपनी कम्पनी से इस मामले पर कोई सम्प्रेषण प्राप्त किया है। यद्यपि तकनीकी रूप से सम्प्रेषण पद का प्रयोग संदेश के स्थान पर किया जाना अनुचित है किन्तु सम्प्रेषण विषय वस्तु का अर्थ भली–भांति समझा जा सकता है।

3. **कूट लेखन (इनकोडिंग)**—यह संदेश को अर्थपूर्ण प्रतिकों यथाः शब्दों चित्रों, मुझा (भावभंडीय) में रूपांतरित करने की प्रक्रिया हैं क्योंकि विचार, सुझााव, भावनाये, दृष्टिकोण, आदेश, सुझााव आदि जो कि सम्प्रेषण की विषय वस्तु होते है। अमूर्त एवं गैर महसूस (जो स्पर्श से जानन पड़े) किये जाने वाले होते है। अतः इनको पारेषित (प्रेषित/भेजने हेतु) करने हेतु यह आवश्यक है, कि इनकों अर्थपूर्ण प्रतीकों यथा शब्दों, चित्रों, भाव–भंणिमा (मुद्दाओं) एवं अन्य शारीरिक भाषाओं में परिवर्तित किया जाये। अर्थपूर्ण पद अति–महत्वपूर्ण है। क्योंकि यदि प्रतीक अर्थपूर्ण नहीं है तब आदाता (अभिग्रहो) संदेश को नहीं समझ सकता।

4. **श्रृंखला (माध्यम)**—श्रृंखला वह पथ होता है जिसके द्वारा कूटलेखित संदेश आदाता को सम्प्रेषित किया जाता है। श्रृंखला (माध्यम) लिखित, शब्दों में लिखित, पत्र के रूप में अथवा इलेक्ट्रानिक मेल (ई–मेल) मौखिक, प्रत्यक्ष संपर्क से कहे गये शब्द अथवा दूरभाष पर कहे गये, दोनों, हो सकते है। यह पक्षकारों प्रेषक एवं आदाता की स्थिति पर निर्भर करता है।

5. **आदाता (प्राप्तकर्ता/गृहीता)**—आदाता व्यक्ति है जो प्रेषणकर्ता द्वारा भेजे गये संदेश को प्राप्त करता है। प्रेषक की भांति प्राप्तकर्ता (आदाता) उच्चस्थ अधीनस्थ, सह पदस्थ या सांगठनिक संदर्भ में कोई अन्य व्यक्ति हो सकता है। यह अंर्तवैक्तिक सम्प्रेषण के लिये सत्य है। समूह सम्प्रेषण में प्राप्तकर्ता (आदाता, गृहीता) व्यक्तियों के एक समूह के रूप में होते है संगठन के प्रबंधक द्वारा कर्मचारियों के एक समूह को सम्बोधित करना।

6. **प्रतिपुष्टि**—सम्प्रेषण प्रक्रिया को पूर्ण करने हेतु प्राप्तकर्ता द्वारा प्रेषक को संदेश की प्रतिपुष्टि भेजना अत्यावश्यक है। यह उन समस्त कार्यों को सम्मिलित करता है जो यह सुनिश्चित करता है कि प्राप्त कर्ता ने संदेश प्राप्त कर लिया है तथा उसे उसी रूप में समझा है जैसा कि आदाता अभिप्रेत था। प्रतिपुष्टि समस्त प्रणालियों, प्राकृतिक अथवा मानव निर्मित, की सामान्य विशेषता (लक्षण) है। प्रतिपुष्टि एक व्यवस्था (प्रणाली) है जो यह समझने में सहायता करती है, कि प्रणाली उचित रीति से कार्यकर रहीं हैं यदि यह उचित ढंग से कार्य नहीं कर रहा है तो सुधारात्मक कार्यवाही किया जाना आवश्यक है।

7. **कोलाहल (शोर/बाधा)**—शोर (कोलाहल) से अर्थ सम्प्रेषण में व्याप्त बाधाओं, व्यवधानों से हैं यह कोलाहल (बाधा) प्रेषक, संदेश अथवा आदाता (किसी भी पक्ष, चरण, स्तर) किसी भी कारण से कारित हो सकता है। बाधा (शोर) के कुछ उदाहरण खराब दूरभाष नेटवर्क भाव भंगिका अथवा अंग विन्यास, जो संदेश को विकृत कर सकते है, अथवा असावधान प्राप्तकर्ता आदि है।

## 10.6 सम्प्रेषण के मूलभूत सिद्धांत

सम्प्रेषण के कतिपय प्रमुख सिद्धांत निम्नलिखित है :

1. संचारण की अनदेखी असंभव है;
2. संदेशवाहन (सम्प्रेषण) व्यापक रूप से सांकेतिक (अशाब्दिक) है।
3. परिस्थिति (संदर्भ/विषय) सम्प्रेषण को प्रभावित करता है।
4. अर्थ व्यक्तियों में होते है, शब्दों में नहीं
5. सम्प्रेषण अपरिवर्तनीय (अचल, वेबदल) करता है।
7. सम्प्रेषण वृत्तीय (वृत्तकार/चक्राकार) होता है।
8. समान लक्ष्यों (साझा लक्ष्य) की रचना आवश्यक है।
9. सम्प्रेषण प्रभाव रखता है।

सम्प्रेषण का प्रथम सिद्धांत यह है कि उसकी उपेक्षा असंभव है। अन्य शब्दों में गैर संदेशवाहन (सम्प्रेषण की अनुपस्थिति) जैसी कोई वस्तु नहीं है। डीवीटो (1980) ने व्याख्या की कि सम्प्रेषण अनिवार्य (अपरिहार्य/अवश्यभावी) है। क्योंकि व्यक्ति गैर–अभिव्यक्तिशील (गैर–मिलनसार) नहीं हो सकते तथा व्यक्ति अ–प्रतिक्रिया शील नहीं हो सकते।

व्यापक रूप से सम्प्रेषण सांकेतिक, अशाब्दिक है। इशारे, संकेत अशाब्दिक सम्प्रेषण हेतु अधिक प्रयोग किये जाते है। सम्प्रेषण का तृतीय सिद्धांत यह है कि संदर्भ (वातावरण) सम्प्रेषण के मध्य सम्बन्ध होता है। वातावरण सम्प्रेषण को प्रभावित करता हैं विचार कहां प्रस्तुत किये गये है यह विचार कैसे प्रस्तुत किये गये है, के मध्य अंतर स्थापित करता है। भौतिक दशाएं वातावरण का एक पहलू है।

सम्प्रेषण की सफलता हेतु चतुर्थ सिद्धांत यह है कि अर्थ व्यक्तियों में निहित होते है, शब्दों में नहीं। अर्थ कूटानुवाचक (संदेश प्राप्त करने वाले) की अनुभूति में निहित होते है। व्यक्ति मायने रखते है, शब्द नहीं। प्राप्तकर्ता द्वारा स्मरित संदेश प्रायः वह नहीं होता जो प्रेषक (संसूचक) के कहने का अभीष्ट था। संदेश जो स्मरित रहता है वह होता है जो श्रवणकर्ता (प्राप्तकर्ता) विवेचित करता है। एक अन्य प्रमुख सिद्धांत यह है कि सम्प्रेषण अपरिवर्तनीय (अचल) होता है। तुरंत अथवा एक बार व्यक्ति वह दच्छा रख सकता है कि वह जो कहे है अथवा किये है उसे परिवर्तित कर सके, दुर्भाग्य से यह असंभव हैं व्यक्ति अपने पूर्व कार्यो के विषय में अतिरिक्त सूचना अथवा विवेकपूर्ण तर्क दे सकते है, किन्तु इस प्रकार वे अपने अपने पूर्व प्रभावों को मात्र संशोधित ही कर सकते है। यह सम्प्रेषण का एक प्रमुख दोष है।

षष्ठम सम्प्रेषण सिद्धांत यह है कि कोलाहल (बाधा) किसी भी संदेशवाहन स्थिति (दशा) में एक घटक है। कोलाहल (बाधा) किसी प्रदत्त संदेश के स्पष्ट एवं सटीक सम्प्रेषण में हस्तक्षेप करता है।

संदेशवाहन वृत्तीय होता है। रैखिक नहीं। इसका अर्थ यह है कि व्यक्ति एक ही समय में सम्प्रेषण भेजते है तथा प्राप्त करते है। अपने युगपत (एक ही समय/एक साथ) पहलू के कारण सम्प्रेषण को वृत्तीय अथवा चक्राकार माना जाता हे। व्यक्ति जब दूसरे से बोलते है तो वे प्रतिपुष्टि करते है। तथा वे अपने से वार्तालाप करते है विचार करना जब दूसरे लोग बोल रहे होते है।

सम्प्रेषण का अष्टम सिद्धांत यह है कि सम्प्रेषण तब अधिक (सर्वाधिक) प्रभावी होगा, जब प्रतिभागी समान अनुभव की यथेष्ट मात्रा साझा करें। समान अनुभव साझा प्रतीकों, तथा साझा इतिहास के आधार पर वार्तालाप करने से प्राप्त किया जाता है। इन दशाओं में गलत फहमी (असम्मित) अल्प संभावित होती है। सम्प्रेषण का अंतिम सिद्धांत यह है कि सम्प्रेषण सदैव एक प्रकार का प्रभाव रखता है। प्रत्येक सम्प्रेषण क्रिया का एक प्रभाव (परिणाम) होगा। व्यक्ति उस संदेशवाहन में जो प्रेषक/वक्ता ने शब्दों में न अभिव्यक्त की हो भी परिपूर्णता की भावना का अनुभव कर सकता है।

## 10.7 सम्प्रेषण के प्रकार

सम्प्रेषण को विविध ढंग सें वर्गीकृत किया जा सकता है। कतिपय प्रमुख वर्गीकरण निम्नलिखित है।

**10.7.1 संगठनात्मक सम्बन्ध के आधार पर**—संगठनात्मक सम्बन्धों के आधार पर संदेशवाहन को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1. औपचारिक सम्प्रेषण एवं
2. अनौपचारिक सम्प्रेषण

1. **औपचारिक सम्प्रेषण**—जैसा कि नाम से स्पष्ट है, औपचारिक सम्प्रेषण सोद्देश्य रचित एवं आधिकारिक रूप से संगठन के विभिन्न पदों (स्थिति) के मध्य संदेशवाहन के प्रवाह हेतु निर्धारित पथ हैं औपचारिक सम्प्रेषण में सम्प्रेषण के तीनों प्रकार, मौखिक, लिखित एंव अशाब्दिक, सम्मिलित होते है। कभी कभी इसे द्वारा उचित माध्यम भी कहा जाता है। उचित माध्यम संदेश वाहन के प्रवाह को नियमित करने तथा सुचारू, सटीक तथा समयानुसार सूचना के प्रवाह (संचरण) को सुनिश्चित करने का प्रयास है। जिस पद्धति के द्वारा संगठन में संदेशवाहन का प्रवाह होता है। वह सामान्यतया सम्प्रेषण संजाल का परिचायक होता है। औपचारिक संगठन में विभिन्न प्रकार के सम्प्रेषण संजाल होते है। कतिपय प्रमुख (लोकप्रिय) संदेशवाहन संजाल निम्न चित्र में प्रस्तुत व वर्णित है।

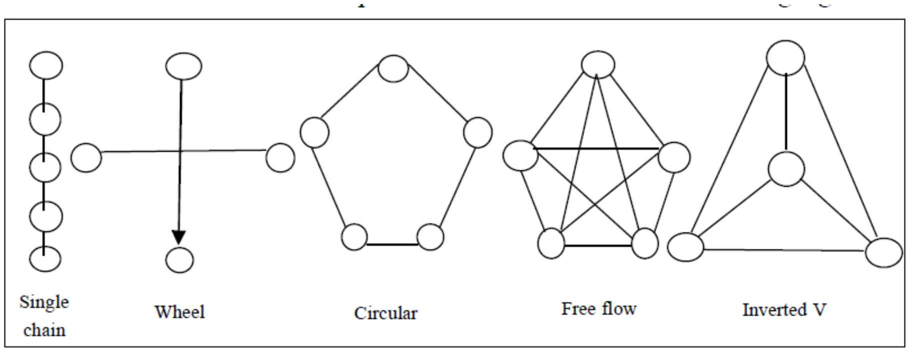


चित्र10.2:- सम्प्रेषण नेटवर्क (संजाल)

**एकल श्रृंखला**—यह नेटवर्क (संजाल) एवं उच्चस्थ एवं उसके अधीनस्थों के मध्य होता है। चूंकि एक संगठन स्तर में कई स्तर हो सकते है संदेशवाहन एकल श्रृंखला के माध्यम से प्रत्येक उच्चस्थ से उसके अधीनस्थों तक प्रवाहित होता है।

**चक्र**—चक्र संजाल (नेटवर्क) के अंतर्गत एक उच्चस्थ के अधीन सारे अधीनस्थ उच्चस्थ के द्वारा (उच्चस्थ के माध्यम से ही) एक दूसरे से सम्प्रेषण करते है। उच्चस्थ चक्र के धुरे (केंद्र) के रूप में कार्य करता है। इस संजाल (सम्प्रेषण प्रकार के अंतर्गत) के अंतर्गत अधीनस्थों को परस्पर वार्तालाप करने की अनुमति नहीं होती है। इस नेटवर्क में समन्वय स्थापना की समस्या एक प्रमुख दोष है।

**वृत्तीय**—वृत्तीय संजाल (नेटवर्क) में सम्प्रेषण वृत्त के रूप में गति करता (आगे बढ़ता है) है। प्रत्येंक व्यक्ति अपने निकटवर्ती (आसत्र) दो व्यक्तियों से वार्तालाप (सम्प्रेषण) कर सकता है। इस संजाल में संदेशवाहन का प्रवाह धीमा रहता है।

**मुक्त प्रवाह**—इस नेटवर्क (संजाल) में प्रत्येक व्यक्ति दूसरों के साथ स्वतंत्रतापूर्वक सम्प्रेषण कर सकता हैं इस संजाल में सम्प्रेषण का प्रवाह तेज होता है। किन्तु समन्वय की समस्या होती है। यह मुक्त स्वरूप संगठन एवं कार्य बलों द्वारा अनुसरित की जाती है।

**व्युत्क्रमित की (औंधावी)**—इस संजाल के अंतर्गत व्यक्ति (संगठन में कार्यरत) अपने तत्कालीन वरिष्ठ एवं उसके वरिष्ठ (वरिष्ठ के वरिष्ठ) से सम्प्रेषण स्थापित कर सकता है। पश्चात् की दशा में (वरिष्ठ के वरिष्ठ से सम्प्रेषण) के बल निर्धारित सम्प्रेषण हो सकता है। इस नेटवर्क में सम्प्रेषण का प्रवाह तीव्रता से होता है। इस प्रकार के कुछ नेटवर्क सम्प्रेषण के तीव्र प्रवाह को प्रदान करते है तथा व्यक्तियों को संतुष्टि प्रदान करते है। कुछ इसका प्रयोग सम्प्रेषण के अनावश्यक प्रवाह को नियंत्रित करने हेतु करते है।

2. **अनौपचारिक संदेशवाहन**—वह सम्प्रेषण जो किसी औपचारिक रेखा का संगठन की औपचारिकताओं, नियमों, विनियमों, का पालन नहीं करता अनौपचारिक सम्प्रेषण कहलाता है। अधिकांश प्रशासक (अधिशासी) अनौपचारिक सम्प्रेषण का प्रयोग औपचारिक सम्प्रेषण के पूरक (अनुपूरक) के रूप में करते हैं अनौपचारिक संदेशवाहन का जन्म व्यक्ति की उन आवश्यकताओं कि वे अपने विचारों का आदान प्रदान कर सके, के कारण होता है। जो वे औपचपारिक संदेशवाहन के अंतर्गत नहीं कर सकते। भोजनालय में कर्मचारियों की बात, वरिष्ठों के व्यवहारों के बारे में उन अफवाहों पर विमर्ष की अमुक का स्थानान्तरण हो रहा है, कुछ उदाहरण है जो अनौपचारिक संदेशवाहन को स्पष्ट करने हेतु पर्याप्त है।

अनौपचारिक संदशवाहन को अंगूरीलता सम्प्रेषण भी कहा जाता है क्योकि यह सूचनाओं को अपनी शाखाओं के, जो संगठन के प्राधिकार स्तर की पूर्ण अवहेलना कर समस्त दिशाओं में जाती है, माध्य से सम्पूर्ण संगठन में प्रसारित (फैलाती) करती है।

**अंगूरीलता संजाल**—अंगूरीलता सम्प्रेषण विभिन्न प्रकार के संजालों (नेटवर्क) का अनुगमन कर सकता है। सामान्यतया चर प्रकार की पद्धतियाँ (प्रणाली) है जिनके द्वारा अंगूरीलता भ्रमण करता हैं ये चार नेटवर्क है 1. एकल

लड़ी 2. गपशप (चर्चा) 3. सम्भावयता 4. गुच्छ (कुंज) प्रत्येक प्रतिमान (स्वरूप) में विभिन्न व्यक्तियों के मध्य सम्प्रेषण विभिन्न–भिन्न होता है।

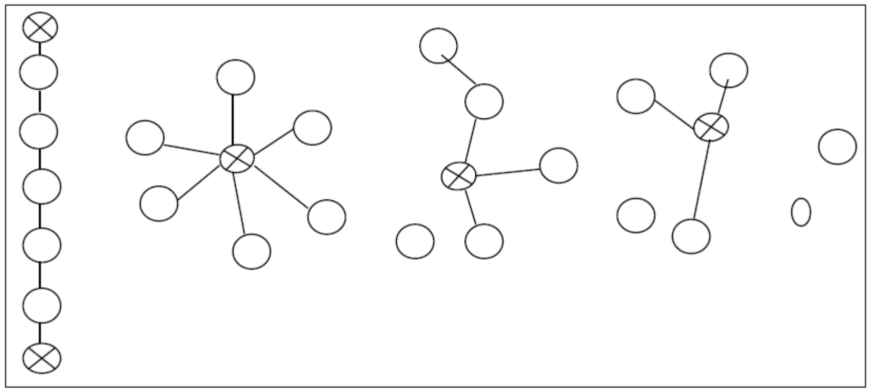


**चित्र10.3:- अंगूरीलता सम्प्रेषण नेटवर्क (संजाल)**

एकललड़ी संजाल में प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से एक अनुक्रम में बात करता है। सम्प्रेषण स्थापित करता है। गपशप (चर्चा/अफवाह) संजाल में बिना चयन करके (नान सेलेक्टिवली) व्यर्थ की बातचीत (अफवाह फैलाना) के माध्यम से संदेशवाहन करता है। सम्भाव्य नेटवर्क (संजाल) में व्यक्ति यदृच्छ या दूसरे व्यक्ति से सम्भावयता के नियम के अनुसार संदेश वाहन करते है।

गुच्छ नेटवर्क (संजाल) में व्यक्ति केवल उन्हीं व्यक्तियों से वार्तालाप (सम्प्रेषण) करते है, जिनमें वो विश्वास करते है। उपरोक्त चारों नेटवर्क (संजाल में) गुच्छ संगठन में प्रमुख सम्प्रेषण नेटवर्क माना जाता है।

यद्यपि अंगूरीलता सम्प्रेषण प्रायः मौखिक होता है, किंतु यह लिखित रूप से भी हो सकता है कभी कभी हस्तलिखित अथवा टंकित (टाइप) नोट भी प्रयोग में लाये जाते है।

**सारणी : 1 औपचारिक एवं अनौपचारिक सम्प्रेषण की तुलना**

| अंतर का आधार | औपचारिक सम्प्रेषण | अनौपचारिक सम्प्रेषण |
|---|---|---|
| गति | औपचारिकता के कारण संदेश प्रसार की गति धीमी होती है। | संदेश तेजी से प्रसारित/संचलित होते है। |
| प्रकृति | औपचारिक सम्प्रेषण अवैयक्तिक एवं आधिकारिक होता है। यह कई दशाओं में व्यक्ति के लिये तनाव कारक होता है। | अनौपचारिक सम्प्रेषण वक्तिगत एवं अनाधिकारिक होता हैं यह सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रकृति का होता है। कई दशाओं में यह व्यक्ति के तनावों को न्यून करता है। |
| प्रमाणिकता | यह अधिक प्रामाणिक होता है, क्योंकि यह आधिकारिक पद सोपान के कारण अस्तित्व में आता है। | यह अत्यल्प प्रामाणिक होता है क्योंकि ये अंगूरीलता विधि से प्रसारित होता है। |

| | | |
|---|---|---|
| विकृति | सम्प्रेषण में विकृति संभव नहीं है, विशेषतः जब यह लिखित में हो। | अनौपचारिक सम्प्रेषण में विकृतियां होती है। क्योंकि व्यक्ति अपने इच्छाओं एवं पूर्वधारणाओं से युक्त होते है। |
| नियंत्रण | औपचारिक सम्प्रेषण प्रबंध द्वारा नियंत्रणीय है। यह पीछे से संशोधित हो सकता है। | यह पूर्णतः अनियंत्रणीय है। चूंकि इसमें संदेश वाहन का स्त्रोत नहीं ज्ञात होता अतः इसमें संशोधन नहीं किया जा सकता। |
| दृढ़ता अथवा लोचशीलता | औपचारिक संदेशवाहन संगठन की नीतियों, नियमों एवं योजनाओं पर आधारित होते है जो कम से कम अल्प अवधि में स्थिर होते है। अतः ये दृढ़ प्रकृति के होते है। | अनौपचारिक सम्प्रेषण तुलनात्मक रूप से लोचशील होता है। चूंकि ये सम्प्रेषण व्यक्तिगत पसंद एवं नापसंदगी पर आधारित होते है। जो कि सतत परिवर्तनशील होते है। अतः यह लोचशील होते है। |
| प्रतिपुष्टि | औपचारिक संगठन में प्रतिपुष्टि का होना अनिवार्य/आवश्यक नहीं है, क्योकि कुछ स्तरों पर कार्यरत व्यक्ति कभी कभी इस स्थिति में नहीं होता कि वो स्पष्टतः अपनी राय/विचारों को अभियक्त कर सके। | अनौपचारिक सम्प्रेषण में प्रतिपुष्टि उपस्थित होती है। इस सम्प्रेषण में व्यक्ति अपने विचारों, सुझावों को भयमुक्त एवं पक्षपात रहित होकर व्यक्त कर सकता है। अतः प्रतिपुष्टि उपस्थित होती है। |

**10.7.2 सम्प्रेषण के प्रकार की दिशा के आधार पर**—प्रवाह की दिशा के आधार पर सम्प्रेषण को चार वर्गो में विभक्त किया जा सकता है :

1. अधोगाामी सम्प्रेषण 2. उर्ध्वगामी सम्प्रेषण 3. क्षैतिज सम्प्रेषण 4. विकर्ण सम्प्रेषण।

1. **अधोगामी सम्प्रेषण**—अधोगामी सम्प्रेषण उच्च स्तर के अधिकारियों से आरम्भ होकर मध्यम स्तर के प्रबन्ध से गुजरता हुआ निम्न स्तर के कर्मचारियों (अधीनस्थों) तक पहुंचता है। इस प्रकार का संदेशवाहन विशेषतः तानाशाही (प्राधिकारवादी) संगठन के वातावरण में उपस्थित होता है।

वह औपचारिक सम्प्रेषण सांगठनिक सदस्यों के कार्यों के नियंत्रण करने, प्रभावित करने तथा अगुवाई करने की शक्ति के रूप में अवस्थित रहता हैं अधोगामी सम्प्रेषण में कार्य के सम्बन्ध में आदेश एवं निर्देश कार्य को समझने के संदर्भ में दिशा–निर्देश तथा एक कार्यों का अन्य कार्यो के सम्बन्ध सांगठनिक नीतियां एवं प्रक्रियाओं अधीनस्थ के निष्पादन की प्रतिपुष्टि सम्मिलित होते है। संगठन में निम्न स्तर पर कार्यरत कर्मचारी इस सम्प्रेषण के प्रति उच्च स्तर का भय एवं आदर (सम्मान) रखते है जो इन सम्प्रेषणों की स्वीकार्यता को निर्देशित

(अग्रांकित) करती है। समन्वय तथा प्रतिरोध अधोगामी सम्प्रेषण की तीन प्रमुख समस्याये है। सूचनाओं के सम्प्रेषण में अदिश श्रृंखला को अपनाने से उचित सम्प्रेषण सुनिश्चित होता है।

2. **उर्ध्वगामी सम्प्रेषण**—उर्ध्वगामी सम्प्रेषण अधोगामी सम्प्रेषण के विपरीत का संदेशवाहन है। यह अधीनस्थों से उच्चस्थों तथा उसके ऊपर तक सांगठनिक पद सोपान तक प्रवाहित होता है।

उर्ध्वगामी सम्प्रेषण में अधीनस्थों के कार्य–निष्पादन कार्य सम्बन्धी समस्याये, अधीनस्थों के निष्पादन आगणन आदेशों को समझने की प्रतिपुष्टि आदेशों का स्पष्टीकरण इत्यादि, सम्मिलित होते है।

3. **क्षैतिज सम्प्रेषण**—क्षैतिज अथवा पार्श्विक सम्प्रेषण से आशय संगठन में सम पदस्थ अधिशासियों के मध्य सूचना के प्रवाह से हैं प्रेषक एवं आदाता (ग्रहीता) दोनो समान विभाग अथवा भिन्न विभागों के हो सकते हैं। क्षैतिज सम्प्रेषण का प्रमुख उद्देश्य विभिन्न विभागों अथवा व्यक्तियों के कार्यों का समन्वय है।

उदाहरणार्थ : एक उत्पादन प्रबंधक उत्पाद की सुपुर्दगी, उत्पाद प्रारूपण (अभिकल्प) गुणवत्ता आदि के सम्बन्ध में विमर्श हेतु सम्पर्क कर सकता है।

4. **विकर्ण सम्प्रेषण**—विकर्ण सम्प्रेषण उन दो या अधिक व्यक्तियों के मध्य संप्रेषण है जो न तो समान अनुभाग न ही सांगठनिक संरचना में समान स्तर में पदस्त है। समान्यतः सम्प्रेषण का यह प्रकार तब परिचालित होता है (अस्तित्व) तब सम्प्रेषण की अन्य प्रणालियों में आता सूचनाओं को प्रभावी ढंग से संसूचित करने में असफल हो जाये।

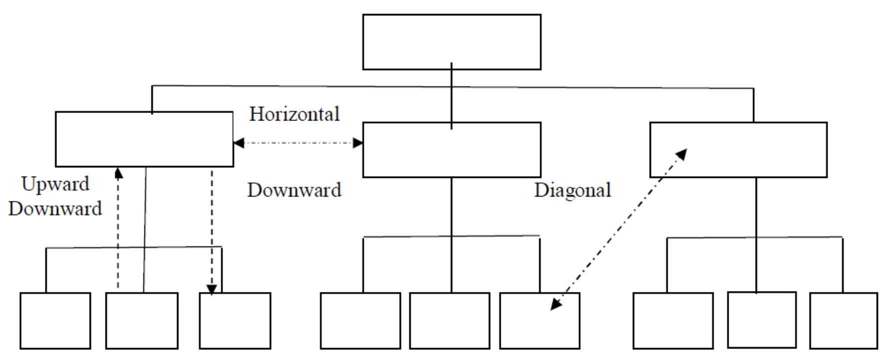


**चित्र10.4:- संगठन में सूचनाओं का प्रवाह**

**10.7.3 अभिव्यक्ति के ढंग के आधार पर**—अभिव्यक्ति के ढंग के आधार पर सम्प्रेषण को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

(1) मौखिक सम्प्रेषण

(2) लिखित सम्प्रेषण

**(1) मौखिक सम्प्रेषण**—मौखिक सम्प्रेषण को आक्षरिक (मुँहजबानी) सम्प्रेषण भी कह सकते है। यह संदेश को प्रसारित करने का एक तरीका (विधि) है। संदेशवाहन को भेजने वाले द्वारा कहे गये शब्दों तथा आदाता द्वारा प्राप्त संदेश के द्वारा। यह उस स्थिति में जब संदेश की विषय वस्तु अत्यल्प हो जब प्रयोग में लाया जाता है। सामान्यतया आपात स्थिति में मौखिक संदेशवाहन अपनाया जाता है। वास्तविक अर्थ जो आदाता (गृहीता) को बनाता है। वह आवाज (वाच्य) की

ध्वनि/तान (लहजा, सुर) द्वारा किया जाता है। कभी कभी प्रेषक कुख के हाव भाव और मनोभाव (मुद्दा) के द्वारा भी सूचनाओं को प्रभावी ढंग से सम्प्रेषित कर सकता है। आदाता के संदेश की समझा उनके मनोभावों एवं मुद्दा (रवैया) से दृश्यमान होती है।

(2) **लिखित सम्प्रेषण**—लिखित सम्प्रेषण से आशय संदेश के प्रेषक द्वारा पुनरूत्पादित शब्दों के लिखित संदेश के प्रषण एवं आदाता (गृहीता) द्वारा सूचनाओं की प्राप्ति से है। यह सम्प्रेषण न केवल लघु संगठनों में वरन विशाल संगठनों में भी अपरिहार्य (आवश्यक) है। यह सम्प्रेषण पर्यवेक्षक एवं अधीनस्थ दोनों को विचारहीन (विवेक शून्य/बेसमझ) कर देता है।

**सारणी : 2 मौखिक एवं लिखित सम्प्रेषण के मध्य तुलना :**

| अंतर का आधार | मौखिक सम्प्रेषण | लिखित सम्प्रेषण |
|---|---|---|
| गति | मौखिक सम्प्रेषण कई दशा में शीघ्रगामी तथा अपेक्षाकृत तात्कालिक (अविलम्ब) होता है। | प्रक्रियात्मक समस्याओं के कारण लिखित सम्प्रेषण धीमी गति से गतिमान होता है। |
| प्रकृति | इस सम्प्रेषण की आदाता (गृहीता) द्वारा तात्कालिक प्रतिपुष्टि होती है। इस प्रकार इस प्रतिपुष्टि के संदर्भ में सम्प्रेषण को संशोधित किया जा सकता है। | इस सम्प्रेषण में गृहीता की प्रतिपुष्टि स्थगित रहती है। इस प्रकार सम्प्रेषण श्रेष्ठतर प्रतिक्रियाशीलता प्राप्त करने हेतु संदेशवाहन को त्वरित एंग से संशोधित नहीं किया जा सकता। |
| गोपनीयता | मौखिक सम्प्रेषण में सम्प्रेषण की गोपनीयता संभव हैं। गोपनीय सूचनायें केवल विश्वस्त को ही संसूचित की जा सकती है। | लिखित सम्प्रेषण में सम्प्रेषण की गोपनीयता संभव नहीं है। एक लिखित सम्प्रेषण एक खुला रहस्य होता है। यहां तक कि अनभिप्रेत व्यक्ति भी समाचार प्राप्त कर सकता है। |
| गंभीरता | मौखिक सम्प्रेषण हो सकता है आदाता (गृहीता) द्वारा गम्भीरता से नहीं लिया जा सके। | मानव मनोविज्ञान के अनुसार लिखित सम्प्रेषण गंभीरता से लिया जाता है। |
| प्रभावकारिता | व्यक्तिगत स्पर्श के कारण मौखिक सम्प्रेषण प्रभावी होता है। प्रेषक का व्यक्तित्व सम्प्रेषण की प्रभावकारिता को प्रभावित करता है। | लिखित सम्प्रेषण अल्प (कमतर) प्रभावी होते है। क्योंकि इनका रवैया अवैयक्तिक हो हैं आदाता (गृहीता) पर इसका प्रभाव तुलनात्मक रूप से प्रतिबंधित (मर्यादित) होता है। |
| सम्प्रेषण का मान/पैमाना | मौखिक सम्प्रेषण के द्वारा बड़े पैमाने (परिमाण) का | लिखित सम्प्रेषण के द्वारा बड़े पैमाने के संदेश वाहन को |

| | | |
|---|---|---|
| (परिमाण) | संदेशवाहन संभव नहीं है। | सुगमता से किया जा सकता है |
| लागत | मौखिक सम्प्रेषण मितव्ययी होता है। प्रायः यह लघु होता है। अतः यह समय एवं धन दोनो बचाता है।1 | लिखित सम्प्रेषण तुलनात्मकतः लागत शील होते है। संदेश का आलेखन आवश्यक होता हैं प्रायः यह किंचित विस्तुत होता है। अतः यह समय साध्य एवं धन साध्य होता है। |

## 10.8 सम्प्रेषण में बाधाएं

प्रायः यह प्रेक्षित (अवलोकित) किया गया है कि प्रबन्धक सम्प्रेषण के विकारों अथवा बाधाओं के कारण विविध समस्याओं का सामना करते है। सम्प्रेषण की बाधा उत्पन्न होती है क्योंकि कई ऐसी बाधायें है जो सम्प्रेषण का पूर्णतः प्रतिकार कर सकते हैं इसके कुछ भाग को बाहर छान (निष्यंत) कर सकते है अथवा इसका अशुद्ध अर्थ प्रदान कर सकते है। इन बाधाओं को सम्प्रेषण के अवरोध कहते है। ये अवरोध संगठनात्मक एवं गैर संगठनात्मक में परिचालित हो सकते है।

संगठन में सम्प्रेषण के अवरोधों को व्यापक रूप से निम्नलिखित वर्गो में वर्गीकृत किया जा सकता है।

(1) अर्थ सम्बन्धी (माने संबंधी) अवरोध

(2) मनोवैज्ञानिक अथवा भावनात्मक अवरोध

(3) संगठनात्मक बाधायें

(4) व्यक्तिगत बाधाओं।

आइयें प्रत्येक को विस्तार में विमर्शित करें

10.8.1 **अर्थ सम्बन्धी बाधायें**—शब्दार्थ विज्ञान भाषा विज्ञान (भाष–शास्त्र) की एक शाखा है जो शब्दों एवं वाक्यों से सम्बन्धित है। शब्दार्थ विज्ञान जैसा कि ध्वनि शास्त्र (स्वर विज्ञान) से उद्घृत है। अर्थ का विज्ञान ध्वनि का विज्ञान है। ये समस्यायें संदेश के कूट लेखन तथा कूटानुवाद, शब्दों अथवा मुद्दाओं में व्याप्त रूकावटों एवं अवरोधों से सम्बन्धित हैं सामान्यतया इन अवरोधों के परिणाम गलत (अनुपयुक्त) शब्दों के चयन, दोषपूर्ण (त्रुटिपूर्ण) अनुवाद भिन्न विवेचना इत्यादि के रूप में होता है। इन्हें निम्न रूप से विमर्शित किया गया है।

1. **अशुद्ध (स्पष्टीकरण रहित) मान्यतायें**—कई अव्यक्त (असंचरित) मान्यतायें होती है। जो भिन्न विवेचनों का विषय होती हैं। हालाँकि एक संदेश विशिष्ट प्रतीत हो सकता है किन्तु इसकी निहित मान्यतायें गृहीता को स्पष्ट नहीं हो सकती है। उदाहरणार्थ : एक स्वामी (प्रबंधकर्ता) अपने अधीनस्थ को निर्देश दे सकता है कि "हमारे अतिथियों की देखभाल (संभालना) करो"। स्वामी का अर्थ (अभिप्राय) यह हो सकता है कि अधीनस्थ को अतिथि के यातायात, भोजन, आवास का तब तक ध्यान रखे जब तक कि वह स्थान न त्याग (चला न जाये) दे अधीनस्थ इसकों ऐसे निर्वचित (व्यवस्था करना) कर सकता है कि अतिथि को सावधानीपूर्वक होटल (रूकने/ठहरने के स्थान) तक ले जाया जाय। वास्तव में अतिथि इस अन्व्यक्त मान्यताओं से कष्ट (परेशानी/असुविधा) का अनुभव करता है।

2. **तकनीकी शब्दावली (विशिष्ट शब्दावली)**—प्रायः यह पाया गया है कि तकनीकी कर्मचारी तथा विशेष समूह अपनी एक विशेष, अनूठी एवं तकनीकी भाषा को विकसित करने को प्रवृत्त (अभिमुख) रहते है, तब तक कि वे किसी ऐसे व्यक्ति को वर्णन कर रहे हो (समझा रहे हो) जो संदर्भित क्षेत्र में विशेषज्ञ नहीं होते है। इसलिये हो सकता है वे ऐसे से कई शब्दों के वास्तविक अर्थ को न समझ सके।

3. **त्रुटिपूर्ण अनुवाद**—संगठन में प्रत्येक प्रबंधक अपने वरिष्ठो, समकक्षों, एवचं अधीनस्थों से विविध प्रकार के सम्प्रेषण प्राप्त करता है तथा उसे इन सूचनाओं का जोकि वरिष्ठों समकक्षों अथवा अधीनस्थों को नियत है, उनकी उपयुक्त (समझ आने योग्य) भाषा में अनुवाद करना चाहिये। अतः शब्दों को उस उपयुक्त रूप रेखा के जिसमें गृहीता प्रचालित (कार्य कर रहा है) शब्दों में व्यवस्थित करना चाहिये अथवा इसके साथ एक निर्वचन संयुक्त करना चाहिये जो गृहीता को समझ में आयेगा। लेकिन यदि अनुवादक दोनों भाषाओं में प्रवीण (निपुण/दक्ष) नहीं है तो त्रुटियाँ (भूले) धीरे से प्रवेश कर सम्प्रेषण के विभिन्न अर्थ का कारण बन सकती है।

4. **प्रतीकों के विभिन्न अर्थ**—सम्प्रेषण संकेत (प्रतीक चिन्ह) विविध अर्थ रखते है। गृहीता को एक ऐसे अर्थ को धारण करना (समझना) चाहिये जो प्रेषक ने प्रयुक्त किया हो। उदाहरणार्थ; उच्चगति (अत्यधिक गति) का अर्थ भिन्न–भिन्न यातायात साधनों के लिये पृथक होगा।

दुपहिया वाहन के संदर्भ में उच्चगति का अर्थ चौ–पहिया या किसी अन्य यातायात साधन की उच्च गति से भिन्न होगा। इसी प्रकार अशाब्दिक प्रतीक भिन्न व्यक्तियों को अलग–अलग (पृथक) अर्थ दे सकते है। इस दशा में यह सम्भावना है कि प्रतीकों का गृहीता प्रेषक के निर्दिष्ट अर्थ की तुलना में सर्वथा भिन्न अर्थ रखे तथा सम्प्रेषण विफल (टूट जाना) हो जाये।

5. **बहुत खराब ढंग से अभिव्यक्त संदेश**—कई बार प्रबंधक नियत (निर्दिष्ट) अर्थ को अधीनस्थों को नहीं संसूचित (बता पाता है) कर पाता है। यह खराब अभिव्यक्ति अपर्याप्त शब्दकोश खराब ढंग से चयनित एवं खोखले शब्द लोकोक्तियां असावधान त्रुटि (गलती) तकनीकी शब्दावली, निहितार्थ को स्पष्ट करने में असफलता खराब अभिव्यक्ति के कुछ उदाहरण है।

6. **शारीरिक भाषा एवं हाव–भाव कुटानुवाद**—शरीर की प्रत्येक गतिशीलता कुछ अर्थ सम्प्रेषित करती है। प्रेषक की शारीरिक भाषा एवं हाव–भाव संदेशों के प्रसारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है यदि जो कहा जा रहा है तथा जो शरीर से अभिव्यक्त हो रहा है। उसमें कोई मेल नहीं हे। तो सम्प्रेषण गलत ढंग से कथित हो सकता है।

### 10.8.2 सांगठनिक अवरोध (बाधायें)

संगठन विशिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सोद्देश्य (सुविचारित) रचना है, इसकी दैनिन्दन क्रियाओं का विनियमन इस प्रकार किया जाना चाहिये जिससे ये इन लक्ष्यों की सर्वाधिक दक्ष विधि से (कार्यकुशल) प्राप्ति में योगदान दे सके। प्रायः यह विभिन्न प्रकार के आधिकारिक उपायों (विधि/ढंग) द्वारा प्रयासित होता है। इन प्रयासों के अंतर्गत विभिन्न कार्यों के निष्पादन हेतु संगठनात्मक व्यवस्थापन का अधिकल्पन, विभिन्न नीतियों का निर्धारण करना नियम, विनियम, एवं कार्य पद्धति व्यवहार के मानदण्डों की अव्यवसायिकता पुरस्कार एवं दण्ड प्रणाली का स्थापन

(संस्थानीकरण) इत्यादि सम्मिलित होते है। कभी कभी ये घटक प्रभावी सम्प्रेषण में अवरोध की भाँति कार्य करते है। ऐसे कतिपय प्रमुख अवरोध निम्नलिखित है :

1. **संगठनात्मक नीति**—सम्प्रेषण के संदर्भ में सामान्य संगठनात्मक नीति संगठन में कार्यरत प्रत्येक व्यक्ति के लिये इस सम्बन्ध में सम्पूर्ण दिशा–निर्देश के रूप में कार्य करता हैं कि इस सम्बन्ध (सम्प्रेषण सम्बन्धी) में उससे किस प्रकार व्यवहार करने की अपेक्षा की जाती है। नीतियाँ व्यक्त (सुनिश्चित प्रकट) अथवा अव्यक्त (अंतर्निहित विवक्षित) हो सकती है और यदि ये नीतियाँ सम्प्रेषण के मुक्त प्रवाह को सहयोग प्रदान करने वाली नहीं है तो ये सम्प्रेषण की प्रभावकारिता को रोक (रूकावट पैदा करना) सकते है।

2. **संगठनात्मक नियम एवं विनियमन**—सांगठनिक नियम एवं विनियम सम्प्रेषण की विषय वस्तु तथा सम्प्रेषण को सम्प्रेषित (प्रसारित) करने की श्रृंखला (माध्यम) के निर्धारण द्वारा सम्प्रेषण के प्रवाह को प्रभावित करते है। दृढ़ नियम (अलोचशील नियम) तथा बोझिल (भारी) कार्य पद्धति सम्प्रेषण में बाधक हो सकती है। निर्धारित प्रक्रियाओं के द्वारा सम्प्रेषण विलम्बित हो सकता है।

3. **स्थिति (पद, स्थान) सम्बन्ध**—उच्चस्थ का पद (स्थिति) उसके एवं उसके अधीनस्थ के मध्य मनोवैज्ञानिक दूरी बना सकता है। जो सम्प्रेषण के प्रवाह को विशेषतः उर्ध्वगामी सम्प्रेषण की दशा में, बाधित कर सकता है। एक पद/स्थिति सचेतन प्रबंधक अपने अधीनस्थों को अपनी भावनाओं के मुक्त स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित भी नहीं करता। पदानुक्रम में स्थिति/पद का बड़ा अंतर होगा उतना ही सम्प्रेषण अवरोध की बड़ी संभावना होगी।

4. **संगठन संरचना की जटिलता**—एक ऐसे संगठन में जहाँ प्रबंधकीय स्तर अधिक संख्या में होते है। सम्प्रेषण विलम्बित एवं विकृत होता जाता है क्योंकि निस्पंदन बिंदु अधिक होते है। उर्ध्वगामी सम्प्रेषण की दशा में यह सत्य होता है क्योंकि व्यक्ति अपनी अथवा अपने उच्चस्थों की आलोचनाओं, प्रतिकूल टिप्पणियों को अग्रसारित करना पसंद नहीं करते।

5. **संगठनात्मक सुविधायें**—सुगम, पर्याप्त, स्पष्ट एवं समयानुसार सम्प्रेषण हेतु प्रदान की गयी संगठनात्मक सुविधायें कई रूपों में हो सकती है। इनमें से कुछ सम्प्रेषण माध्यम यथाः सभाएं, सम्मेलन शिकायत पेटिका, सुझाव–पेटिका, मुक्त द्वार प्रणाली (ओपन डोर), सामाजिक एवं सांस्कृतिक समारोह (जमाव जलसा) परिचालन (कार्य संचालन) में पारदर्शिता, इत्यादि सम्प्रेषण के मुक्त प्रवाह को प्रोत्साहित करेगा। इन सुविधाओं की अनुपस्थिति सम्प्रेषण समस्याओं को जन्म दे सकती है।

### 10.8.3 भावनात्मक अथवा मनोवैज्ञानिक बाधाएँ

भावनात्मक अथवा मनोवैज्ञानिक घटक अंर्तवैक्तिक सम्प्रेषण में व्यवहार के मापदण्डों की अव्यवसायिकता, पुरस्कार एवं दण्ड प्रणाली का स्थापन (संस्थानीकरण) इत्यादि सम्मिलित होते है। कभी कभी ये घटक प्रभावी सम्प्रेषण में अवरोध की भांति कार्य करते है। ऐसे कतिपय प्रमुख अवरोध निम्नलिखित है।

1. **संगठनात्मक नीति**—सम्प्रेषण के संदर्भ में सामान्य संगठनात्मक नीति संगठन में कार्यरत प्रत्येक व्यक्ति के लिये इस सम्बन्ध में सम्पूर्ण दिशा–निर्देश के रूप में कार्य करता है कि इस सम्बन्ध (सम्प्रेषण सम्बन्धी) में उससे किसी प्रकार व्यवहार करने की अपेक्षा की जाती है। नीतियाँ व्यक्त (सुनिश्चित प्रकट) अथवा

अव्यक्त (अंतर्निहित, विवक्षित) हो सकती है और यदि ये नीतियाँ सम्प्रेषण के मुक्त प्रवाह को सहयोग प्रदान करने वाली नहीं है तो ये सम्प्रेषण की प्रभावकारिता को रोक (रूकावट पैदा करना) सकते है।

2. **संगठनात्मक नियम एवं विनियम**—सांगठनिक नियम एवं विनियम सम्प्रेषण की विषय–वस्तु तथा सम्प्रेषण को सम्प्रेषित (प्रसारित) करने की श्रृंखला (माध्यम) के निर्धारण द्वारा सम्प्रेषण के प्रवाह को प्रभावित करते है। दृढ़ नियम (आलोचशील नियम) तथा बोझिल (भारी) कार्य–पद्धति सम्प्रेषण में बाधक हो सकती है। निर्धारित प्रक्रियाओं के द्वारा सम्प्रेषण विलम्बित हो सकता है।

3. **स्थिति (पद, स्थान) सम्बन्ध**—उच्चस्थ का पद (स्थिति) उसके एवं उसके अधीनस्थ के मध्य मनोवैज्ञानिक दूरी बना सकता है। जो सम्प्रेषण के प्रवाह को विशेषतः उर्ध्वगामी सम्प्रेषण दशा में, बाधित कर सकता है। एक पद/स्थिति सचेत न प्रबंधक अपने अधीनस्थों को अपनी भावनाओं के मुक्त स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित भी नहीं करता। पदानुक्रम में स्थिति/पद का बड़ा अंतर होगा उग्राही सम्प्रेषण अवरोध की बड़ी संभावना होगी।

4. **संगठन–संरचना की जटिलता**—एक ऐसे संगठन में जहाँ प्रबंधकीय स्तर अधिक संख्या में होते है, सम्प्रेषण विलम्बित एवं विकृत होता जाता है, क्योंकि निस्पंदन बिंदु अधिक होते है। उर्ध्वगामी सम्प्रेषण की दशा में यह सत्य होता है क्योंकि व्यक्ति अपनी अथवा अपने उच्चस्थों की आलोचनाओं, प्रतिकूल टिप्पणियों को अग्रसारित करना पसंद नहीं करते है।

5. **संगठनात्मक सुविधायें**—सुगम, पर्याप्त, स्पष्ट एवं समयानुसार सम्प्रेषण हेतु प्रदान की गयी संगठनात्मक सुविधायें कई रूप में हो सकती है। इनमें से कुछ सम्प्रेषण माध्यम यथाः सभाएं सम्मेलन, शिकायत पेटिका, सुझाव पेटिका मुक्त द्वार प्रणाली (ओपन डोर), सामाजिक एवं सांस्कृतिक समारोह (जमाव जलसा) परिचालन (कार्य–संचलन) में पारदर्शिता इत्यादि सम्प्रेषण के मुक्त प्रवाह को प्रोत्साहित करेगा। इन सुविधाओं की अनुपस्थिति सम्प्रेषण समस्याओं को जन्म दे सकती है।

### 10.8.3 भावनात्मक अथवा मनोवैज्ञानिक बाधाएँ

भावनात्मक अथवा मनोवैज्ञानिक घटक अंर्तवैक्तिक सम्प्रेषण में मुख्य बाधा होते है। किसी संदेश द्वारा बतायी गयी विषय–वस्तु का अर्थ दोनों सम्मिलित पक्षकारों, प्रेषक एवं गृहीता, के भावनात्मक एवं मनोवैज्ञानिक दशाओं (स्थिति) पर निर्भर करती है।

उदाहरणार्थ : एक चिंतित उचित ढंग से सम्प्रेषण नहीं कर सकता तथा एक क्रोधित व्यक्ति प्राप्त संदेश का अर्थ उचित ढंग से (रूप) नही समझ सकता। प्रेषक एवं गृहीता दोनों की मानसिक दशा का प्रभाव प्रभावी सम्प्रेषण में परिवर्तित होता है। कतिपय भावनात्मक बाधायें निम्नलिखित है :

1. **अपरिपक्व मूल्यांकन**—रोजर्स एवं रोथलिस बर्गर ने सर्वप्रथम सन् 1952 में इस बाधा की पहचान की। अपरिपक्व मूल्यांकन सम्प्रेषण के अपरिपक्व मूल्यांकन की प्रवृत्ति है, बजाय (के बदले) आदान–प्रदान (विनिमय) के दौरान सीधी स्थिति (दृढ़/ न समझौता करने की) रखने के। ये अपरिपक्व मूल्यांकन पहले से ही कम में रखे हुये भावों (विचारों) अथवा सम्प्रेषण के प्रति पूर्वाग्रहों के कारण हो सकते है।

2. **अवधान (ध्यान) का अभाव**—गृहीता का चिंतामग्न मस्तिष्क एवं परिणामी संदेश का अ–श्रवण प्रमुख मनोवैज्ञानिक बाधा की भांति कार्य करते है। यह एक सामान्य सिद्धांत है, कि व्यक्ति साधारणतः बुलेटिन (विज्ञप्ति/जन सूचना पत्रक) सूचनाओं, कार्यवृत्त एवं प्रतिवेदनों की प्रतिक्रिया में असफल होते है।

3. **निर्गुण (कमजोर) संचरण एवं कमजोर अवधारण**—संगठन में जब सम्प्रेषण विविध स्तरों से गुजरता है तो उसी संदेश उत्तरोत्तर संचरण की शुद्धता हासमान होती है। मौखिम सम्प्रेषण में और अधिक होता है, 30ः सूचना प्रत्येक संचरण में नष्ट हो जाती है। यहां तक कि लिखित सम्प्रेषण में भी यदि कोई संलग्न निर्वचन है, अर्थ की हानि हो सकती है। कमजोर धारण एक अन्य समस्या है। प्रायः यदि व्यक्ति असावधान (ध्यान रहित) एवं हितपरायण (रूचि न रखने वाले) नहीं है तो सूचना को अधिक समय अवधारित नहीं कर सकते है।

4. **सम्प्रेषण का अविश्वास**—यह अविवेचित (चेतना शून्य) निर्णयों, (दंडाज्ञा, धारणा) अतार्किक निर्णयों, अथवा सम्प्रेषण द्वारा अपने वास्तविक सम्प्रेषण को बार बार रद्ध करने के कारण उत्पन्न होता है। इस प्रकार का पुनरावर्ती अनुभव धीरे–धीरे गृहीता को बाध्य (विवश) करता है कि वह कार्य को विलम्ब से करे अथवा निरूत्साहित ढंग से कार्य करे, इस प्रकार सम्प्रेषण असफल हो जाता है, यद्यपि यह पूर्ण (सम्पादित) दिखायी देता है यदि पक्षकार एक दूसरे पर विश्वास नहीं करते तो वे एक दूसरे के संदेश को इसकी मूल भावनानुसार नहीं समझ सकते।

5. **सूचना देने में असफलता**—यह एक स्वीकार्य तथ्य है कि प्रबंधक प्रायः आवश्यक संदेशों के प्रसारण में असफल रहते है। यह सम्प्रेषक की सुस्ती अथवा यह मान लेना कि प्रत्येक व्यक्ति जानते है अथवा टालमटोल (विलम्ब) सूचना को हथिया लेना (खुरचना) अथवा जान–बुझकर बाधा डालने के कारण हो सकता है।

**10.8.4 व्यक्तिगत बाधाएं**

प्रबंध एवं गृहीता दोनों के व्यक्तिगत घटक प्रभावी सम्प्रेषण में प्रभाव आरोपित कर सकते हे। ये बाधायें अधोगामी तथा उर्ध्वगामी दोनों सम्प्रेषण में प्रासंगिक है। उच्चस्थों एवं अधीनस्थों की कतिपय व्यक्तिगत बाधायें निम्नलिखित है।

1. **सत्ता को चुनौती देने का भय**—संगठन में कार्यरत व्यक्ति सदैव उच्च पद (स्थिति) एवं प्रतिष्ठा पाने का प्रयत्न अपनी आवश्यकताओं की संतुष्टि हेतु करता है। इस दशा में सामान्यतः प्रबंधक यह विचार करके किये सूचनायें उसकी दुर्बलताओं (खामियों/कमियों) को उजागर कर देगी, नीचे जाने वाली सूचनायें तथा उसी रेखाक्रम में ऊपर जाने वाली सूचनाओं को रोक कर रखता है। यदि उच्चस्थ यह विचार करता है, कि यह सम्प्रेषण विशेष उसकी सत्ता (प्राधिकार) करे प्रतिकूल ढंग से प्रभावित कर सकता है। तो वह इन सम्प्रेषणों को दबा अथवा रोक कर रखा सकता है।

2. **अधीनस्थों पर विश्वास की कमी**—उच्चस्थ (वरिष्ठ) सामान्यतया यह सोचते मानते है, सही या गलत कि उनके अधीनस्थ अल्प योग्य एवं अल्प क्षमतावान हैं तथा वे वरिष्ठों को (उच्चस्थ) सलाह देने योग्य नहीं है तथा ऊपर की ओर आने लायक कोई सूचना नहीं रखते है। यदि उच्चस्थ अपने अधीनस्थों

पर विश्वास नहीं करते तो वे उनकी सलाह अथवा मशविरा, राय नहीं ले सकते है।

3. **सूचित करने की अनिच्छा**—कभी–कभी अधीनस्थ अपने उच्चस्थों से सम्प्रेषण को तैयार नहीं होते यदि वे मानते है कि यह उनको नकारात्मक ढंग से प्रभावित कर सकता है। जो सूचनायें भेजी जा रही है वह नियंत्रण उद्देश्यों हेतु प्रयुक्त होगी और अधीनस्थ इन सूचनाओं को अपने उच्चस्थों को नहीं देना चाहेगें क्योंकि इससे प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है, यदि सूचना भेजा जाना आवश्यक हो तो इन सूचनाओं को इस ढंग से संशोधित कर देगे जिससे कि उनका हित संरक्षित रहे।

4. **उचित प्रेरक (प्रेरणा, प्रोत्साहन) का अभाव**—सम्प्रेषित करने के अभिप्रेरण का अभाव अधीनस्थों को उर्ध्व की ओर (उच्चस्थों को) सम्प्रेषण करने से रोकते है। उदाहरणार्थः यदि उचित (अच्छी) सुझाव हेतु कोई पुरस्कार अथवा प्रोत्साहन नहीं है तो अधीनस्थ उपयोगी सुझाव देने की इच्छा नहीं दिखा सकते है।

## 10.9 सम्प्रेषण की प्रभावशीलता को उन्नत बनाना

संचार, संगठन का जीवन रक्त होता है तथा इसके अभाव में संगठन का अस्तित्व नहीं रह सकता  इसलिये प्रबंध को यह अवश्यक सुनिश्चित करना चाहिये कि सम्प्रेषण प्रणाली प्रभावी है। प्रभावी सम्प्रेषण की आधायें अल्प या अधिक मात्रा में प्रत्येक संगठन में विद्यमान रहती है। प्रभावी सम्प्रेषण विकसित करने को इच्छुक (उत्सुक) संगठनों को इन बाधाओं को दूर करके सम्प्रेषण की प्रभावशीलता को उन्नत करना चाहिये। कतिपय प्रमुख उपाय निम्नांकित है।

1. **सम्प्रेषण से पूर्व विचारों को स्पष्ट करना**—प्रेषक इस विषय में, कि वह क्या संसूचित करना चाहता है स्पष्ट व निश्चित होना चाहिये। अधीनस्थों को संसूचना (सम्प्रेषित कथन) से हुयी समस्त समस्या को स्वयं अधिशासी द्वारा प्रत्येक पहलू से स्पष्ट करना चाहिये। सम्पूर्ण समस्या का गहराई से अध्ययन एवं विश्लेषण किया जाना चाहिये तथा इस प्रकार से वर्णित (प्रस्तुत) किया जाना चाहिये कि यह अधीनस्थों को स्पष्टतः सम्प्रेषित (प्रसारित) हो।

2. **गृहीता की आवश्यकतानुसार सम्प्रेषित किया जाना चाहिये**—गृहीता की समझ का स्तर सम्प्रेषण को एकदम स्पष्ट होना चाहिये। प्रबंधक को अपने सम्प्रेषण को अधीनस्थों की शिक्षा एवं समझ के स्तर के अनुसार समायोजित करना चाहिये।

3. **सम्प्रेषण से पूर्व अन्य से परामर्श**—संदेश को वास्वत में सम्प्रेषित करने के पूर्व यह श्रेष्ठतर होता है कि सम्प्रेषण नियोजन में अन्य व्यक्तियों को सम्मिलित किया जाये। अधीनस्थों की सहभागिता एवं सम्मिलित करना उनके (अधीनस्थों) शीघ्र स्वीकृति एवं ऐच्छिक सहयोग में सहायक हो सकता है।

4. **सम्प्रेषण में समवेदना (सहानुभूति)**—गृहीता की आवश्यकताओं, भावनाओं एवं संवेदन (अनुभूति/बोध) के प्रति संवेदना प्रभावी सम्प्रेषण का मार्ग है। मनोवैज्ञानिक इसे सम्प्रेषण में संवेदना दूसरे के जूते में पैर डालना, किसी दूसरे की निगाह से (दृष्टि से) एक को प्रक्षेपित करना (देखना) करते है। जब संदेश प्रेषक समस्याओं को गृहीता के दृष्टिकोण से देखता है तमाम गलतफहमियाँ अनदेखा की जा सकती है।

5. **संदेश की भाषा स्वर एवं विषय वस्तु के प्रति जागरूक (सावधान) रहना**—संदेश की विषय–वस्तु स्वर ध्वनि प्रयुक्त भाषा, संदेश को सम्प्रेषित करने का ढंग प्रभावी सम्प्रेषण के प्रमुख पहलू है। प्रयुक्त भाषा गृहीता के समझने योग्य होनी चाहिये तथा श्रोताओं की भावनाओं को आहत नहीं करने वाली होनी चाहिये। संदेश उत्तेजना पूर्ण (स्फूर्तिदायक) होना चाहिये जिससे कि वह श्रोताओं से प्रतिक्रिया का आवाहन कर सके।

6. **उचित प्रतिपुष्टि सुनिश्चित करना**—सम्प्रेषक सम्प्रेषित संदेश के संदर्भ में प्रश्नों को पूछकर सम्प्रेषण की सफलता सुनिश्चित कर सकता है। संदेश गृहीता भी सम्प्रेषण की प्रतिक्रिया हेतु अभिप्रेरित हो सकता है। सम्प्रेषण प्रक्रिया इसको और प्रतिक्रियाशील बनाने हेतु प्राप्त प्रतिपुष्टि द्वारा उन्नत बनायी जा सकती है।

7. **सम्प्रेषण अनुगमन**—अधीनस्थों को दिये गये निर्देशों का नियमिततः अनुगमन एवं पुनरीक्षण होना चाहिये। ये अनुगमन उपाय निर्देशों के क्रियान्यवन में आने वाली बाधाओं को हटाने (दूर करने) में सहायक होते है।

8. **अच्छे श्रोता बने**—एक सम्प्रेषक को एक अच्छा श्रोता होना चाहिये। इसके द्वारा वह सिर्फ अन्य को बोलने का अवसर नहीं देता वरन आगामी सम्प्रेषण हेतु उपयोगी सूचनायें एकत्रित करता है। धैर्य एवं ध्यानपूर्वक श्रवण आधी समस्याओं को हल कर देते है। प्रबंधक अधीनस्थों को श्रवण करने में अपनी रूचि का संकेत अवश्यक करना चाहिये।

## 10.10 सारांश

सम्प्रेषण को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को एक विषय की सम्पूर्ण समझ प्रदान करने हेतु तथ्यों, सूचनाओं, विचारों, सुझावो, आदेशों, निवेदनो, परिवेदनाओं इत्यादि के हस्तांतरण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। सम्प्रेषण कर्मचारी को कार्य करने की दक्षता एवं कार्य करने की इच्छा, दोनों प्रदान करता है।

सम्प्रेषण प्रक्रिया संदेश, प्रेषक, कूट लेखन, माध्यम, गृहीता, कूटानुवाद एवं प्रतिपुष्टि को समाहित करता है। सम्प्रेषण के महत्व संगठनात्मक जीवन का आधार नियोजन में सहायक, नेतृत्व में सहायक समन्वयन में सहायक, परिवर्तन के प्रतिरोधों को दूर करने में सहायक श्रेष्ठ मानव सम्बन्धों का आधार, श्रेष्ठ जन सम्पर्क के निर्माण में सहायक, नियंत्रण में सहायक, अधिकारों के प्रत्यायोजन को सुगम बनाता है। संगठन के प्रत्येक कदम में व्याप्त है। औपचारिक सम्प्रेषण वह है जो संगठन में एक औपचारिक रूप में पद सोपान (अदिश श्रृंखला) के द्वारा स्थान लेता है।

औपचारिक सम्प्रेषण इसे अंगूरीलता सम्प्रेषण भी कहा जाता है। औपचारिक संगठनात्मक स्तर के भीतर अथवा वाहय स्थित अनौपचारिक समूहों द्वारा स्थान लेता है। औपचारिक एवं अनौपचारिक सम्प्रेषण की निम्नलिखित आधारों पर तुलना की जा सकती है। गति, प्रमाणिकता, प्रकृति, नियोजन, प्रतिपुष्टि, नियंत्रण, विकृति, अभिलेखीकरण, उत्तरदायित्व का निर्धारण प्रतिरोध, गोपनयी मामलों की गोपनीयता दृढ़ता अथवा लोचशीलता, पारस्परिक सहयोग।

मौखिक एवं लिखित सम्प्रेषणी इन आधारों पर तुलना की जा सकती है। लागत प्रभावकारिता विकृति, मूल्य को याद रखना, गति, समक्ष, प्रतिपुष्टि संघर्ष (विवाद), अभिलेखन, अधिकारों का प्रत्यायोजन सुगम है अथवा नहीं गोपनीयता,

मूल्य दोहराव, भाषा की समस्या, प्रसाद (व्यापकता) वापसी, गम्भीरता, दूर स्थित पक्षकार, सम्प्रेषण की माप (परिमाण) भाव–भंगिमा द्वारा समर्थित। सम्प्रेषण की बाधाओं के अंतर्गत, खराब ढ़ंग से व्यक्त संदेश, दोषपूर्ण, संगठन, सम्प्रेषक का अविश्वास (संदेह), सम्प्रेषण को प्रतिबंधित करना, खराब अवधारण, विभिन्न पृष्ठ भूमि एवं संस्कृति, अंतः समूह भाषा एवं अनवधान इत्यादि सम्मिलित होते है। प्रतिपुष्टि एवं सरल भाषा के प्रयोग से कई (अधिकांश) सम्प्रेषण अवरोधों को दूर किया जा सकता है।

## 10.11 शब्दावली

**शारीरिक भाषा**—शारीरिक स्थिति, हाव–भाव एवं गति द्वारा सम्प्रेषित सूचना।

**सम्प्रेषण**—यह एक व्यक्ति से अन्य व्यक्तिओं को प्रायः अभिप्रेरित करने अथवा व्यवहार को प्रभावित करने के उद्देश्य से, को सूचना एवं समझ हस्तांतरित करने की प्रक्रिया है।

**सम्प्रेषण प्रतिपुष्टि**—यह प्रेषक को प्राप्त वह ज्ञान है, जो इंगित करता है कि गृहीता ने संदेश का सही निर्वचन किया है अथवा नहीं।

**कूटानुवाद**—वह प्रक्रिया जिसके द्वारा सम्प्रेषण से प्राप्त सूचना वापस विचारों एवं सिद्धांतों में परिवर्तित की जाती है।

**विकर्ण सम्प्रेषण**—यह उन व्यक्तियों के मध्य होता है जो न तो समान विभाग में न ही पद सोपान के समान स्तर में कार्यरत होते है।

**अधोगामी सम्प्रेषण**—वह सम्प्रेषण जो एक संगठन में उच्च स्तर से निम्नस्तर को प्रवाहित होता है।

**कूटलेखन**—वह प्रक्रिया जिसके द्वारा विचार एक सिद्धांत इस रूपमें परिवर्तित होती है जिससे अन्य को भेजी जा सके।

**निस्पंदन**—यह प्रतीति कराने हेतु कि संदेश गृहीता के अधिक पक्ष में है। सूचनाओं का सोद्देश्य प्रहस्तन।

**अंगूरीलता.**—संगठन में कार्यरत व्यक्तियों के मध्य का ऐसा अनौपचारिक सम्प्रेषण नेटवर्क जो संगठन द्वारा आधिकारिक रूप से स्वीकृत नहीं होता है।

**अनौपचारिक सम्प्रेषण श्रृंखला**—सम्प्रेषण श्रृंखलाओं (माध्यम) जो संगठन के पदानुक्रम के अनुसार नहीं चलती।

**पार्श्विक सम्प्रेषण**—यह पद सोपान में समान स्तर पर पदस्थ व्यक्तियों के मध्य होता है।

**श्रवण**—इसके अंतर्गत संदेश के वास्तविक अर्थ के निर्वचन हेतु तथ्य एवं भावनाओं को समझने की दक्षता सम्मिलित है।

**कोलाहल**—कोई बाधा जो संदेश के संचरण प्राप्ति अथवा प्रतिपुष्टि से उत्पन्न होती है।

**अ–शाब्दिक सम्प्रेषण**—वह सम्प्रेषण जो मुख भाव, शारीरिक भाषा, आंखों के सम्पर्क तथा अन्य भौतिक भाव भंगिकाओं (हाव–भाव) से किया जाता है।

**मौखिक सम्प्रेषण.**—सम्मुख वार्तालाप, समूह विमर्श, दूरभाष वार्ता एवं अन्य परिस्थितियां जिनमें शब्द संदेश संचरण हेतु प्रयुक्त हुये हो।

**शब्दार्थ विज्ञान**—यह भाषा में शब्दों के अर्थ का अध्ययन है।

**उर्ध्वगामी सम्प्रेषण**—यह उन संदेशों को समाहित करता है जो अधीनस्थों से उच्चस्थों को प्रवाहित होते है।

**उर्ध्व सम्प्रेषण**—वह सम्प्रेषण जो संगठन में उर्ध्व एवं अधो दोनों दिशाओं में प्रायः औपचारिक प्रतिवेदन पंक्ति के साथ प्रवाहित होता है।

**लिखित सम्प्रेषण**—ज्ञापन, पत्र, प्रतिवेदन, टिप्पणी एवं अन्य परिस्थितियाँ जिनमें अर्थ के संचरण हेतु लिखित शब्द प्रयुक्त होते है।

## 10.12 बोध प्रश्न

**A- रिक्त स्थान की पूर्ति करे :**

1. ....................एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति समान सहमति (समझ) पर पहुंचने को सूचनाओं का सृजन एवं उन्हें साझा करते है।
2. ..................... शब्दों को अर्थपूर्ण प्रतीकों यथाः शब्दो, चित्रों, भाव भंगिमा इत्यादि में परिवर्तित करने की प्रक्रिया........................ कहलाती है।
3. ...............................को अंगूरीलता सम्प्रेषण के नाम से भी जाना जाता है।
4. ..................... सम्प्रेषण ऐसे दो या अधिक व्यक्तियों के मध्य सम्प्रेषण है जो संगठनात्मक संरचना में समान स्तर पर कार्यरत नहीं होते है।

**B. सत्य या असत्य बताये :**

1. सम्प्रेषण का अर्थ सूचना एवं समझ का हस्तान्तरण है।
2. अनौपचारिक सम्प्रेषण माध्यम औपचारिक सम्प्रेषण माध्यम की तुलना में धीमे होते है।
3. उर्ध्व सम्प्रेषण पद सोपान स्तर में सर्वत्र सूचना प्रसार करता है।
4. अंगूरीलता सम्प्रेषण औपचारिक सम्प्रेषण का एक रूप है।
5. अफवाह फैलाने की संभावना अंगूरीलता सम्प्रेषण में व्याप्त होती है।
6. अधिकांश सम्प्रेषण अ–शाब्दिक सम्प्रेषण द्वारा होता है।
7. अभिज्ञता (अनुभूति) कभी–कभी सम्प्रेषण के अवरोध के रूप में कार्य करती है।
8. गृहीता एवं कूटानुवादक एक व समान व्यक्ति होता है।
9. कूटलेखन संदेश के निर्वचन की प्रक्रिया है।
10. प्रतिपुष्टि को सदैव सावधानीपूर्वक निर्वचित करना चाहिये।

## 10.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

**A-** (1) सम्प्रेषण 2. कूटलेखन 3. कूटलेखन 4. विकर्ण।

**B-** 1. सत्य 2. असत्य 3. असत्य 4. असत्य 5. सत्य 6. सत्य 7. सत्य 8. सत्य 9. असत्य 10. सत्य

## 10.14 स्वपरख प्रश्न

1. श्रेष्ठ सम्प्रेषण श्रेष्ठ प्रबंधन की आधारशिला है। टिप्पणी कीजिये?
2. सम्प्रेषण के महत्व का वर्णन कीजिये।
3. सम्प्रेषण प्रक्रिया के समस्त तत्वों का सविस्तार वर्णन कीजिये?
4. प्रभावी अंर्तवैयक्तिक सम्प्रेषण के अवरोधों का वर्णन कीजिये?
5. औपचारिक एवं अनौपचारिक सम्प्रेषण के मध्य अंतर स्पष्ट कीजिये।

6. सम्प्रेषण संजाल (नेटवर्क) के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिये?
7. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये :
   (i) अंगुरीलता;
   (ii) अ–शाब्दिक सम्प्रेषण;
   (iii) अधोगामी सम्प्रेषण;
   (iv) उर्ध्वगामी सम्प्रेषण;
   (v) पार्श्विक सम्प्रेषण;
   (vi) प्रभावी सम्प्रेषण के सिद्धांत।

## 10.15 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Curtis Dan B., Floyd James J., Winsor Jerry L., Business and Professional Communication, Harper Collins Publishers, 1992
2. Hiltrop Jean M., Vdall Sheila., The Essence of Negotiation, Prentice Hall, 1995
3. Munter Mary, Guide To Managerial Communication, Prentice Hall, 1992
4. Stanford Wayne F., Dawalder David P., Communicating in Business, Auston Press, 1994
5. Thill John V., Bovee Courtland L., Excellence in Business Communication, Prentice Hall, 2005
6. R.C. Sharma and Krishna Mohan, Business Correspondence and report writing, Tata McGraw Hill, 3rd Edition.
7. Chaturvedi & Chaturvedi, Business Communication: Concepts, Cases and Application, Pearson Education.
8. Shirley Taylor, Communication for Business, Pearson Education, 3rd Edition.
9. Meenakshi raman and Prakash Singh, Business Communication, Oxford University Press.

# इकाई 11 नेतृत्व

**इकाई की रूपरेखा**


11.1 प्रस्तावना
11.2 नेतृत्व का अर्थ
11.3 नेतृत्व की परिभाषा
11.4 नेतृत्व की आवश्यकता एवं महत्व
11.5 नेतृत्व की विशेषतायें
11.6 प्रभावी नेता के गुण
11.7 नेता के व्यक्तित्व की विमाएं (आयाम)
11.8 नेता एवं नेतृत्व के प्रकार
11.9 नेतृत्व की शैलियाँ
 11.9.1 नेतृत्व की प्राधिकरवादी (तानाशाही) शैली
 11.9.2 लोकतंत्रात्मक नेतृत्व
 11.9.3 नेतृत्व की अहस्तक्षेप शैली
11.10 नेतृत्व के सिद्धांत
 11.10.1 देवदूत (दिव्य) सिद्धांत
 11.10.2 नेतृत्व का लक्षण सिद्धांत
 11.10.3 नेतृत्व का व्यवहार सिद्धांत
 11.10.4 परिस्थिति सिद्धांत
11.11 नेतृत्व के उभरते आयाम
 11.11.1 प्रेमलब्धि (गुणक)
 11.11.2 अहंकारहीनता के साथ भावात्मकलब्धि
 11.11.3 प्रतिकूलता लब्धि (गुणक)
 11.11.4 साहस लब्धि
 11.11.5 उद्यमिता लब्धि
 11.11.6 शोध लब्धि
11.12 नेता एवं प्रबंधक के मध्य अंतर
11.13 सारांश
11.14 शब्दावली
11.15 बोध प्रश्न
11.16 बोध प्रश्नों के उत्तर
11.17 स्वपरख प्रश्न
11.18 सन्दर्भ पुस्तकें


**उद्देश्य**

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- नेतृत्व की संकल्पना को परिभाषित कर सकें।
- नेतृत्व के उदय का वर्णन कर सकें।
- नेतृत्व के गुणों का वर्णन कर सकें।
- नेतृत्व के प्रकार का वर्णन कर सकें।

- नेता एवं प्रबंधक के मध्य अंतर जान सकें।

## 11.1 प्रस्तावना

यदि कुछ होता है तो कोई इसे अपने अभिप्रेरण, निर्देशन समन्वय एवं प्रयत्नों से सीख बनाता हैं। यदि कोई व्यक्तियों का समूह या दल कार्य को पूर्ण करना चाहता है, तो नेता की आवश्यकता पड़ेगी। दो प्रकार के कार्य है। नेतृत्व करना अथवा अनुगमन करना। अनुगमन करना सरल कार्य है। अतः अधिकांश लोग नेतृत्व करवाना पसंद करते हैं तथा जो नेतृत्व के गुणों से उपहारयुक्त होते है, नेता बनते है। नेता दूसरों के व्यवहारों को प्रभावित करने में सक्षम होता है।

व्यवसायिक जगत में संगठन में कार्यरत व्यक्ति समान उद्देश्य के लक्ष्य के लिये कार्य करते समय निर्देशित एवं प्रभावित होने की आवश्यकता रखते है। नेता संगठन की लाभदायकता एवं व्यक्ति की महतम उत्पादकता सुनिश्चित करने हेतु समूह के रूप में अनुशासित रीति से कुछ भी करने हेतु विश्वास निर्माण एवं उत्साह वर्धन की क्षमता रखता है।

## 11.2 नेतृत्व का अर्थ

नेतृत्व अग्रगमन की भावना, अथवा भावी होने की मानसिकता तथा हावी होने का अभिप्राय हैं हम सभी के लिये दो रास्ते, नेतृत्व करना और अनुसरण करना नेतृत्व तुलनात्मक कठिन कार्य है । अतः हम में से अधिकांश लोग सरल विकल्प, किसी का अनुसरण करना चुनते है। नेतृत्व व्यवहार का गुण है। नेतृत्व लोगों को वह करने, जो नेतृत्व के अभाव में नहीं कर पायेंगे, हेतु तैयार करने हेतु उनके प्रतिभागों को उकसाने की क्षमता है।

इस प्रकार सहकर्मियों के मध्य में उच्च स्थिति प्राप्त करने का गुण व क्षमात है।

## 11.3 नेतृत्व की परिभाषा

नेतृत्व दूसरों के व्यवहार को प्रभावित करने की प्रक्रिया है। प्रबंध विचारणों ने नेतृत्व को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित किया है।

**कीव्य डेंविस के अनुसार,—**प्रबंधकीय नेतृत्व उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु दूसरों को उत्साहपूर्ण ढंग से कार्य करने को प्रभावित एवं सहायता करने की प्रक्रिया है।

**वेहरिच एवं कुण्टन के विचार में,—**नेतृत्व लोगों को प्रभावित करने की कला है जिससे वे समूह लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु इच्छापूर्वक एवं उत्साहपूर्ण ढंग से आगे बढ़ेगे।

नेतृत्व संकल्पना एवं व्यवहार दोनों है।

नेतृत्व एक व्यवहार है जो नेताओं के कार्य के रूप में प्रदर्शित होता है। लक्ष्यों में पूर्ण आस्था योजनाओं के क्रियान्वयन हेतु पूर्ण निश्चय तथा परंपरागत विवेक के विरुद्ध जाने की पूर्व तैयारी नेतृत्व की पूर्व आवश्यकतायें हैं। निम्नलिखित चार लक्ष्य नेतृत्व की गुणवत्ता का ध्यान रखते है।

1. **नवप्रवर्तन.—**कुछ नवी सृजित करने की तीक्ष इच्छा;
2. **समन्वयन.—**समन्वयित विधि से सहयोग प्राप्त करने की भावना;
3. **प्रबंध करना.—**कठिन प्रतिकूल परिस्थितियों में संतुलन बनाना तथा उससे बाहर निकलना;

4. **समस्या समाधान (हल).**—पूर्वाग्रह (मानसिकता) की समस्याओं के हल की योग्यता।

नेतृत्व उपरोक्त चार योग्यताओं का मिश्रण है।

## 11.4 नेतृत्व की आवश्यकता एवं महत्व

प्रश्न यह है कि हम सभी को नेताओं की आवश्यकता क्यों है? नेताओं एवं नेतृत्व की महत्ता क्या है? इन प्रश्नों का उत्तर नेतृत्व तथा नेताओं के महत्व का औचित्य सिद्ध करता है। प्रायः सभी व्यक्ति स्वयं से आरंभ नहीं करते। वे किसी ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता महसूस करते है जो ये बताये कि उन्हें क्या करना है, कैसे, कितना, क्यो, कब, कहा । नेता वह होता है जो इन उत्तरदायित्वों को ग्रहण करता है, कार्य अपने आप नहीं होता, कोई होता है जो इसे संभव बनाता है, और जो व्यक्ति इन बातों (कार्यों) को संभव बनाता है। उसे नेता कहा जाता है।

मनुष्य निष्पादन करने वाला प्राणी होता है किंतु वह किसी अंन्य व्यक्ति की आवश्यकता महसूस करता है जो उससे कहे कि क्या करना है? कैस करना है? यही नेता की आवश्यकता पड़ती है। नेता एक प्रवर्तक होता है जो अनुयायियों को प्रेरणा मूल्यों मनोभाव एवं ज्ञान (दृढ़–विश्वास) द्वारा उद्देश्यों प्रक्रिया एवं परिणाम (प्राप्ति / लाभ) के सहभाजन हेतु तत्पर करता है। नेता एवं अनुयायियों का लक्ष्य मिलना (समान) चाहिये। नेतृत्व का अर्थ होता है, उत्तरदायित्व, निष्ठा, सेवा लोचशीलता एवं गतिविधि (कार्य) है। नेतृत्व का अर्थ है मार्गदर्शक शक्ति होना सहयोगी (मददगार) होना तथा पथ–प्रदर्शक एवं अनुकरणीय व्यक्ति दोनों होना। नेतृत्व एक गतिक (ऊर्जस्वी) तथा रचनात्मक (तर्क साध्य) शक्ति (बल) है तथा नेता एवं नेतृत्व की आवश्यकता एवं महत्व को नेता के निम्नलिखित कार्यों से न्यायोचित सिद्ध किया जा सकता है।

(1) **लक्ष्यों का निर्धारण**—नेता दल, संगठन तथा समाज, जहां से वह सम्बन्ध रखता है, के लक्ष्यों तथा नीतियों का निर्धारण करता है।

(2) **दल सदस्यों को अभिप्रेरित करना**—नेता अपने दल के सदस्यों को ऐच्छिक लक्ष्यों एवं प्रयोजन को प्राप्त करने हेतु प्रत्येक संभव कृत्य करने को प्रेरित एवं अभिप्रेरित करता है।

(3) **सहयोग सुनिश्चित करना**—नेता कार्य सम्पादन में दल सदस्यों के सहयोग पाने की कोशिश करता हैं तथा सहयोग की प्राप्ति सुनिश्चित करता है।

(4) **दूरदर्शिता एवं पहल का सृजन**—नेता अपने अनुयायियों को दर्शन (दृष्टि / दूरदर्शिता) प्रदान करता है, जो कार्य एवं उत्साह में परिवर्तित होता है।

(5) **परिवर्तन कर्ता (प्रतिनिधि)**—नेता के परिवर्तनकर्ता सिद्ध होना आवश्यक है। चीजें, वस्तुएं, दशाएं स्वयं परिवर्तित नहीं होती । नेता इस परिवर्तन को संभव एवं प्राप्तनीय (प्राप्त करने योग्य) बनाता है। ऊर्जस्वी नेता व्यक्तियों को परिवर्तन स्वीकार करने परिवर्तन हेतु कार्य करने तथा परिवर्तन को अपनाने हेतु तैयार करता है।

हम सभी ने यह कहावत अवश्य सुनी होगी कि इंजन की गति ही रेल के गति होती है। यदि इंजन तेज भगता है तब पूरी रेल भी तेजगति से भागती है और यदि इंजन धीमा होता है तो रेल भी धीमी हो जाती हैं यदि इंजन रूक जाता

है तो रेल रूक जाती है। इसी प्रकार का प्रत्यक्ष एवं सकारात्मक सम्बन्ध नेता की गति एवं संगठन की गति में होता है। यदि नेता तेज, ऊर्जस्वी अग्रगामी दृष्टिकोण तथा उन्नतिशील विचारों का स्वामी है तब संगठन समृद्ध होगा तथा संगठन के स्कंधधारी (अंशधारी) एवं हितधारी प्रसन्न एवं समृद्ध होगे। नेतृत्व समस्त कार्यों हेतु प्रमुख अभिप्रेरक बल (शक्ति) है। यह नेता के महत्व को रेखांकित करती है।

## 11.5 नेतृत्व की विशेषतायें

नेतृत्व के अर्थ एवं परिभाषा से नेतृत्व की निम्नलिखित चारित्रिक विशेषतायें उपजती हैः

1. नेतृत्व नेता व अनुयायी के मध्य प्रभावित करने एवं सहयोग करने का सम्बन्ध है।
2. नेतृत्व एवं व्यक्ति का व्यक्तिगत गुण है जिससे वह अपने अनुयायियों का मार्ग दर्शन करता है।
3. नेतृत्व अंर्तवैक्तिक सम्बन्ध का एक प्रकार है।
4. नेतृत्व आकस्मिक एवं पारिस्थितिक है।
5. नेतृत्व लोगों को समान लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु स्वेच्छा एवं उत्साहपूर्ण एंग से प्रयास करने के लिये नीति करने एवं राजी करने की क्षमता है।
6. नेतृत्व शक्ति आधारित होता है। व्यक्ति जो अन्य लोगों पर शक्ति ध्वरण करता है। नेता होता है।
7. नेतृत्व चिन्ता शक्ति (बल) है।
8. नेतृत्व कार्य पद्धति (क्रिया) एवं गतिविधि पर आधारित होता है। नेतृत्व महज एक स्थिति (पद) नहीं है वरन यह निष्पाद न आधारित गतिविधि है।
9. नेतृत्व एक जन्मजात गुण नहीं है बल्कि यह प्राप्त एवं गतिवृद्धि (तीझ करना) किया जाता है।
10. नेतृत्व समस्या समाधान की योग्यता है। एक व्यक्ति तब तक नेता बना रह सकता है जब तक वह समस्याओं का समाधान करने एवं चुनौतियों को स्वीकार करने की क्षमता रखता है।
11. नेतृत्व परिणामोंन्मुखी होता है। एक नेता एक हासिल करने वाला (सफल व्यक्ति) होता है।
12. अनुसरण नेतृत्व का सार है, अनुयायियों के अभाव में नेता अर्थहीन होता है (अनुयायी नहीं अर्थात नेता नहीं)

    नेतृत्व एक अनुशीलन है, व्यवहार है, एक मानसिकता है। आगे से नेतृत्व करना पश्च भाग से नेतृत्व करना कार्य के साथ नेतृत्व करना आदि नेतृत्व के कई ढंग है। नेतृत्व की कुछ अन्य विशेषतायें निम्नांकित है :

1. यथार्थ (वास्तविक/सच्चा) नेतृत्व सहयोगात्मक होता है, उत्पीड़क नहीं।
2. सच्चा नेता औरों का नेतृत्व करता है एवं आगे ले जाता है।
3. सच्चे नेता दृष्टा होते है। प्रथमतः दर्शन (दूरदर्शिता) तत्पश्चात क्रिया।
4. नेतृत्व स्थिति (पद) को प्रकट नहीं करता यह भावना है।
5. नेतृत्व एक कला है जो संचेतना के साथ संवेदनशीलता के साथ तथा सावधानीपूर्वक सीखी जा सकती है।
6. नेतृत्व से तात्पर्य अंत के प्रदर्शन से नहीं है।
7. नेतृत्व का अर्थ उत्तरदायित्व से है।

8. नेतृत्व से अभिप्राय अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं, व्यक्तिगत पसंद तथा व्यक्तिगत आकंक्षा को एक किनारे रखने से है।
9. नेतृत्व का अर्थ सेवा है।
10. नेतृत्व से अभिप्राय निष्ठा से है।
11. नेतृत्व से तार्त्प स्वीकार्यता एवं उपलब्धता से है।
12. नेतृत्व का अर्थ क्रिया (कार्य) से है।
13. नेतृत्व से अभिप्राय अभिप्रेरणा एवं स्वयं आरंभ करने वाले व्यक्तियों को तैयार करने (सृजित करने) से है। नेतृत्व का अर्थ अगुवाई एवं चुनौती स्वीकार करने से है।

## 11.6 प्रभावी नेता के गुण

परम्परागत विचारकों का मत था कि नेता पैदा होते है, लेकिन अब यह स्वीकार कर लिया गया है कि कोई भी व्यक्ति नेता के गुणों को प्राप्त (अर्जित) कर सकता है तथा प्रभावी नेता साबित कर सकता है। नेता दल के लिये लक्ष्य तय करता है, प्रत्येक को उसके कार्य आवंटित करता है तथा देखता है कि कार्य पूर्ण संतुष्टि के साथ हुआ कि नहीं वह अपने दल के सदस्यों जिनके लिये वह कार्य कर रहा है का विश्वास अर्जित कर आनंद लेता है तथा अपने अनुयायियों को साथ कार्य करने हेतु प्रेरित एवं अभिप्रेरित करता है। पीटर एफ ड्रकर ने नेता के कार्यात्मक गुणों के विषय में निम्न शब्दों में अति उचित कहा है।

"नेता की दक्षता का प्रथम परीक्षण उसके व्यक्तियों को न्यूनतम व्यवधान तथा अधिकतम दक्षता के साथ कार्य में बनाये रखने की दक्षता (क्षमता) में निहित होता है।"

नेतृत्व एक कला है इसे संवेदनशील के साथ सीखा व लागू (आरोपित) किया जाना चाहिये। यह (नेतृत्व) स्वयं पद (स्थिति) के साथ भूमि नहीं किया जाना चाहिये।

एक प्रभावी नेता को एक अच्छा मानव (मनुष्य) होना चाहिये। नेता के गुणों की कोई अंतिम सूची नहीं हो सकती, उसे एक अच्छे मनुष्य के समस्त गुणों को अवश्य धारण करना चाहिये। तथापि नेतृत्व के कुछ गुणों को निम्न प्रकार से वर्णित किया जा सकता है।

1. **अच्छी संदेशवाहन दक्षता (कौशल)**—नेता को एक अच्छा संचारक, मौखिक एवं लिखित दोनो प्रकार से, होना चाहिये। उसे अवश्यक ही एक प्रभावी वक्त एवं धैर्यवान श्रोता होना चाहिये। भाषा पर अधिकार एवं संचार करती शारीरिक भाषा नियंत्रण करने (आदेश देने/शापन करने) एवं नेतृत्व करने में नेता की सहायता करते हैं।

2. **दया (सहानुभूति)**—दया (करूणा) एक महान गुण है जिसे प्रत्येक नेता को अवश्य धारण करना चाहिये। ध्यातव्य है कि पवित्र लोग दयालु पूर्ण व्यक्ति होते है, जिनसे हम दया प्राप्त करते है।

3. **सहिष्णुता (सहजशक्ति तितिक्षा)**—सहनशीलता एक महान गुण है। सदैव व्यापक दृष्टिकोण एवं विचारों से मुक्त होने का प्रयास करना चाहिये।

4. **उदारता.**—उदार बनो और तुम महान बनोंगे यह एक प्राचीन उत्तम कथन है। विशाल हृदय के स्वामी विश्व पर शासन करते है।

5. **चरित्र**—एक अच्छे नेता को निरपवाद रूप से (सर्वदा) (उत्तम) अच्छा नैतिक चरित्र धारण किया हुआ होना चाहिये। उत्तम चरित्र से आशय विचारों, शब्दां एवं कार्य में सामंजस्य से है।

6. **दूरदर्शिता (दृष्टि)**—नेता को आवश्यक रूप से दूरदर्शी होना चाहिये। दृष्टि स्पष्ट एवं उद्देश्योन्मुखी होनी चाहिये।

7. **निर्णय क्षमता अथवा निर्णयन क्षमता**—परिणाम निर्णीत निर्णयों के आधार पर किये गये कार्यों से प्राप्त होते है। तत्काल निर्णय समय पर लिये गये निर्णय एवं उपयुक्त निर्णय लेने की क्षमता सांगठनिक सफलता की कुंजी है।

8. **साहस**—साहस नेता का सर्वश्रेष्ठ आभूषण है। नेता साहसलब्धि (साहस गुणक) के आधार पर अगुवाई (पहल) करता है। साहस एक वह गुण है जो मानव के अन्य समस्त गुणों का सार है।

9. **दल–निर्माण**—दल निर्माण नेता का आधारभूत (प्राथमिक) गुण है। नेता को दल का निर्माण दल के सदस्यों की प्रतिभा, दक्षता, रवैये तथा मानसिकता (मानसिक स्तर) को दृष्टिगत करते हुये करना चाहिये।

10. **मानव**—नेता को एक अच्छा मानव होना चाहिये जो दिमाग एवं ह्नदय के गुणों के उचित मिश्रण को रखे हुये हो। मानव की भावना मानवीयता (मानवीय) होने में ही है।

11. **प्रतिक्रियाशील**—एक नेता को सदैव समय की मांग पर प्रतिक्रिया करनी चाहिये। एक नेता निष्पादक, परिणाम प्राप्त करने वाला एवं अभिप्रेरक होता है। उसे अपने अनुयायियों के लिये सदैव उपलब्ध होना चाहिये तथा प्रत्येक समय सही एवं प्रासंगिक (उपयुक्त) होना चाहिये।

नेता संगठन रूपी रेल का इंजन होता है तथा इंजन की गति ही रेल की गति होती है। नेतृत्व की गुणवत्ता कार्यशाला के भाग्य का निर्धारण करती है। नेता सदैव सहयोगात्मक साहसी एवं सहभागी होता है। वह समावेशी उपागम में विश्वास करता है। नेता पूर्ण स्वाभिमानी होता है। किन्तु अह एवं अपनी भावनाओं से रहित होता है।

नेतृत्व के अधिकांश गुण इसके अंग्रेजी भाषा के शब्द LEADER के संक्षिप्ति में दृश्यमान होते है।

L–Loyalty–निष्ठा/स्वामिभक्ति व्यक्ति के लिये एवं ह्रदय की विशालता

E–Empowving – Enserving–सशक्तिकरण एवं सुनिश्चितिकरण

A–Acceptable and Available–स्वीकार्य एवं उपलब्ध

D–Devoted and Disciplinavion–समर्पित एवं अनुशासन रखने वाला

E–Entnusiastic and Ever realy–उत्साही एवं सदैव तत्पर

R–Responsive and Recemodel–उत्तरदायी (प्रतिक्रियाशील) एवं अनुकरणीय

उपरोक्त गुण महज संकेत है। नेतृत्व करने एवं बेहतर (उत्तम) करने की क्षमता एवं अंतः उत्तेजना की दिमाग एवं ह्रदय के गुणों के अच्छे मिश्रण हेतु प्रकार (माँग) है।

एक नेता आशा का लेन–देन करने वाला होता है तथा नेतृत्व व्यक्तियों के समूह को आने वाले समय में आने वाली चुनौतियों भय (आशंकाओ) का सामना करने हेतु तैयार करने की कला है। नेता अनुयायियों की अभिलाषा को समझता है,

उनमें रंग भरता है तथा व्यक्तियों के उद्देश्य के संगठन के उद्देश्यों के साथ मिलान में सहायता करता है।

**प्रभावी नेतृत्व का सूत्र:—** स्वप्न दृष्टा विचारक कर्ता पूर्णवादी नेता

## 11.7 नेता के व्यक्तित्व की विमाएं (आयाम)

एक नेता के व्यक्तित्व के बहुविकल्पीय एवं बहुदिशीय होना अर्थ बहुकार्य न निष्पादन हेतु है। नेता के व्यक्तित्व के निम्नलिखित तीन आयाम है :

**नेता का व्यक्तित्वः** दूरदर्शी व्यक्तित्व रणनीतिक व्यक्तित्व (कूटनीतिक) परिचालन व्यक्तित्व

1. **दूरदर्शी व्यक्तित्व**—नेता दृष्टा होता है। वह कतिपय ध्येय आधारित दृष्टि रखता हैं दृष्टि (दृष्टिकोण/दूरदर्शिता) एक व्यापक परिपेक्ष्य आधारित दर्शन होता हैं नेता की दृष्टि ध्येय, उद्देश्य लक्ष्य एवं प्रयोजन को निश्चित करता है। समस्त सफल नेता मूलतः दूरदर्शी होते है। दूरदर्शिता के बिना कोई आगे नहीं बढ़ सकता।

2. **रणनीति (आग्यूह)**—हम सभी एक उच्च प्रतिस्पर्धा के युग में रह रहें है। सफल होने के लिये हमें रणनीतिक होने की आवश्यकता है, न कि उच्च रणनीति की।

रणनीति हमें वह करने हेतु सशक्त करती है जो सफलता सुनिश्चित करती है। रणनीतियाँ उन लोगों की स्थिति, योजना एवं नतियों को दृष्टिगत करके निर्मित की जाती है जिनके साथ हमें संघर्षरत होते है। नीतियाँ असफल हो सकती है किंतु रणनीतियाँ नहीं होती है। क्योंकि रणनतियाँ सुगणित होती है तथा अन्य लोग क्या करेगें इसके पूर्व आकलन पर आधारित होती है।

3. **क्रियाशील (परिचालन–संबंधी)**—दृष्टिकोण एवं रणनीतियाँ के कोई मायने नहीं है यदि इन्हें व्यवहार में न लाया जाये क्योकि कोई कार्य अपने आप (स्वयं) नहीं होती उसे करना पड़ता है। कार्य से ही वास्तविक सफलता प्राप्त होती है। नेता अपने दृष्टिकोण एवं रणनीतियों के अनुसार कार्य करता है तथा अन्य सहयोग करते है। कार्य किये जाते है, प्रयत्न किये जाते है तथा सफलता प्राप्त की जाती है।

नेता अपने सहकर्मियों तथा अनुयायियों को कार्य करने हेतु कहता है। सभी कार्य करते है तथा उद्देश्य पूर्ण किया जाता है एवं लक्ष्य प्राप्त किये जाते हैं।

## 11.8 नेता एवं नेतृत्व के प्रकार

नेतृत्व नेतृत्व करने अगुआई करने तथा उद्यम की एक संकल्पना हैं यह जीवन के समस्त क्षेत्रों में आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति नेता नहीं बन सकता किंतु प्रत्येक व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है कि वह नेतृत्व के कतिपय गुणों को धारण किये हुये हो। नेतृत्व मनुष्य में व्याप्त उत्कृष्टता एवं पूर्णता का प्रदर्शन (प्रयोग/व्यवहार) है। नेता एवं नेतृत्व के विभिन्न प्रकार निम्नलिखित है।

**राजनैतिक नेता**—राजनीति नेता राजनैतिक क्षेत्र में कार्य करते है। वे कतिपय राजनैतिक विचारधारा, दृष्टिकोण एवं ध्येय रखते हैं वह राजनैतिक प्रणाली के द्वारा जनता की सेवा करना चाहते है। वे अपना स्वयं का राजनैतिक दल गठित करते है, अथवा किसी अस्तित्व में रहने वाले (पूर्व गठित) ऐसे राजनैतिक

दल में सम्मिलित हो जाते है। जो उनके राजनैतिक नीतियों एवं सिद्धांतों के अनुरूप होती हैं राजनीतिक नेता अति–लोकप्रिय होते है। यहां तक कि नेता शब्द राजनीतिक नेता का पर्याय बन गया हैं यदि अन्य कुछ वर्णित न हो तो नेता से तात्पर्य राजनैतिक नेता से है।

**सामाजिक नेता**—सामाजिक नेता सामाजिक कार्यकर्ता होता है तथा समाज सुधारों के लिये कार्य करता है। वे सामाजिक बुराइयों के उन्मूलन एवं समाप्ति हेतु कृत आंदोलनों का नेतृत्व करते हैं अच्छी भावना के व्यक्ति पहले समाज के बेहतर बनाने के ध्येय से कुछ अच्छा कार्य करते हे तब अन्य लोग उनसे जुड़ते है।

**रूपांतरक नेता**—रूपातंरक नेता वे नेता होते है जो अनुयायियों को अंदर (आंतरिक रूप से) से रूपांतरित करते है। वे व्यक्तियों को नियोजित करते है, तथा उनमें प्रतिबद्धता, सहभागिता एवं प्राप्ति की भावना भरते हैं। ये नेता अद्भुत होते है, क्योंकि ये दूरदर्शी होते है तथा अपने अनुयायियों को स्वप्न देखने एवं महानता प्राप्त करने हेतु प्रेरित करते है। वे उन्हें अच्छे से महान बनने की ओर अग्रसर करते है।

**व्यावसायिक नेता**—व्यवसायिक नेता व्यवसायिक कार्य क्षेत्र के नेता होते है। ये व्यवसाय जगत में अपनी पूर्व दूरदर्शिता, रणनीतिक प्रबंधकीय दक्षता, एवं प्रशासनिक प्रभावोत्पादकता के कारण सफलता प्राप्त करते है। ये सफल व्यवसायिक अगुआ, औद्योगिक बैकर्स, ऊर्जा उत्पादक तथा आधारभूत संरचना प्रदाता होते है। वे कई नौकरियों को सृजित करते है, बहुत से लोगों को रोजगार प्रदान करते है। देश की अर्थव्यवस्था ऐसे नेताओं पर आधारित होती है।

**करिश्माई नेता**—एक करिश्माई नेता करिश्मा करता है। वह अपने दल में उत्साह की भारी खुराक भरता है। वह दूसरों की आगे बढ़ाने में अति ऊर्जावान होता है। वह अपने अनुयायियों की सहायता से आश्चर्य जनक परिणाम दे सकता है तब भी जबकि उसके अनुयायी ऊर्जावान एवं योग्य न हो। उसकी उपस्थिति ही सफलता सुनिश्चित करती है क्योंकि वह अभिप्रेरण एवं कार्यकारी बल का स्त्रोत होता है।

**व्यवहार नेता (कारोबारी नेता)**—व्यवहारी नेता वे नेता होते है जो अपने दल के सदस्यों की सहायता से कार्य सम्पादित करते है। उनका नेतृत्व व्यवहार (कार्यवाही) आधारित होता है। अन्य शब्दों में ये सिर्फ एक प्रबंधक की भांति कार्य करते है। इस प्रकार के नेता अल्प अवधि के लक्ष्यों एवं कार्यों के लिये अति उत्तम होते है। इस प्रकार का नेतृत्व अधिकांश व्यावसायिक संगठनों में पाया जाता है। इस प्रकार के नेता आवंटित कार्य को दक्षतापूर्वक एवं प्रभावी ढंग से करते है।

## 11.9 नेतृत्व की शैलियाँ

नेतृत्व की शैली नेता के कार्य करने की शैली होती है, जिसमें नेता कार्य करता है, वह विधि जिससे नेता दूसरों को प्रभावित एवं उनका नेतृत्व करता है। नेतृत्व की शैलियाँ निम्नलिखित है :

(अ) निरंकुश (एकतंत्रीय) शैली;

(ब) लोकतान्त्रिक (प्रजातान्त्रिक) शैली;

(स) अबंध (अहस्तक्षेप) शैली।

**11.9.1 नेतृत्व की प्राधिकरवादी (तानाशाही) शैली**—नेतृत्व की यह शैली शक्तियों संकेक्षण, आदेश की एकता एवं निर्देश की एकता, में विश्वास रखता है। निरंकुशता (एकतंत्र) दो प्रकार की होती है :

(1) विशुद्ध (पूर्ण) निरंकुशता;

(2) उदार (सद्भावपूर्ण) निरंकुशता।

पूर्ण निरंकुश नेता तानाशाह प्रकार का नेता होता है वह स्वयं निर्णय लेता है। आदेश निर्गत करता है तथा अनुयायियों से यह अपेक्षा करता है कि वे सिर्फ इसका पालन करें। यह नकारात्मक नेतृत्व होता है। उदार निरंकुश नेता सकारात्मक एवं विचार पर आधारित होता है। वह अपने अनुयायियों को महत्व देता है, उनके अच्छे कार्य के लिये पुरस्कार प्रदान करता है, तथा शक्ति के उत्पीड़क उपयोग की उपेक्षा करता है।

**11.9.2 लोकतंत्रात्मक नेतृत्व**—लोकतांत्रिक नेतृत्व भागीदारी प्रति का होता है तथा निर्णयन प्रक्रिया में अनुयायियों को सम्मिलित करने में विश्वास रखता है। नेता तथा अनुयायी साथ के वातावरण में एक सामाजिक इकाई के रूप में कार्य करते है। तानाशाही (निरंकुश) शैली के विपरीत प्रजातान्त्रिक नेतृत्व शक्तियों के विकेन्द्रीकरण में विश्वास करता है।

**11.9.3 नेतृत्व की अहस्तक्षेप शैली**—यह नेतृत्व की मुक्त (निर्बन्ध) शैली होती है। नेता का हस्तक्षेप अति–अल्प होता है। व्यक्ति नियोजन एवं क्रियान्वयन हेतु स्वतंत्र होते है। नेता अपने अनुयायियों एवं अधीनस्थों को उच्च स्तर की स्वतंत्रता प्रदान करता है। इस प्रकार का नेतृत्व अधीनस्थों (अनुयायियों) को उनकों अपने अनुसार प्रशिक्षित एवं विकसित करने में सहायता करता है। नेता सिर्फ एक कर्मवाच्य (निष्क्रिय) प्रेक्षक होता है तथा महज आपदा (संकट) के समय प्रतिक्रिया करता है।

इस प्रकार का नेतृत्व तभी प्रभावी ढंग से कार्य करता है जब नेता उच्च नैतिक ईमानदार प्रतिक्रियाशील एवं जवाब देयी हो।

नेतृत्व के प्रत्येक प्रकार के अपने लाभ एवं हानि है। किस शैली को अपनाया जाये व्यापक रूप से यह संगठन में प्रचलित घटकों पर निर्भर करता है।

सफलापूर्वक नेतृत्व हेतु नेता की सभी नेतृत्व शैलियों के उत्तम गुणों का मिश्रण विकसित करना चाहिये कोई नेता अपने कार्यों को अनन्यता नहीं ला सकता उसे उपरोक्त तीनों शैलियों का समय की मांग के अनुसार उपयोग करना चाहिये।

**नेतृत्व की विभिन्न शैलियों का तुलनात्मक विहंगावलोकन**

| अंतर का आधार | निरंकुश नेतृत्व | जनतांत्रिक नेतृत्व | अहस्क्षेप नेतृत्व |
|---|---|---|---|
| 1. निर्णयन | निर्णय नेता स्वयं ही लेता है। | निर्णय नेता द्वारा अधीनस्थों से परामर्श के उपरांत लिये जाते है। | निर्णय सम्बन्धित व्यक्तियों द्वारा स्वयं लिये जाते है। |
| 2. प्राधिकार | केन्द्रीकृत | थ्वकेंद्रित | अधीनस्थों को पूर्ण शक्ति के साथ प्रत्यायोजित |
| 3. व्यवहार का | कार्य केन्द्रित | सम्बन्ध केन्द्रित | व्यक्ति केंद्रित |

| | | | |
|---|---|---|---|
| आधार | | | |
| 4. संचार की सीढ़ी | उर्ध्व | उर्ध्व (द्विमागी) उच्च से निम्न एवं निम्न से उच्च | क्षैतिज एवं ऊपर से नीचे की ओर |
| 5. कार्य संतुष्टि का स्तर | निम्न | मध्यम श्रेणी का | उच्च स्तर का |
| 6. अभिप्रेरण | नकारात्मक | सकारात्मक | स्व–अभिप्रेरण |

## 11.10 नेतृत्व के सिद्धांत

समय–समय पर नेतृत्व के विभिन्न सिद्धांत प्रबंध शात्रियों द्वारा प्रतिपादित किये गये है। अध्ययन के उद्देश्य से इन सिद्धांतों को निम्नलिखित चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :

1. देवदूत (दिव्य) सिद्धांत;
2. लक्षण सिद्धांत;
3. व्यवहार सिद्धांत;
4. परिस्थिति सिद्धांत।

**11.10.1 देवदूत (दिव्य) सिद्धांत**—इस सिद्धांत को महान पुरूष सिद्धांत के नाम से भी जाना जाता है। यह सिद्धांत इस सिद्धांत कि नेता पैदा होते हैं पर आधारित होती है। कोई नेता की (अंतःस्थित) अंर्तनिहित गुणों के साथ पैदा होता हैं । नेता या महान व्यक्ति जन्म से ही अलग एवं अति विशिष्ट होते है। कतिपय मनुष्य भगवान द्वारा लोगों का नेतृत्व करने हेतु भेजे जाते है तथा अलौकिक शक्ति सम्पन्न होते है। मानव समाज की विभिन्न क्षेत्रों में नेता इसी प्रकार खोजे जाते है।

**11.10.2 नेतृत्व का लक्षण सिद्धांत**—देवदूत सिद्धांत के ठीक विपरीत यह सिद्धांत यह विश्वास रखता है कि नेता पैदा नहीं होते वरन पृथ्वी पर बनते है। कुछ निश्चित लक्षण गुण है तथा कोई भी व्यक्ति जो इन गुणों को धारण किये हुये हो नेता बन सकता हैं ये योग्यताये (गुण) उचित शिक्षा प्रशिक्षण एवं नियमित अभ्यास से किसी के भी द्वारा प्राप्त एवं वर्धित (विकसित) की जा सकती है।
लक्षण सिद्धांत निम्नलिखित लक्षणों पर आधारित है।

1. शारीरिक लक्षण (विलक्षणता)
2. प्रतिभा (दक्षता) लक्षण
3. कार्य केद्रण लक्षण (कार्य केंद्रित)
4. सामाजिक लक्षण

इन लक्षणों को निम्नांकित के अंतर्गत रखा जा सकता है।

1. बुद्धिमत्ता (प्रज्ञा)
2. पर्यवेक्षण योग्यता
3. निर्णयता
4. परिपक्वता
5. अनुकूलता
6. सहयोगात्मकता
7. पहल (अगुआई)

8. स्व–प्रगति
9. विश्वसनीयता (विश्वास पात्रता)
10. साहस
11. उत्तम संचार दक्षता

यह अंतिम सूचना नहीं है किन्तु कोई भी जो इन गुणों को धारण करता है नेता बन सकता है तथा एक प्रभावी नेता सिद्ध हो सकता है।

11.10.3 **नेतृत्व का व्यवहार सिद्धांत**—यह सिद्धांत नेता के कार्य करने (कार्य पद्धति) की क्षमता पर आधारित होता है। नेता वह है जो नेता करता है। इस सिद्धांत की मान्यता है कि महज कुछ गुणों को धारण करने मात्र से कोई नेता नहीं बन सकता वरन यह व्यवहार है जो एक नेता को नेता बनाता है।

यह सिद्धांत विश्वास करता है कि एक नेता सैद्धांतिक मानवीय एवं तकनीकी दक्षता का उपयोग अधीनस्थों एवं अनुयायियों के व्यवहारों को प्रभावित करने हेतु करता हैं। यह सिद्धांत लक्षण सिद्धांत की अनुवृद्धि है।

11.10.4 **परिस्थिति सिद्धांत**—परिस्थितियाँ नेता का निर्माण करती है। दी हुयी परिस्थितियों एवं स्थिति के अंतर्गत एक नेता स्वमेव उभरता हैं मानवीय मूल्यों से युक्त महान नेता महात्मा गांधी नेता तब बने जब उन्होने द. अफ्रीका में भेदभाव की स्थिति का सामना किया। उनका सामान फेंक दिया गया एवं उन्हें रेलवे में प्रथम श्रेणी के डिब्बे से उतरने को बाध्य कियाग या और इसी घटना ने उन्हें महान नेता बनाया। परिस्थिति सिद्धांत को आकस्मिकता सिद्धांत के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि नेतृत्व शैली परिस्थिति के आनुषंगिक (संभाव्य) होती है।

नेतृत्व मानवीय ऊर्जा को श्रेष्ठतर भविष्य के सृजन हेतु काम में लाने की कला है। वास्तविक नेता टिके रहने लड़ने (जुझने) और अपने आस पास के लोगों को उर्जित (ऊर्जायुक्त) करने की ऊर्जा पाते हैं नेता स्वयं गहरी खोज (कड़ी मेहनत करना) करते है एवं अपने समय की विकट (प्रमुख) समस्या का समाधान ढूँढते है। नेता की सफलता का रहस्य निम्नलिखित गुणों में निहित होता है।

1. भावनात्मक ऊर्जा की अविश्वसनीय मात्रा;
2. सहनेताओं को ढूँढने की शक्ति (आदेश/नेतृत्व की द्वितीय पंक्ति) तथा उनकी ऊर्जा को सहभाजी उद्देश्यों के प्रति पंक्तिबंध करना (अनुक्रम नियोजन)
3. बड़ी संख्या में व्यक्तियों की ऊर्जा को टिकाऊ सामूहिक सफलता की प्राप्ति हेतु उत्तेजित करना;
4. नेतृत्व एक श्रेष्ठतर भविष्य का निर्माण करता है। निम्नांकित चार नेतृत्व गतिविधियां संगठन को लाभ पहुँचाती है।
   (a) निर्देशन का निश्चयन (व्यावसायिक संगठन का दिमाग)
   (b) संगठन के विन्यास का अभिकल्पन (व्यावसायिक संगठन की अस्थियां)
   (c) उत्कृष्टता की संस्कृति का सृजन (व्यावसायिक संगठन की तंत्रिका)
   (d) व्यक्ति केंद्रित निर्णय लेना (व्यावसायिक संगठन का ह्रदय)

## 11.11 नेतृत्व के उभरते आयाम

नेतृत्व व्यावसायिक जगत में सर्वाधिक विमर्शित विषय है। नेता संगठन का इंजन होता है। उसकी दृष्टि गति एवं बढ़ना संगठन की वृद्धि की रफ्तार एवं दर

निश्चित करती है। नेतृत्व के क्षेत्र में उभरते नये आयाम नये युग में नेतृत्व की शैली एवं कार्य में आवश्यक परिवर्तनों को समाहित करते है। स्वयं को सिद्ध करने हेतु उसे निम्नलिखित लब्धियों (गुणकों) को धारण किये होना चाहिये।

11.11.1 **प्रेमलब्धि (गुणक)**—नेता को अपने आस–पास के व्यक्तियों के साथ प्रेम एवं पसंद का व्यवहार दिखाना चाहिये तथा इन लोगों का प्रेम प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये। यह नेता एवं अनुयायी के सम्बन्ध को मजबूत करता है।

11.11.2 **अहंकारहीनता के साथ भावात्मकलब्धि**—नेता समानों में प्रथम होता है उसे इस बात का कोई अहं नहीं रखना चाहिये तथा संतुलित एवं क्रियाशील बने रहने हेतु भावनात्मक रूप से मजबूत होना चाहिये।

11.11.3 **प्रतिकूलता लब्धि (गुणक)**—नेता को प्रतिकूलता लब्धि का गुण धारण करना चाहिये ये वे गुण है जो व्यक्ति को विषम एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में शांत एवं संतुलित बनाये रखता है। सामान्य परिस्थितियों में कोई भी व्यक्ति निष्पादन कर सकता है किंतु केवल सख्त व्यक्ति ही सफल होते है। सख्त से अभिप्राय मानसिक रूप मनोवैज्ञानिक रूप से मजबूत व्यक्ति से है।

11.11.4 **साहस लब्धि**—नेता वह होता है जो पहल करे तथा इस हेतु साहस आवश्यक है। साहस निर्णय लेने हेतु आगे आने की निर्णयों को लागू कराने की तासमस्त सम्बन्धित एवं संदर्भित लोगों का सहयोग लेने की भावना है। नेता आगे रहकर (मोर्चे से) नेतृत्व करता है। वह दल का भाग्य निर्माता होता है।

11.11.5 **उद्यमिता लब्धि**—नेता, नेता होता है क्योंकि वह नेतृत्व करता है। उसे उद्यमिता गुणक अवश्य धारण किये होना चाहिये। वह इतिहास का निर्माण करता है तथा मानव इतिहास में अपना नाम अंकित करा लेता है। यह गुणक व्यक्ति की जोखिम वहन की क्षमता (योग्यता) से मापा जाता है। व्यावसायिक जगत में ऐसे नेताओं को उद्यमी कहा जाता है।

11.11.6 **शोध लब्धि**—नेता में शोध की प्रवृत्ति अवश्य होनी चाहिये क्योंकि शोध प्रवृत्ति नेता को पहल करने एवं रचनात्मक होने हेतु सक्षम (तैयार) बनाती है। यह अलग होने (विशेष होने) कार्यों को अलग ढंग से विशेष (अर्तमनव) ढंग से करने की शक्ति प्रदान करती है। शोध पात्रता (काबिलियत)/गुण विश्लेषण योग्यता एवं तथ्यों के ठोस अभिनिर्णय में निहित होती है शोधकर्ता क्या? क्यो? कब? कहां? तथा कैसे का उचित उत्तर प्रदान करता है।

नेतृत्व सतत प्रगतिशील (बढ़ने वाली) संकल्पना है। नयी–नयी संकल्पनाएं नेतृत्व के व्यवहार (अनुशीलन) हेतु विकसित हो रही है। किंतु यह स्वीकार करना होगा कि नेतृत्व महज एक सिद्धांत (संकल्पना) नहीं वरन एक कार्य (कार्य प्रणाली) है व्यवहार तथा सम्बन्ध आधारित गतिविधि (कार्य) है।

नेतृत्व उचित एवं व्यवहारिक (प्रासंगिक) (सदा एवं सर्वदा) होने तथा क्षमता के साथ प्रतिक्रिया शील होने में निहित होता है। अच्छे नेता महज संसूचित (संदेश प्रेषण) नहीं करते वरन प्रदर्शन करते है (दर्शाते/निरूपित) तथा रूपांतरित करते है। वर्तमान में नेतृत्व रूपांतरिणीय नेतृत्व है। नेतृत्व का प्रधान मूल तत्व दृष्टिकोण को साझा करने एवं सम्बन्ध स्थापित कर दल के सदस्यों को प्रभावित कर नेताओं के उद्देश्यों को पूर्ण करना है। यहां साक्षा दृष्टिकोण से अभिप्राय विचारों, उद्देश्यों

लक्ष्यों, प्रक्रियाओं एवं परिणाम (लाभ फायदा) को साझा करने से है। यह सफलता के साक्षा करने को समाहित करता है। एक अच्छा नेता सफलता का श्रेय अपने समस्त दल सदस्यों को देता है तथा कमियों एवं अकेले जिम्मेदारी स्वयं के ऊपर लेता है।

## 11.12 नेता एवं प्रबंधक के मध्य अंतर

कुछ व्यक्ति नेता एवं प्रबंधक को पर्यायवाची मानते है किन्तु दोनों विपरीत सिद्धांत (संस्थान) है।

वे दोनों चाहते है कि कार्य हो किन्तु दोनों की प्रक्रिया एवं कार्य पद्धति बहुत अलग (भिन्न) है। कुछ प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित ढंग से वर्गीकृत किया जा सकता है :

| अंतर का आधार | न्ेता | प्रबंधक |
|---|---|---|
| 1. अर्थ | नेतृत्व लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु प्रेरक शक्ति है। | प्रबंध कार्य करवाने का एक प्राधिकार है। |
| 2. क्षेत्र | नेतृत्व नेता, अनुयायियों का सम्बन्ध है। नेतृत्व इसी सम्बन्ध पर टिकी रहती है। | प्रबंध नियोजन, सांगठनिकरण निर्देशन एवं नियंत्रण है। प्रबंध प्रक्रियाओं पर आधारित होता है। |
| 3. प्राधिकार | नेता की सत्त (प्राधिकार) औपचारिक होती हैं क्योकि यह अनुयायियों की स्वीकृति पर आधारित होती है। | प्रबंधक एक वैधानिक सत्त होती (प्राधिकार) है। |
| 4. शिक्षा | नेतृत्व हेतु किसी औपचारिक शिक्षा की आवश्यकता नहीं होती है। | प्रबंधक विभिन्न प्रबंध शैक्षणिक संस्थानों में शिक्षण द्वारा बनाये (तैयार) किये जाते है। |
| 5. स्थायित्व | नेतृत्व अति गत्यात्मक कभी स्थायित्व न रख्ने वाली सतत परिवर्तनशील होती है। | प्रबंध सामान्यतः स्थायित्वपूर्ण होता है। |
| 6. संरचना | नेतृत्व तुलनात्मक रूप से लोचशील सिद्धांत (संकल्पना) है। नेता संगठित एवं असंगठित दोनों ठंग से कार्य कर सकता है। | प्रबंध एक दृढ़ एवं अल्पतर लोचशील सिद्धांत हैं। सामान्यतः (प्रायः) यह संगठित ढंग से कार्य करता है। |
| 7. सांगठनिक वातावरण | नेता संगठन के वातावरण के परिवद्रन हेतु कार्य | प्रबंधक सांगठनिक वातावरण के अनुरूप |

| | | |
|---|---|---|
| | करता है तथा यह परिवर्तन भले के लिये होता है। | ढलने (अंगीकार करने) का प्रयत्न करते है। |
| 8. प्रभुत्व | समस्त नेता प्रबंधक होते है तथा विश्वास एवं आत्मविश्वास के द्वारा उद्देश्य प्राप्ति में (कार्य कराने में) सफल होते है। | समस्त प्रबंधक नेता नहीं होते, वे कार्य करा सकते है किंतु हो सकता है कि व्यक्तियों का वश्वास एवं न्यास (भरोसा) न जीत पाये। |

## 11.13 सारांश

नेतृत्व एक गुण है जो किसी मनुष्य को नेतृत्व करने अगुवाई करने तथा यह सिद्ध करने हेतु कि वह समानों में प्रथम है समर्थ (सक्षम) एवं सशक्त बनाती है। नेता पैदा नहीं होते वरन बनाये जाते है। नेतृत्व के कुछ निश्चित गुण होते है तथा कोई भी व्यक्ति इन गुणों को धारण करने पर नेता बन सकता है। नेता वह होता है जो नेतृत्व करे अनुकरणीय तथा पथ प्रदर्शक दोनों की भांति व्यवहार करे तथा अनुयायियों (व्यक्तियों) को ऐच्छिक दिशा में बढ़ने को अभिप्रेरित करत है। नेता अपने अनुयायियों को उन कार्यों हेतु प्रभावित कर जो वे अन्यथा (इसके अभाव में) न कर पाते चमत्कार कर सकता है। नेता एवं नेतृत्व के अनेक प्रकार एवं शैलियां है। व्यक्ति एवं संगठन आवश्यकतानुसार इनमें में किसी को भी चुन सकते है। नेता प्रबंधक से भिन्न होता हैं प्रबंधक कार्यों मुखी (कार्य केन्द्रित) तथा नेता व्यक्ति उन्मुखी होता है। अतः अधिक प्रभावी होता है। प्रबंधकत्व एक पद (स्थिति) सम्बन्धित सत्त (प्राधिकार) होता है जबकि नेतृत्व पारस्परिक स्वीकृति का गुण होता है। प्रबंधन एक औपचारिक सम्बन्ध है तथा मूल्यों के संरचनात्मक समुच्चय पर आधारित होता है जबकि नेतृत्व हृदय से जुड़ सम्बन्ध होता है। अंततः नेतृत्व समूह लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु उत्साहपूर्ण एवं स्वेच्छा से कार्य करने हेतु व्यक्तियों के व्यवहार प्रवृत्ति गतिविधि तथा निष्पादन को प्रभावित करने की शक्ति है। नेता विनाशी (परिवर्तनशील) होते है किन्तु नेतृत्व अनादि (अनन्त, अपरिवर्तन शील) है, नेता क्रियात्मक (कार्यात्मम/कर्यानुसार) होते हैं किन्तु नेतृत्व सार्वभौमिक है, नेता बहुत (अनेकों) हैं, किंतु नेतृत्व एक है।

## 11.14 शब्दावली

**नेता.**—नेता वह व्यक्ति है जो किसी समूह अथवा संगठन को नियंत्रित या नीत करता है।

**नेतृत्व की अबंध शैली.**—नेतृत्व की इस शैली में निर्णयन के समस्त अधिकार एवं शक्तियाँ पूर्णतः कार्मिको (कर्मचारियों) को प्राप्त होते है।

**प्रबंधक.**—प्रबंधक वह व्यक्ति है जो एक संगठन अथवा स्टाफ समूह के नियंत्रण अथवा प्रशासन हेतु उत्तरदायी होता है।

## 11.15 बोध प्रश्न

A. रिक्त स्थान की पूर्ति करे :

1. ......................अन्य के व्यवहार को प्रभावित करने की प्रक्रिया है।
2. ...................... नेता वे नेता होते है। जो अपने दल के सदस्यों की सहायता से कार्य सम्पादित करवाते है।
3. ......................निरंकुश नेतृत्व शैली में नेता अनुयायियों को महत्व देता है, उनकों उनके कार्य का पुरस्कार देता है तथा शक्ति के उत्पीड़क उपयोग से बचता है।
4. ......................नेतृत्व सिद्धांत नेता की कार्य–पद्धति पर आधारित होता है।

## 11.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1) नेतृत्व (2) व्यवहार (कार्यवाही) (3) उदार (सद्भावपूण) (4) व्यवहार

## 11.17 स्वपरख प्रश्न

1. नेतृत्व से आप क्या समझते है?
2. व्यावसायिक संगठन में नेतृत्व की आवश्यकता का औचित्य स्पष्ट करिये।
3. प्रभावी नेता के विभिन्न गुणों का वर्णन कीजिये।
4. नेतृत्व की विभिन्न शैलियों का वर्णन कीजिये।
5. नेता के विभिन्न प्रकार का वर्णन कीजिये।
6. नेतृत्व के लक्षण मूलक सिद्धांत का उल्लेख कीजिये।
7. निरंकुश तथा प्राधिकार खांटी नेता के मध्य अंतर स्पष्ट कीजिये।
8. नेता एवं प्रबंधक में मध्य अंतर बताइये।
9. नेतृत्व परिस्थिति सिद्धांत का वर्णत कीजिये।
10. आप क्या अनुभव करते है– "नेता जन्मते है या बनाये जाते है"?

## 11.18 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Basil Douglas C.1 Leadership skills for executive action American management Association New York
2. Effective Managerial Leadership AMACOM, Newyork
3. Mayo Elton The Human problem of an Industrial circulation
4. Macmillan Publishing co. inc. Newyork

## इकाई 12 अभिप्रेरणा

**इकाई की रूपरेखा**

12.1 प्रस्तावना
12.2 अभिप्रेरणा का अर्थ
12.3 अभिप्रेरणा की परिभाषा
12.4 अभिप्रेरणा की विशेषतायें
12.5 अभिप्रेरणा की आवश्यकता एवं महत्व
12.6 अभिप्रेरणा को प्रभावित करने वाले तत्व (घटक)
12.6.1 मौद्रिक घटक
12.6.2 अमौद्रिक घटक
12.7 अभिप्रेरणा के सिद्धांत
12.7.1 X सिद्धांत
12.7.2 Y सिद्धांत
12.7.3 Z सिद्धांत
12.7.4 मास्लों का आवश्यकता पद सोपान सिद्धांत
12.7.4.1 आवश्यकता पद सोपान की मान्यताए
12.7.4.2 मॉस्लों के आवश्यकता पद सोपान सिद्धांत का मूल्यांकन
12.7.5 हर्जवर्ग का हाइजीन (स्वास्थ्य विज्ञान) सिद्धांत
12.8 अभिप्रेरणा के प्रकार
12.9 सारांश
12.10 शब्दावली
12.11 बोध प्रश्न
12.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
12.13 स्वपरख प्रश्न
12.14 सन्दर्भ पुस्तकें

**उद्देश्य**

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- अभिप्रेरणा के अर्थ एवं प्रकृति को परिभाषित कर सकें।
- अभिप्रेरणा की भूमिका एवं महत्व का वर्णन कर सकें।
- अभिप्रेरणा के विभिन्न सिद्धांतों का वर्णन कर सकें।
- अभिप्रेरणा की तकनीक एवं विधियों का वर्णन कर सकें।

### 12.1 प्रस्तावना

व्यक्ति कार्य करने को अभिप्रेरित होते है, इसलिये कार्य करते है। अभिप्रेरणा एक संकल्पना है, जो दो प्रमुख, प्रेरक एवं क्रिया पर आधारित होती है । हम सभी अपने प्रयोजन को सिद्ध करने अपने लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये कार्य करते है। अभिप्रेरणा एक प्रेरक शक्ति है जो हमें संचालित करती है। संचालन करना, निर्देशन तथा भक्ति (प्रार्थना) निष्ठा, तथा जुड़ाव के साथ वचनबद्धता आदि अभिप्रेरणा के अन्य चर है। अभिप्रेरणा एक उछीपन शक्ति हैं जो व्यक्तियों को पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु कार्य करने को तैयार करता है।

## 12.2 अभिप्रेरणा का अर्थ

प्रबन्ध कार्य कराने की कला है तथा अभिप्रेरणा उसे करने की तकनीक है। अभिप्रेरणा किसी मानव की पूर्व निर्धारित (ऐच्छिक) लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु तैयारी की दशा को दर्शाती है तथा तैयारी की मात्रा/दशा को प्रेरित करने वाली शक्तियों के प्रवृत्ति ओर संकेत्रण को निश्चित करती है। अभिप्रेरणा एक प्रेरणात्मक प्रक्रिया है जैसा कि पहले कहा गया है कि लोग कार्य करते है क्योंकि वे कार्य करने को अभिप्रेरित होते है। यह अभिप्रेरणा अंतः अथवा बाँह्य दोनो प्रकार के ढंग से आ सकता है। वे कार्य करते है क्योंकि वे कार्य करने को पठन करना अनुभव करते है तथा यह अनुभव उत्पन्न करने हेतु अभिप्रेरणा आवश्यक है।

अभिप्रेरणा एक द्विपक्षीय सिक्का है। सिक्के के एक ओर प्रेरक (अभिप्रेरक/हेतु) है तथा दूसरी ओर क्रिया है। अभिप्रेरणा शब्द अभिप्रेरक शब्द से लिया गया है जो एक मानव को कार्य करने को तैयार करता है।

## 12.3 अभिप्रेरणा की परिभाषा

विभिन्न प्रबंध विशेषज्ञों ने अभिप्रेरणा को अलग–अलग ढंग से परिभाषित किया है ।

विलियम जी. स्काट के अनुसार, अभिप्रेरणा ऐच्छिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु मनुष्यों को कार्य करने को प्रेरित करने की प्रक्रिया है।

मोड के शब्दों में, अभिप्रेरणा को प्रयत्नों को सांगठनिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु रखने की इच्छा के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

अभिप्रेरणा क्रिया हेतु वास्तविक शक्ति है। यह मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जो उद्देश्य निर्देशन एवं व्यवहार को प्रभावित करती है। अभिप्रेरणा को किसी को ऐच्छिक कार्य श्रृंखला प्राप्त करने हेतु प्रेरित/उछीपित करने की क्रिया के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है। यह ऐच्छिक प्रतिक्रिया को प्राप्त करने हेतु सही/उपयुक्त बटन (घुण्डी) को दबाने के समान है। लिकर्ट के अनुसार, अभिप्रेरणा प्रबन्ध का हृदय/सार/मर्म है।

## 12.4 अभिप्रेरणा की विशेषताएँ

अभिप्रेरणा की प्रमुख चारित्रिक विशेषतायें निम्नलिखित है।

1. अभिप्रेरणा प्रबंध का प्रमुख कार्य है क्योंकि प्रबंध अपने आप में सम्पूर्णतया कार्य कराने की कला है।
2. अभिप्रेरणा एक सतत प्रक्रिया है।
3. अभिप्रेरणा एक जटिल कार्य है।
4. अभिप्रेरणा द्विभागीय प्रक्रिया है, क्योंकि अभिप्रेरणा तभी अभिप्रेरित कर सकता है जब अन्य पक्ष स्वीकार करने व प्रतिक्रिया करने को तैयार/तत्पर हो।
5. अभिप्रेरणा कार्य–संतुष्टि से भिन्न है।
6. अभिप्रेरणा बहुयुक्ति (बहुयोजना) क्रिया है।
7. अभिप्रेरणा मौखिक एवं अमौखिक दोनों प्रकार के हो सकते है।
8. अभिप्रेरणा एक वैक्तिक गुण (भाव विशेषता) है।
9. अभिप्रेरणा एक मनोवैज्ञानिक संकल्पना है।
10. अभिप्रेरणा एक प्रणालीकृत (प्रणाली आधारित) कार्य है।

11. अभिप्रेरणा गुणक एवं शक्ति वर्धक (उर्जा वर्धक) बल है।
12. अभिप्रेरणा सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों हो सकता है। कई बार (कई दशा में) पुरस्कार अभिप्रेरणा सिद्ध होते है, किन्तु कुछ दशाओं में दण्ड या दण्ड का भय भी अभिप्रेरणा हो सकता है।

## 12.5 अभिप्रेरणा की आवश्यकता एवं महत्व

निष्पादन = निपुलता (दक्षता) + अभिप्रेरणा करित इच्छा यह सूत्र जीवन में अभिप्रेरणा की आवश्यकता को न्याय संगत सिद्ध करता है।
अभिप्रेरणा प्रबंध का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य हैं। अभिप्रेरणा की मात्रा कार्मिकों (श्रमिकों) की उत्पादकता एवं संगठन की लाभदायकता को प्रभावित करती है। अभिप्रेरणा की महत्ता को निम्नलिखित बिंदुओं से तर्क संगत किया जा सकता है।

1. उच्च दक्षता;
2. श्रेष्ठतर निष्पादन;
3. अनुपस्थिति–प्रवृत्ति तथा कर्मचारियों के नौकरी (सेवा) छोड़ने को न्यून करता है।
4. मनोबल को उन्नत करता है,
5. संसाधनों का प्रभावी संदोहण;
6. श्रेष्ठतर औद्योगिक सम्बन्ध;
7. कर्मचारियों के मध्य आपसी संबद्धता (आत्मीयता) की भावना को बढ़ाती है;
8. अल्प पर्यवेक्षण की आवश्यकता;
9. सांगठनिक उद्देश्यों की प्राप्ति;
10. व्यवसाय की छवि को सुंदर/उन्नत करती है।

## 12.6 अभिप्रेरणा को प्रभावित करने वाले घटक

अभिप्रेरणा मनोवैज्ञानिक संवृत्ति है। किसको क्या लाभकारी होगा यह पूर्णतः व्यक्तिगत विषय है। हालांकि अभिप्रेरणा घटकों को दो श्रेणियों मौद्रिक एवं अमौद्रिक में वर्गीकृत किया जा सकता है।

**12.6.1 मौद्रिक घटक**—वेतन भत्ते, अधिलाभ, अनुलाभ इत्यादि मौद्रिक घटक हैं। किसी मानव को मुद्धा अथवा मुझ सममूल्य से अधिक कुछ भी अभिप्रेरित नहीं कर सकता है।

**12.6.2 अमौद्रिक घटक**—कार्य–शीर्षक, प्रतिष्ठा सराहना, कार्य सुरक्षा, कार्य–समृद्धिकरण, हार्दिक/मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध कर्मचारियों के कल्याण, श्रेष्ठतर कार्य दशाएँ, एवं उच्च मनोबल इत्यादि अ–मौद्रिक अभिप्रेरक तत्व है।

## 12.7 अभिप्रेरणा के सिद्धांत

अभिप्रेरणा के विविध सिद्धांतां को विभिन्न प्रबंध शास्त्रियों एवं विचारकों ने अपने अपने मतानुसार प्रतिपादित किया है। उनमें से कतिपय प्रमुख सिद्धांत निम्नलिखित है।

**X सिद्धांत, Y सिद्धांत एवं Z सिद्धांत**

प्रो0 डगलस मैक्ग्रेगर ने अपने पुस्तक द ह्यूमन साइड ऑफ एण्टरप्राइड में अभिप्रेरणा के दो सिद्धांतों X सिद्धांत एवं ल सिद्धांत को प्रतिपादित किया है।

**12.7.1 X सिद्धांत**—यह सिद्धांत नाकारात्मक अभिप्रेरणा पर आधारित है तथा मानव के नकारात्मक विचारों पर विश्वास करता है। यह सिद्धांत मानता है कि मानव प्रकृति से निष्क्रिय होता है तथा उसे कार्य हेतु तैयार/तत्पर मात्र उचित पर्यवेक्षण कड़ी सतर्कता तथा कठोर अनुशासन से ही किया जा सकता है। कर्मचारी/कामगार कार्य खोने के भय, अपनी स्थिति खोने के भय तथा कार्य व वेतन में कटौती के भय से कार्य करते है।

**12.7.2 Y सिद्धांत**— Y सिद्धांत, X सिद्धांत के विपरीत सिद्धांत है। ल सिद्धांत पर विश्वास करता है, कि मनुष्य सकारात्मक होता है, वह कार्य करना चाहता है। उसे उचित कार्य की दशाएं एवं अवसर प्रदान किया जाना चाहिये तभी वह परिणाम दे पायेगा। यह अभिप्रेरणा का सकारात्मक उपागम/अभिगम है तथा अभिप्रेरणा की वास्तविक संकल्पना पर आधारित है।

**12.7.3 Z सिद्धांत**— यह सिद्धांत प्रो० विलियम आडेची द्वारा विकसित किया गया है तथा मानवीय सम्बन्ध एवं सांगठनिक व्यवहार पर आधारित है।

Z सिद्धांत विश्वास व उन्मुक्तता सहयोग नियोक्तियों के कार्य मुखी दर्शन कर्मचारियों की वचनबद्धता एवं सम्मिलितीकरण की मात्रा पर विश्वास करता है। Z सिद्धांत प्रबंध की जापानी संकल्पना पर आधारित है जो शेष विश्व में कार्य नहीं कर सकता है। क्योंकि जापान में अति–विशेष कार्य–दशायें प्रचलन में है यथा अति–अनौपचारिक सांगठनकि ढाँचा (स्तर) जीवन पर्याप्त रोजगार एक स्थायी कार्यकारी वातावरण।

**12.7.4 मास्लो का आवश्यकता पद–सोपान सिद्धांत**—महान वैज्ञानिक मास्लो ने अभिप्रेरणा के आवश्यकता पद सोपान सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। मास्लो ने आवश्यकताओं को पाँच प्रकारों में विभाजित किया है। (पदानुक्रम के अनुसार)

(1) भौतिक आवश्यकतायें अथवा शारीरिक आवश्यकतायें;
(2) सुरक्षा आवश्यकतायें;
(3) सामाजिक आवश्यकताये;
(4) प्रास्थिति अथवा अंह आवश्यकताये;
(5) आत्म–संभवा आवश्यकताये;

**(1) शारीरिक आवश्यकतायें**—ये बुनियादी (आधारभूत) आवश्यकताये होती है जो जीवन निर्वाह हेतु अत्यावश्यक होती है। यथा भोजन, वस्त, मकान (छत)।

**(2) सुरक्षा आवश्यकतायें**—सुरक्षा मनुष्य की अगली प्राकृतिक आवश्यकता है। शरीर की रक्षा एवं सुरक्षा, कार्य की रक्षा एवं सुरक्षा, जोखिमों के विरुद्ध बीमा, वृद्धावस्था एवं प्रतिकूल दिनों हेतु प्रावधान इत्यादि सरुक्षा आवश्यकता के प्रमुख रूप है।

**(3) सामाजिक आवश्यकतायें**—मानव सामाजिक प्राणी है तथा वह सामाजिक स्वीकृति/पहचान मित्रता तथा समूह स्वीकृति चाहता है।

**(4) प्रास्थिति अथवा अहं आवश्यकतायें**—अहं सम्बन्धी आवश्यकताये सामाजिक आवश्यकताये पूर्ण होने के पश्चात उत्पन्न होती है। आत्म–सम्मान स्वाभिमान, तथा दूसरों के प्रति सम्मान को सम्मान आवश्यकता के रूप में परिभाषित किया जाता

है। सम्मान आवश्यकतायें अहं, प्रास्थिति, स्थिति, महत्व तथा प्रशंषा को समाहित करती है।

**(5) आत्म संभव आवश्यकतायें**—आत्मसंभवा आवश्यकतायें समस्त आवश्यकताओं में सर्वोच्च होती है। यह व्यक्ति की दक्षता, योग्यता तथा क्षमता जो वह बनने के योग्य है वह बनाने हेतु अधिकतम उपयोग को सम्मिलित करता है। यह आत्म–अनुभूमि की दशा है। आवश्यकता पद सोपान का पिरामिड निम्न प्रदर्षित है।

**चित्र 13.1 आवश्यकता पद सोपान की मान्यताएं**

**12.7.4.1 आवश्यकता पद सोपान की मान्यताएं—य**ह सिद्धांत निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है।

(1) मनुष्य अभाव ग्रस्त प्राणी है। उसकी आवश्यकतायें एवं इच्छायें अंतहीन एवं अविरत है। एक इच्छा पूरी होने के पश्चात दूसरी अन्य इच्छा जन्मती है।

(2) संतुष्ट आवश्यकता अभिप्रेरित नहीं करती वरन अभिप्रेरणा असंतुष्ट आवश्यकताओं में होता है/रहता है।

(3) आवश्यकतायें पद सोपान में हो सकती है।

(4) व्यक्तियों की जरूरत के अनुसार आवश्यकता पद सोपान भिन्न व्यक्तियों के लिये भिन्न भिन्न हो सकती है।

(5) आवश्यकताओं के पद सोपान के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति के लिये अभिप्रेरणा उपकरण एवं तकनीक भिन्न भिन्न होते है।

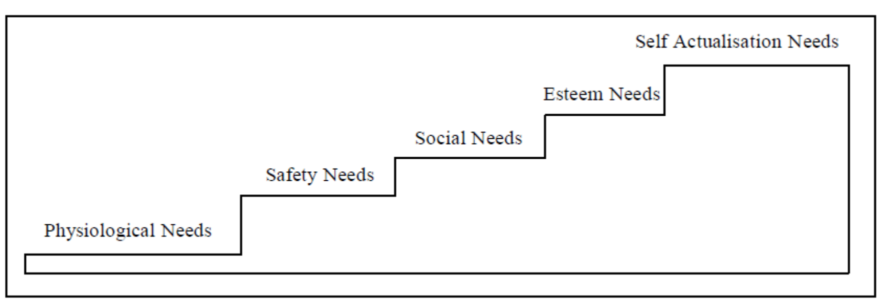


चित्र 13.2 मॉस्लों के आवश्यकता पद सोपान सिद्धांत का मूल्यांकन

**12.7.4.2 मॉस्लों के आवश्यकता पद सोपान सिद्धांत का मूल्यांकन**—यह अभिप्रकरण का सर्वाधिक प्रशंषित एवं स्वीकृत सिद्धांत है। यह सिद्धां निम्न स्तर पर कार्यरत कामगारों पर लागू होता है। मॉस्लों के सिद्धांत के अनुसार मनुश्य

असंतुश्ट आवश्यकताओं की पूर्ति से अभिप्रेरित होते है। इन पाँच आवश्यकताओं में आवश्यकताओं की वरीयता भिन्न–भिन्न कामगारों की दशा में भिन्न–भिन्न होती है।

**12.7.5 हर्जबर्ग का अभिप्रेरणा का आरोग्य प्रतिमान**—हर्जबार्ग एवं उनके सहयोगियों द्वारा कर्मचारियों से साक्षात्कार के आधार पर अभिप्रेरणा की विषय वस्तु (अवयव) के अध्ययन हेतु एक शोध संचालित किया गया। अध्ययन ने निष्कर्ष दिया कि दो प्रकार के घटक, अभिप्रेरक घटक एवं आरोग्य घटक, होते है। अभिप्रेरणा घटक कर्मचारियों की विशेषज्ञ बनने में सहायता करते है।

इस सिद्धांत को द्विघटक सिद्धांत भी कहा जाता है, तथा यह दो विषय–वस्तु (प्रकरण) संतुष्टि (अभिप्रेरणा) तथा असंतुष्टि (आरोग्य) पर आधारित है।

हर्जबर्ग के अनुसार कार्य संतुष्टिकारक तत्व उन तत्वों से पूर्णतः पृथक एवं भिन्न है जो कार्य असंतुष्टि को प्रदान पूर्णतः पृथक एवं भिन्न है जो कार्य असंतुष्टि को प्रदान करती है।

**आरोग्य घटक**—इन्हे भरण–पोषण (निर्वाह) घटक भी कहते है, क्योंकि ये कार्य में संतुष्टि एवं निष्पादन को बनाये रखते है। इन घटकों की उपस्थिति प्रत्यक्षतः उचित निष्पादन हेतु अभिप्रेरित नहीं करती किंतु इनकी अनुपस्थिति कर्मचारियों को असंतुष्ट करती है। उच्च स्तर की संतुष्टि सुनिश्चित कारक घटकों को अभिप्रेरक घटक कहा जाता है।

आरोग्य घटक कर्मचारी के मानसिक स्वास्थ्य को सहायता पहुँचातें है तथा निम्नलिखित को समाहित करते है।

(1) व्यक्तिगत जीवन
(2) वेतन
(3) कार्यकारी दशाएं
(4) कार्य सुरक्षा
(5) कम्पनी की नीति व प्रबंध
(6) स्वयं के साथ सामंजस्य
(7) संगठन में कार्यरत अन्य व्यक्तियों के साथ सामंजस्य
(8) कर्मचारी की स्थिति एवं पद

अभिप्रेरणा तत्व (घटक) उच्च संतुष्टिकरण होते है तथा निम्नलिखित को समाहित करते है;

(1) स्वयं कार्य
(2) जीवन कार्य की गुणवत्ता;
(3) जीवन–कार्य संतुलन;
(4) वृद्धि की संभावना
(5) उपलब्धि एवं पहचान;
(6) वृद्धि एवं उन्नति
(7) कार्य संवर्द्धन इत्यादि।

**ऑस्लों एवं हर्जबर्ग सिद्धांत की तुलना**—इन दोनों सिद्धांतों में कुछ समानताएं एवं कुछ भिन्नताएं है तथापि दोनों सिद्धांत अभिप्रेरणा के अध्ययन में युगांतकारी महत्व रखती है। कभी–कभी ये एक दूसरे की पूरक होती है।

**ऑस्लों एवं हर्जबर्ग के अभिप्रेण सिद्धांत में अंतर**

| अन्तर का आधार | आस्लों का सिद्धांत | हर्जबर्ग का सिद्धांत |
|---|---|---|
| 1. आधार | आवश्यकाओं के पद सोपान पर अवस्थित | संतुष्टिकारक एवं असंतुष्टिकारक घटकों पर आधारित |
| 2. आवश्यकताओं का क्रम | शारीरिक आवश्यकता से आत्म–संभव | ऐसा कोई क्रम नहीं |
| 3. प्रकृति | वर्णनात्मक प्रकृति का सिद्धांत | निर्देशात्मक प्रकृति |
| 4. सिद्धांत की विषय–वस्तु | केवल असंतुष्ट आवश्यकतायें मनुष्य को अभिप्रेरित करती है। | पूर्ण या संतुष्ट आवश्यकता मनुष्य को अभिप्रेरित करती है। |
| 5. लागू होने का क्षेत्र | मास्लो का सिद्धांत अभिप्रखीय समस्या के सामान्य विचारधारा को समाहित करता है। | यह सिद्धांत समस्या का सुक्ष्म अवलोकन करता है। |
| 6. क्षेत्र | मास्लो का सिद्धांत भी कार्यरत समस्त मानवो पर लागू होता है। | यह सिद्धांन उन लोगों पर लागू होता है जिनकी निम्नस्तरीय आवश्यकतायें संतुष्ट हो चुकी है। |

## 12.8 अभिप्रेरणा के प्रकार

निम्नलिखित प्राकर के अभिप्रेरणा हो सकते है;

(1) **वित्तीय अभिप्रेरणा**—वित्त प्रमुख अभिप्रेरक बल है। किसी रूप में प्रदत्त कोई भी मुद्दा अभिप्रेरणा का कारक होती है।

(2) **गैर–वित्तीय अभिप्रेरणा**—प्रशंशा व सराहना के शब्द, मनुष्य के अंशदान की मानयता, कार्य–संवद्धन अधिकारों का प्रत्यायोजन ये सभी कर्मचारियों के अभिप्रेरणा के साधन है।

(3) **सकारात्मक अभिप्रेरणा**—सकारात्मक अभिप्रेरणा वित्तीय या गैर–वित्तीय रूप में हो सकता है। यह कर्मचारियों को प्रसन्नचित सम्मानित अनुभव कराता है। यह पारितोषिक आधारित होता है।

(4) **नकारात्मक अभिप्रेरणा**—यह अभिप्रेरणा मनुष्य में व्याप्त भय पर आधारित होता है। यह अभिप्रेरणा पूर्णतः दण्डात्मक होता है। व्यक्ति कार्य खोने के भय, विलंबम छंटनी, वार्षिक अभिवृद्धि के रूप में, पदोन्नति, स्थानांतरण इत्यादि भयों से युक्त होने पर कार्य करते है। यह दण्डमुखी होता है।

## 12.9 सारांश

अभिप्रेरणा निष्पादन की प्रधान आवश्यकता है, महज कर्मचारी इच्छा शक्ति एवं योग्यता मापने नहीं रखती वरन अभिप्रेरणा मायने रखता है। एक अच्छा अभिप्रेरणा संगठन में आश्चर्यजनक परिणाम दे सकता है। प्रभावी होने हेतु अभिप्रेरणा को उद्देश्यपरक, उत्पादक, सकारात्मक स्मतापरक, स्थायी एवं व्यापक होना चाहिये। प्रभावी रूप से कार्य करने हेतु अभिप्रेरणा में वित्तीय एवं गैर–वित्तीय प्रोत्साहन का न्यायपूर्ण मिश्रण होना चाहिये। अभिप्रेरणा की तकनीक अनेक प्रकार की होती है। अपनी आवश्यकता एवं बजट के आधार पर कोई अभिप्रेरणा तकनीक

का चयन कर सकता है। प्रबंध के कई सिद्धांत है किंतु सभी सिद्धांत व्यक्यिों को अपना शत–प्रतिशत देने हेतु अग्रसर करती है।

## 12.10 शब्दावली

**प्रेरणः** किसी घटना का कारक या कारण होना ।

**पद सोपानः** एक ऐसी प्रणाली जिसमें संगठन के या समाज के सदस्य एक सापेक्षिक स्थिति अथवा प्राधिकार के अनुसार श्रेणीकृत/श्रेणीबद्ध होते है ।

**आदर आवश्यकतायेंः** मानवीय इच्छाओं का आधार है। हम सभी दूसरों द्वारा स्वीकृत होगा एवं महत्व पाना चाहते है।

**आरोग्य घटकः** आरोग्य घटक के घटक होते है। जो व्यक्ति के कार्य के प्रकरण (परिस्थिति) तथा पर्यावरण का चरित्र–चित्रण करते है।

## 12.11 बोध प्रश्न

**रिक्त स्थान की पूर्ति करे :**

1. वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु व्यक्तियों के कार्य को उद्दीपित करने की प्रक्रिया ..................................कहलाती है
2. ..............................अभिप्रेरणा का सिद्धांत मानवीय सम्बन्ध एवं संगठनात्मक व्यवहार पर आधारित है
3. ..................................आवश्यकतायें किसी की दक्षता/कौशल के अधिकतम उपयोग की आवश्यकता को समाहित करती है।
4. ..................................को द्वि–घटकीय सिद्धांत के नाम से भी जाता जाता है। जो दो विपरीत प्रसंगों संतुष्टि एवं असंतुष्टि पर आधारि है।

## 12.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | अभिप्रेरणा | 2. | सिद्धांत |
| 3. | आत्म संभव | 4. | हर्जबर्ग का अभिप्रेरणा का आरोग्य सिद्धांत |

## 12.13 स्वपरख प्रश्न

1. अभिप्रेरणा क्या है?
2. अभिप्रेरणा एवं प्रेरक (प्रेरणा/प्रोत्साहन) में अंतर स्पष्ट करिये।
3. अभिप्रेरणा के विविध प्रकारों को बताइये।
4. ए.एच. मास्लों के आवश्यकता पद सोपान सिद्धांत का सार क्या है?
5. अभिप्रेरणा के मास्लों एवं हर्जबर्ग के सिद्धांत में अंतर स्पष्ट करियें
6. मैक्ग्रेगर के X एवं Y सिद्धांत के मध्य अंतर बताइये।
7. हर्जबर्ग केसिद्धांन्त में वर्णित आरोग्य घटक क्या है?
8. अभिप्रेरणा के Z सिद्धांत का वर्णन कीजिये।
9. किसी संगठन में प्रभावी अभिप्रेरणा हेतु क्या आवश्यक है?
10. X सिद्धांत की प्रमुख मान्यताओं का वर्णन कीजिये?
11. नकारात्मक अभिप्रेरणा क्या है? क्या आप अनुभव करते है, कि नकारात्मक अभिप्रेरणा कार्य करता है?

## 12.14 सन्दर्भ पुस्तकें


1. Chhabra T.N. Ahuja KK and Jain SP “Managing People at work”.
2. Dublin RobertHuman relations in Administration

3. Berman Frederice and John B. Miner : Motivation to manage at the top executive level .
4. Kafka , Vincent W. A new look at motivation
5. David A. Decanzo :Human Resource Management
6. Stephen P. Robbins
7. Maslow A HMotivation and Personality.
8. M.C Gregor DouglasThe Human side of Enterprises
9. Vroom Victor H work and Motivation.

# इकाई 13 पर्यवेक्षण

## इकाई की रूपरेखा


13.1 प्रस्तावना
13.2 पर्यवेक्षण का अर्थ एवं परिभाषा
13.3 पर्यवेक्षण की स्थिति
13.3.1 (A) पर्यवेक्षण एक मध्यस्थ के रूप में
13.3.2 (B) पर्यवेक्षण एक अधिकारी के रूप में
13.3.3 (C) पर्यवेक्षण व्यवहार विज्ञान के विशेषज्ञ के रूप में
13.4 पर्यवेक्षकों के कार्य
13.5 योग्य पर्यवेक्षक के गुण
13.6 सफल पर्यवेक्षण हेतु आवश्यक दक्षताएँ
13.7 पर्यवेक्षण के प्रकार
13.3.1 (A) अकाद्मिक पर्यवेक्षण
13.3.2 (B) सहयोगात्मक पर्यवेक्षण
13.3.3 (C) प्रशासनिक पर्यवेक्षण
13.8 पर्यवेक्षण के प्रभाव
13.9 सारांश
13.10 शब्दावली
13.11 बोध प्रश्न
13.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
13.13 स्वपरख प्रश्न
13.14 सन्दर्भ पुस्तकें


## उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- पर्यवेक्षण के अर्थ का वर्णन कर सकें।
- प्रबंधकीय प्रभावोत्पादकता में पर्यवेक्षण की भूमिका का वर्णन कर सकें।
- पर्यवेक्षण के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कर सकें।

## 9.1 प्रस्तावना

हम सभी भली–भांति जानते है कि व्यक्ति भय–मनोविज्ञान के कारण कार्य करने को अभिप्रेरित होते है। रोजगार, खाने का भय, वेतन कटौती का भय पदोन्नति तथा स्तर के अनुरूप न हाने की दशा में स्थानांतरण का भय कर्मचारियों (व्यक्तियों) को उचित ढंग से कार्य करने एवं योगदान देने को चुस्त/मुस्तैद करता है। यदि कोई यह देखने वाला न हो कि हम क्या कर रहे है तो यह हम लोगों को अति उचित ढंग से कार्य न करने को प्रलोभित (बहकाता) कर सकता हैं यह भावना कि आप देखे जा रहे है प्रत्येक को सतर्क रखता है। यह पर्यवेक्षण की आवश्यकता को न्याय संगत सिद्ध करता है।

निष्पादन की गुणवत्ता काफी हद तक पर्यवेक्षण की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। पर्यवेक्षण दो चरों का मिश्रण है;

1. उच्च एवं

2. दृष्टि (देखना)

पर्यवेक्षण अतिरिक्त सतर्कता की अवस्था है। पर्यवेक्षण व्यक्तियों को परामर्श देने जैसा है तथा जो व्यक्ति इस हेतु अधिकृत होता है, उसे पर्यवेक्षक अथवा अधिदर्शक कहते है। पर्यवेक्षण निरीक्षण के समान होता है। अतः पर्यवेक्षक को निरीक्षक भी सम्बोधित किया जा सकता है। पर्यवेक्षण, अधिदर्शन एवं निरीक्षण का भाव जीवन के प्रत्येक कदम पर प्रचलन में रहता है। वे लोग जो अपने ज्ञान, अनुभव, उम्र अथवा स्थिति के कारण सत्त (प्राधिकारी) होते है, वे अपने से छोटे तथा अधीनस्थों के कार्य को पर्यवेक्षित करते है।

## 13.2 पर्यवेक्षण का अर्थ एवं परिभाषा

प्रबन्ध के पदाधिकारियों का एक पद सोपान होता है। जिसमें प्रबंध के विभिन्न स्तर के अधिकारी व्यवस्थित होते है। निम्न स्तर के प्रबंधन के व्यक्ति का पर्यवेक्षण सम्बन्धित उच्च स्तर के व्यक्ति द्वारा किया जाता है। उदाहरणार्थ निम्न स्तर के प्रबंधन का कार्य मध्यम स्तर के प्रबंधन द्वारा तथा मध्यम–स्तर के प्रबंधन के कार्य का पर्यवेक्षण उच्च स्तरीय प्रबंधन द्वारा किया जाता है। अतः एक स्तर के प्रबंध को पर्यवेक्षिय तथा दूसरे को अधीनस्थ कहते है। यह पर्यवेक्षया की शास्त्रीय संकल्पना है। तकनीकी रूप से केवल प्राथमिक (आरंभिक/निचले स्तर) स्तर के पर्यवेक्षण के कार्य तक ही पर्यवेक्षण को सीमित किया गया है।

जो पर्यवेक्षण करते हैं वे पर्यवेक्षक कहलाते है। पर्यवेक्षक व्यवहार विज्ञान में विशेषज्ञ होते है तथा कर्मचारियों के व्यवहार एवं कार्य द्वारा (से) उनका अधिकतम पाने का कार्य (प्रयास) करते है। पर्यवेक्षण नियोजन संगठन निर्देशन एवं समन्वयन के कार्य को सम्मिलित करता हैं औपचारिक रूप से पर्यवेक्षण को संगठन के वरिष्ठ एवं कनिष्ठ सदस्यों के मध्य सम्बन्ध के रूप में परिभाषित किया जाता है। पर्यवेक्षण कनिष्ठों एवं वरिष्ठों के कार्य की मात्रा एवं गुणवत्ता के मूल्यांकन एवं अनुश्रवण से सम्बन्धित है। पर्यवेक्षण कार्य स्थल पर व्यक्तियों का अधिदर्शन है, उन्हें दखना तथा यह सुनिश्चित करना कि व्यक्ति संगठन के स्थान, नीतियों, कार्यक्रमों एवं प्रक्रिया के अनुसार कार्य कर रहे है। पर्यवेक्षण कार्य के दौरान अधीनस्थों के कार्य का प्रेक्षण है, तथा यह सुनिश्चित करता है, कि वे समय अनुसूची का पालन कर रहे है। अधीनस्थों को किसी प्रकार की कठिनाई या समस्या अनुभावित होती है, तब उस दशा में पर्यवेक्षक संकट मोचक की भांति कार्य करता है।

## 13.3 पर्यवेक्षक की स्थिति

पर्यवेक्षक उच्च प्रबंधन एवं कार्यबल के बीच की एक सर्वाधिक प्रमुख (महत्वपूर्ण) कड़ी होता है। उच्च प्रबंधक द्वारा निर्गत निर्देश पर्यवेक्षक के माध्यम से ही कार्मिकों (श्रमिकों) तक पहुँचते है, तथा इसी प्रकार कार्मिकों की परिवेदनाएँ उच्च प्रबंधक तक पर्यवेक्षक के माध्यक से ही पहुँचती है। वह प्रशासनिक प्रबंध का अधीनस्थ तथा कार्मिकों (श्रमिकों) का अधिकारी होता है। पर्यवेक्षक की स्थिति एवं कार्य निम्नलिखित है।

13.3.1 **(A) पर्यवेक्षण एक मध्यस्थ के रूप में**—जैसा कि पूर्व बधित है पर्यवेक्षक प्रबंधन एवं श्रमिकों (कर्मचारियों) के मध्य मध्यस्थ होता है। वह प्रबंध की इच्छाओं यथाः क्या किया जाना है, कैसे, कब, तथा किसके द्वारा किया जाना है, को

कामगारों तक पहुँचाता है (उन्हें सूचित करता है पर्यवेक्षक श्रमिकों (कामगारों) की इच्छाओं एवं अपेक्षाओं को उच्च प्रबंधन तक पहुँचाता है।

इच्छायें वेतन कार्य–दशाओं, श्रम–कल्याण, गतिविधियों सामाजिक सुरक्षा तथा अन्य विषयों से सम्बन्धित हो सकती हैं। वह उच्च निम्न एवं निम्न–उच्च संचार में सहायता करता हैं यद्यपि पर्यवेक्षक एवं अति–महत्वपूर्ण व्यक्ति होता है। किंतु उसं यह नहीं भूलना चाहिये कि वह महज (सिर्फ) एक कर्मचारी है जैसे कि अन्य हालाँकि वह सरपंच (वह आदमी जो दूसरों के ऊपर रखा गया हो) तथा अधिदर्शक होता है।

**13.3.2 (B) पर्यवेक्षण एक अधिकारी के रूप में**—पर्यवेक्षक संगठन के अधिकारी के रूप में पदवी (कार्यालय) धारण करता है। वह नियोजन, स्टाफिंग, निर्देशन एवं समन्वयन गतिविधियों से सम्बन्धित होता हैं वह प्रबंध के नियंत्रण प्रक्रिया का प्रमुख भाग होता है। वह एक अधिदर्शक होता है जो अधिदर्शन एवं पर्यवेक्षण करता है। वह अपने अनुभाग तथा उसमें कार्यरत व्यक्तियों का प्रभारी होता है।

**13.3.3 (C) पर्यवेक्षण व्यवहार विज्ञान के विशेषज्ञ के रूप में**—पर्यवेक्षक को व्यवहार विज्ञान का विशेषज्ञ होना आवश्यक है। उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह एक ऐसा विशेषज्ञ हो जाता है जो समस्या–समाधान योग्यता, संचार दक्षता, मतभेदों को मिटाने की कला, संघर्ष प्रबंधन समय प्रबंधन तथा तनाव प्रबंधन के गुणों को धारण करता हो।

## 13.4 पर्यवेक्षकों के कार्य

पर्यवेक्षक वह होता है जो पर्यवेक्षण करे तथा पर्यवेक्षण की प्रक्रिया में पर्यवेक्षक निम्नलिखित कार्यों को निष्पादित करता हैं।

1. वह कार्य सम्बन्धी आदेश एवं निर्देश निर्गत करता है।
2. वह यह सुनिश्चित करता है कि समस्त कार्य सम्बन्धित संसाधन कार्य–स्थल पर उपलबध है।
3. आवश्यकता की स्थिति में वह तकनीकी ज्ञान प्रदान करें।
4. वह समस्त अधीनस्थों के मध्य समूह भावना (दल–भावना) विकसित करता है तथा एक नेता की भाँति कार्य करता है।
5. वह अपने सहकर्मियों एवं अधीनस्थों को अभिप्रेरित एवं उनकी सहायता करता हैं ।
6. वह कार्मिकों (श्रमिकों) एवं प्रबंधन के मध्य मध्यस्थ का कार्य करता है। वह प्रबंध की इच्छाओं को कर्मचारियों को संसूचित करता है, तथा कर्मचारियों की इच्छाओं को प्रबंध को सम्प्रेषित करता है।
7. वह अपने श्रमिकों (कर्मचारियों) की परिवेदनाओं का तथा अपने अधीनस्थों की शिकायतों का संचलन करता हैं एवं दोनों के राहत (अनुतोष) हेतु उचित समाधान प्रदान करता है।
8. वह अपने समूह (दल) के सदस्यों के अनुश्रवक के रूप में कार्य करता हैं
9. पर्यवेक्षक एक नियोजक, संगठक, अभिप्रेरक मित्र, प्राज्ञ (दार्शनिक) एवं पथ प्रदर्शक की भाँति कार्य करता है।
10. वह अगली पंक्ति के प्रबंधक के रूप में कार्य करता है।

## 13.5 योग्य पर्यवेक्षक के गुण

सफलतापूर्वक कार्य करने हेतु पर्यवेक्षक में निम्नलिखित गुण अवश्य होने चाहिये।

1. निर्णय करने एवं निश्चय करने की योग्यता;
2. विश्वास दिलाने (राजी करने) की योग्यता;
3. रचनात्मकता
4. संगठन एवं व्यक्ति का ज्ञान होना (उपरी सतह से परे व्यक्तियों को जानना)
5. क्षमा (सहनशीलता) एवं धैर्य;
6. नेतृत्व गुण
7. विधिक प्रावधानों नियमों एवं विनियमों का ज्ञान
8. तकनीकी दक्षता (योग्यता)

## 13.6 सफल पर्यवेक्षण हेतु आवश्यक दक्षताएं (कौशल)

प्रभावी पर्यवेक्षक हेतु आवश्यक कौशल निम्नलिखित है :

1. उत्तम संदेशवाहक दक्षता (लिखने, बोलने एवं श्रवण की)
2. सौदेबाजी एवं पराक्रमण दक्षता
3. प्राथमिकता का निर्धारण एवं अभिनिर्णय योग्यता
4. शारीरिक एवं मानसिक दोनों की उपस्थिति
5. उत्तरदायित्व का वहन एवं श्रेय अन्य को देना
6. हिसाब देयता
7. व्यवहारिक (यर्थात) दृष्टिकोण अति वचनबद्धता तथा अधीनस्थों के ऊपर अतिरिक्त दबाव नहीं
8. संवेदनशीलता

## 13.7 पर्यवेक्षण के प्रकार

तीन प्रकार के पर्यवेक्षण हो सकते है :

13.7.1 (A) अकादमिक (शैक्षणिक) पर्यवेक्षण

13.7.2 (B) सहयोगात्मक पर्यवेक्षण

13.7.3 (C) प्रशासनिक पर्यवेक्षण

**13.7.1 (A) अकादमिक (शैक्षणिक) पर्यवेक्षण**—अकादमिक अथवा शैक्षणिक पर्यवेक्षण कनिष्ठों एवं अधीनस्थों की दक्षता, शिक्षण एवं ज्ञान के अकादमिक शैक्षणिक निर्धारण से सम्बन्धित है।

**13.7.2 (B) सहयोगात्मक पर्यवेक्षण**—सहयोगात्मक पर्यवेक्षण भावनात्मक प्रकृति का होता है तथा भावनात्मक आवश्यकताओं को समझने मानसिक एवं शारीरिक सहयोग एवं सहायता प्रदान करने से सम्बन्धित है।

**13.7.3 (C) प्रशासनिक पर्यवेक्षण**—पर्यवेक्षण का यह प्रकार वास्तविक अर्थ में पर्यवेक्षण है तथा कार्य एवं कर्मचारियों के अनुश्रवण, गुणवत्ता एवं गुणवत्ता नियंत्रण से सम्बन्धित है। प्रशासनिक पर्यवेक्षण प्रबंध की नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से सम्बन्धित होता है।

पर्यवेक्षण प्रबंध के प्राथमिक (मूलभूत) कार्यों से सम्बन्धित होता है। इसलिये पर्यवेक्षक प्रबंध के समस्त कार्यों यथाः नियोजन, सांगठनीकरण, स्टाफिंग, निर्देशन एवं नियंत्रण को सम्पादित करता है। पर्यवेक्षक का यह कर्तव्य है कि वह यह देखे कि कर्मचारी (श्रमिक) पूर्व निर्धारित निष्पादन एवं क्रियान्वयन के मानकों के अनुरूप

कार्य करें। पर्यवेक्षक को प्रबंध एवं श्रमिकों के मध्य श्रृंखला खूंटी (जोड़ने वाली कड़ी) के रूप में सिद्ध करना होता है।

## 13.8 पर्यवेक्षण के प्रभाव

पर्यवेक्षण की उचित मात्रा निम्नलिखित परिणाम दे सकती है :

1. उत्पादकता में वृद्धि
2. लाभदायकता में वृद्धि
3. संतुष्टिकारक कार्य–दशाएं फलतः उच्च मात्रा में कार्य–संतुष्टि
4. कर्मचारियों के मध्य अभिप्रेरण एवं उत्साह की उच्च मात्रा
5. उद्योग में उन्नत मानवीय सम्बन्ध;
6. अनुशासित वातावरण;
7. श्रेष्ठतर परिवेदना संचलन प्रक्रिया;
8. सटीक निष्पादन आगणन प्रणाली;
9. संगठन में उचित नियंत्रण;
10. प्रबंध का मानवीय चेहरा (मुख)

पर्यवेक्षण कार्य प्रबंध में इस प्रकार महत्वपूर्ण है। इसे प्रबंध का पर्याय कहा जाता है। पर्यवेक्षक अधिदर्शक एवं निरीक्षक दोनों नेता एवं प्रबंधक दोनों, मददकर्ता एवं सुविधा प्रदाता दोनों, नियोजक एवं मध्यस्थ दोनों, परामर्शदाता एवं प्रतिपालक (उपदेशक) दोनों, नियंत्रक एवं अभिप्रेरण दोनो होता है। पर्यवेक्षक की भूमिका बहु–विमीय एवं बहुदिशीय होती है।

## 13.9 सारांश

पर्यवेक्षण कुल मिलाकर प्रबंधक की कुल (समस्त) प्रभावोत्पादकता है। पर्यवेक्षक वह व्यक्ति होता है जो अपने अनुभाग के कार्य एवं अनुभाग में कार्यरत व्यक्तियों का प्रभारी होता है। पर्यवेक्षक की स्थिति प्रबंधन एवं कर्मचारियों के मध्य मध्यस्थ की भांति है। वह प्रबंध की भावनाओं को कर्मचारियों तक तथा कर्मचारियों की भावनाओं को प्रबंधन तक पहुचाता हैं वह संगठन की एक प्रमुख श्रृंखला कड़ी होता है।

संगठन में निगर्त की (उत्पादन) गुणवत्ता, औद्योगिक सम्बन्ध कार्य वातावरण, कार्य–संस्कृति, कार्य–पर्यावरण, तथा सांगठिनक प्रभावोत्पादक बहुत सीमा तक पर्यवेक्षण की गुणवत्ता एवं पर्यवेक्षक की दक्षता पर निर्भर करती है। उससे यह अपेक्षा होती है कि वह सभी को प्रसन्न रखे एवं शिकायतों को दूर करे। पर्यवेक्षण में निर्देशन, नियंत्रण, अभिप्रेरण, कर्मचारियों का परामर्श समस्याओं का सुधार तथा प्रभावी प्रशासन सम्मिलित होते है।

## 13.10 शब्दावली

**पर्यवेक्षण:** कार्य स्थल पर व्यक्तियों का अधिदर्शन है ।

**पर्यवेक्षक:** जो व्यवहार विज्ञान में विशेषज्ञ होते है तथा कर्मचारियों के व्यवहार एवं कार्य द्वारा (से) उनका अधिकतम पाने का कार्य (प्रयास) करते है।

## 13.11 बोध प्रश्न

**रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये—**

1. ......................... औपचारिक रूप से संगठन के वरिष्ठ एवं कनिष्ठ सदस्यों के मध्य सम्बन्ध के रूप में परिभाषित किया गया है।
2. .........................सुनिश्चित करता है कि कार्य–सम्बन्धी संसाधन कार्य–स्थल पर उपलब्ध है।
3. .......................पर्यवेक्षण भावनात्मक आवश्यकताओं को समझने, मानसिक एवं शारीरिक सहयोग एवं सहायता प्रदान करने से सम्बन्धित है।
4. पर्यवेक्षक प्रेक्षक एवं .............................दोनों होता है।

## 13.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | पर्यवेक्षण, | 2. | पर्यवेक्षक, |
| 3. | सहयोगात्मक, | 4. | निरीक्षक। |

## 13.13 स्वपरख प्रश्न

1. पर्यवेक्षण क्या है?
2. पर्यवेक्षण के कार्य को बताइये।
3. पर्यवेक्षण के सिद्धांत का वर्णन कीजिये।
4. औद्योगिक उद्यमों में पर्यवेक्षण का क्या महत्व है?
5. पर्यवेक्षण की स्थिति का वर्णन कीजिये।
6. उत्तम पर्यवेक्षक के गुणों का वर्णन कीजिये।
7. प्रभावी पर्यवेक्षण हेतु आवश्यक कौशल क्या–क्या है?
8. पर्यवेक्षक के कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व क्या है?

## 13.14 सन्दर्भ पुस्तकें


1. Essentials of Management: Josheph L. Massue, Prentiee Hall of India Put
2. Management Harold koonts and cyril Q Donnell *Me Graw* Hall
3. Management : Theory and practice of Management E most Dale, *Me Graw* Hall

# इकाई 14 नियंत्रण एवं नियंत्रण की तकनीकें

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 नियंत्रण एवं नियन्त्रित करना: अर्थ एवं परिभाषा
14.3 नियंत्रण की आवश्यकता एवं महत्व
14.4 नियंत्रण के प्रकार
14.5 नियंत्रण की प्रक्रिया
14.5.1 मानकों का निर्धारण
14.5.2 निष्पादन का मापन
14.5.3 निष्पादन एवं मानक की तुलना
14.5.4 सुधारात्मक कार्यवाही करना
14.6 नियंत्रण के स्तर
14.7 नियंत्रण प्रणाली की पूर्व आवश्यकताएँ
14.8 अपवाद द्वारा प्रबंधन का सिद्धांत
14.9 नियंत्रण के सिद्धांत
14.10 नियंत्रण का प्रतिरोध
14.11 नियंत्रण के प्रतिरोध को दूर करने के उपाय
14.12 नियंत्रण की तकनीकें
14.12.1 नियंत्रण की परम्परागत तकनीकें
14.12.2 नियंत्रण की आधुनिक तकनीकें
14.13 सारांश
14.14 शब्दावली
14.15 बोध प्रश्न
14.16 बोध प्रश्नों के उत्तर
14.17 स्वपरख प्रश्न
14.18 सन्दर्भ पुस्तकें

## उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- नियंत्रण की संकल्पना को समझ सकें।
- नियंत्रण की प्रकृति का वर्णन कर सकें।
- नियंत्रण की आवश्यकता एवं महत्व का वर्णन कर सकें।
- नियंत्रण की तकनीकों का वर्णन कर सकें।
- नियंत्रण के प्रभाव का निर्धारण कर सकें।

## 14.1 प्रस्तावना

जैसा कि हम सब भली–भांति जानते है कि नियोजन प्रबन्ध प्रक्रिया का प्रथम एवं नियंत्रण अंतिम तत्व (घटक/कार्य) है। यह अंतिम तत्व सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी तत्व पर समस्त प्रबंधकीय कार्यों की सफलता निर्भर करती है। प्रभावी एवं कुशल (दक्ष) प्रबंधन योजनाओं, प्रक्रियाओं तथा कार्यक्रमों के अनुरूप संगठन को चलाना चाहता है। किन्तु यह कार्य केवल नियंत्रण के द्वारा ही

किया जा सकता है। नियंत्रण करने से अभिप्राय विचलन एवं विसंगति को न्यूनतम करना।

## 14.2 नियंत्रण एवं नियन्त्रित करनाः अर्थ एवं परिभाषा

नियंत्रण प्रबंध का अति प्रमुख (सर्वप्रमुख) कार्य है। सम्पूर्णतः नियंत्रण पूर्व निर्धारित उद्देश्यों के आलोक में निष्पादन मापन की प्रक्रिया है।

**ई.एफ.एल. बेच के अनुसार** : "नियंत्रण उचित प्रति एवं संतोषजनक निष्पादन के सुनिश्चितीकरण के दृष्टिकोण से वास्तविक निष्पादन की योजना के पूर्व सहमत मानकों के विरुद्ध जाँच है।"

**कुण्टन एवं वेह्रिच के अनुसार** : नियंत्रण यह सुनिश्चित होने के क्रम में, कि उद्यम के उद्देश्य तथा उन्हें प्राप्त करने हेतु बनाये गये युक्तियों को प्राप्त कर लिया गया है। निष्पादन का मापन एवं सुधार है।

**राबर्ट अलबेनिज के शब्दों में** : "प्रबंधकीय नियंत्रण यह सुनिश्चित करने की प्रक्रिया है, कि कार्य वांछित परिणामों की रेखा (दिशा) में है।"

इस प्रकार नियंत्रण कार्यबल के कार्यों (गतिविधियों) को जाँचने एवं सुधारने (सही करने/ठीक करने) की प्रक्रिया है। नियंत्रण के अंतर्गत मानकों का निश्चयन, योजना के आलोक में वास्तविक निष्पादन का मापन तथा निष्पापदन का सुधार यदि वह मानकों के अनुसार नहीं है तब, सम्मिलित है। यह एक सरेखण (पंक्ति योजना मार्ग रेखा) की प्रक्रिया है।

## 14.3 नियंत्रण की आवश्यकता एवं महत्व

नियंत्रण प्रबंध के कार्य की मूलभूत (प्राणमिक) आवश्यकता है। नियंत्रण सदा ही नियोजन पर आधारित होता है। तथा विचारण विश्लेषण की प्रक्रिया को समाहित करता है। नियंत्रण के अभाव में नियोजन निष्प्रयोज्य है तथा नियोजन रहित नियंत्रण औचित्यहीन (अर्थहीन) है।

नियंत्रण स्थापन की आवश्यकता एवं महत्व राबिन्स एवं कोल्टर (कोटलर) के कथन में भली प्रकार से न्याय संगत की गयी है। "नियंत्रण महत्वपूर्ण है क्योंकि प्रबंधकीय गतिविधियों की श्रृंखला की अंतिम कड़ी है।" यह प्रबंधकों को उपलबध एक मात्र ढंग है जिससे कि वो जान सके कि सांगठनिक लक्ष्य प्राप्त हो गये है अथवा नहीं।

निम्न बिन्दुओं के द्वारा नियंत्रण की आवश्यकता एवं महत्व को समझाा जा सकता है;

1. नियंत्रण परिणामों एवं साधनों एवं प्रयत्नों व उत्पादन (निर्गत) के मध्य साम्य (समतुलय/संतुलन) स्थापित करता है।
2. नियंत्रण लक्ष्यों एवं ध्येय प्राप्ति में सहायक होता है।
3. नियंत्रण कर्मचारियों को अभिप्रेरित करता है तथा उनके मनोबल को ऊँचा रखता है।
4. नियंत्रण नियोजन के सफल क्रियान्वयन का सर्वाधिक प्रभावी अस्त्र है।
5. नियंत्रण कर्मचारियों के मध्य समन्वय एवं सहयोग को प्रात्साहित करता है।
6. नियंत्रण निर्णयन प्रक्रिया में सहायता करता है।
7. नियंत्रण सांगठनिक स्थायित्व को सुनिश्चित करता है।
8. नियंत्रण प्राधिकार (सत्र) के विकेन्द्रीकरण में सहायक होता है।

9. नियंत्रण सुधारात्मक उपाय के रूप में प्रभावी ढंग से सहायक होता है।
10. नियंत्रण पर्यवेक्षण का सर्वश्रेष्ठ अस्त्र है।

## 14.4 नियंत्रण के प्रकार

नियंत्रण के तीन प्रकार होते है। रणनीतिक (कूटनीति/सामरिक) कार्य–नीति सम्बन्धी, एवं परिचालन सम्बन्धी। नियंत्रण के प्रकार का चुनाव (चयन) प्रत्यक्षता प्रबंध के स्तर से जुड़ा होता है। इसे निम्नलिखित ढंग से देखा जा सकता है।

| प्रबंध का स्तर | | नियंत्रण का प्रकार |
|---|---|---|
| 1. | उच्च प्रबंधन | रणनीति/सामरिक नियंत्रण |
| 2. | म्ध्यम स्तर प्रबंधन | कार्य–नीति सम्बन्धी नियंत्रण |
| 3. | निम्न स्तर प्रबंधन | परिचालन सम्बन्धी नियंत्रण |

उपरोक्त विवरण पर (लेखाचित्र) से स्पष्ट है कि उच्च प्रबंधन सामरिक नियंत्रण से मध्य स्तर प्रबंधन कार्य–नीति नियंत्रण से एवं निम्न सतर प्रबंधन परिचालन सम्बन्धी नियंत्रण से सम्बन्धित है।

## 14.5 नियंत्रण की प्रक्रिया

नियंत्रण एक प्रक्रिया है जो निम्नांकित आनुक्रमिक (क्रमबद्ध) गतिविधियों द्वारा स्थान ग्रहण करती है;

1. मानकों का निर्धारण
2. निष्पादन मापन
3. निष्पादन एवं मानकों की तुलना
4. सुधारात्मक कार्यवाही करना

**14.5.1 मानकों का निर्धारण**—मानक नियंत्रण प्रक्रिया के प्राथमिक आधार (जड़/नीव) है क्योकि ये निष्पादन मापन के अस्त्र की भांति कार्य करते है। मानक आंशिकरूप से अभिव्यक्त किये जाते है, क्योंकि ये पूर्व निर्धारित बिंदु होते है जिनके द्वारा निष्पादन मूल्यांकन होता है।

निष्पादन मानकों को पाँच वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है;

1. उत्पादकता मानक
2. समय मानक
3. लागत मानक
4. गुणवत्ता मानक
5. व्यवहारिक मानक

समस्त प्रमुख क्षेत्रों में मानक निर्धारित होने चाहिये मात्र इसी दशा में नियंत्रण का कार्य प्रभावी हो सकता है।

**14.5.2 निष्पादन का मापन**—वास्तविक निष्पादन का मापन मानक मानदण्डों की सहायता से किया जाता है। कतिपय देखे चर हैं जिनका मापन मात्रात्मक होता है, यथाः उत्पादन इकाई व्यय समय इत्यादि जब कि कुछ चर यथा रवैया (अभिवृद्धि) नैतिकता, मनोबल संतुष्टि इत्यादि का मापन गणात्मक होता है।

**14.5.3 निष्पादन एवं मानक की तुलना**—इस प्रक्रिया में मापित निष्पादनों की तुलना पूर्व निर्धारित मानकों से की जाती है। यह तुलना इन दोनों के मध्य के विभेद, विसंगति एवं विचलन को बताता है।

**14.5.4 सुधारात्मक कार्यवाही करना**—मानकों एवं निष्पादनों के मध्य विसंगति के संज्ञान में आने के पश्चात सुधारात्मक कार्यवाही आवश्यक होती है। जिससे कि भविष्य में विभेदों को न्यून किया जा सके। नियंत्रण की सफलता सुधारात्मक (दोष निवारक) कार्यवाही अपनाने पर निर्भर करती है क्यों कि सिर्फ यही कदम सुनिश्चित करेगा कि भविष्य में विचलन नहीं होगा।

## 14.6 नियंत्रण के स्तर

जैसा कि पूर्व विमर्शित (विचारित) है कि नियंत्रण के तीन (3) स्तर होते है;

(i) परिचालन स्तर

(ii) कार्यनीति स्तर

(iii) सामरिक स्तर

परिचालन स्तर नियंत्रण भौतिक वित्तीय मानव, सूचना एवं संदेशवाहन संसाधनों के नियंत्रण से सम्बन्धित होती है। कार्यनीति नियंत्रण नीति–निर्माण क्षेत्र से सम्बन्धित होता है।

सामरिक (रणनीति) स्तर नियंत्रण नीति–निर्माण से सम्बन्धित है तथा रणनीतिक नियोजन प्रभावी नियंत्रण प्रणाली की पूर्व आवश्यकता है।

## 14.7 नियंत्रण प्रणाली की पूर्व आवश्यकताएँ

जैसा कि हम जानते है, कि नियंत्रण एक प्रक्रिया है। अतः इस यंत्रावली (व्यवस्था) के समस्त कल–पुर्जे दक्ष एवं प्रभावी होने चाहिये। जिससे नियंत्रण प्रणाली कर्मण्य बनायी जा सके। इस प्रणाली की कतिपय पूर्व आवश्यकतायें निम्नलिखित है जिनके अभाव में नियंत्रण प्रभावी ढंग से कार्य नहीं करेगा;

1. नियंत्रण लक्ष्यों मुखी होना चाहिये;
2. नियंत्रण नियोजन, पदों, संरचनाओं,
3. नियंत्रण प्रणाली लोचशील होना चाहिये;
4. नियंत्रण प्रणाली संगठन की आवश्यकताओं के अनुकूल होना चाहिये;
5. प्रणाली किफायती (लागत–सार्थक) होनी चाहिये।

## 14.8 अपवाद द्वारा प्रबंधन का सिद्धांत

यह सिद्धान्त इस सूत्रवाक्य (कहावत/सुभाषित) पर आधारित है कि, प्रबन्ध तभी करें जब आपको अवश्यक ही करना चाहिये।

दिन–प्रतिदिन (दैनदिन) के कार्यों में अनावश्यक नाक को चने (कुरेदने) से प्रबंध के लोग अपनी आभा एवं शोभा (महत्व/श्रेष्ठता) खो सकते है। अपवाद द्वारा नियंत्रण सिद्धांत के अनुसार, उच्च पदस्थ व्यक्तियों को तभी नियंत्रण करना चाहिये जब शेष अन्य व्यक्ति असफल हो गये हो। उच्च प्रबंध को कभी–कभार (कदाचित) ही फर्श पर (जमीन पर/धरातल पर) दिखना चाहिये।

## 14.9 नियंत्रण के सिद्धांत

नियंत्रण का सिद्धांत निम्नलिखित सिद्धांतों पर आधारित है :

**(i) उद्देश्य का सिद्धांत**—नियंत्रण का उद्देश्य उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति है। अतः उद्देश्य के सिद्धांत को नियंत्रण का मूलभूत सिद्धांत माना जा सकता है।

**(ii) मानकों का सिद्धांत**—नियंत्रण का प्राथमिक उद्देश्य वास्तविक एवं मानकों के मध्य के अंतर को न्यमन करना है। अतः मानकों का सिद्धांत नियंत्रण में

अति–महत्वपूर्ण है। मानक एवं मानदण्ड पूर्व प्रदर्शनों एवं उसमें आयी समस्याओं को दृष्टिगत कर निर्धारित किये जाते है।

**(iii) उत्तरदायित्व केंद्र का सिद्धांत**—यह सिद्धांत यह वर्णित करता है कि प्रमुख परिणाम क्षेत्रों एवं उत्तरदायित्व केंद्रों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। सामरिक (रणनीति) महत्व के बिंदुओं पर विशेष रूप से केन्द्रित होना चाहिये।

**(iv) भविष्य निर्देशित नियंत्रण का सिद्धांत**—नियंत्रण दीर्धावधि प्रक्रिया होती है। अतः भविष्य निर्देशित नियंत्रण प्रणाली विकसित किया जाना चाहिये जोकि वर्तमान एवं भावी विचलनों को नियंत्रित करेंगा।

**(v) प्रत्यक्ष सम्पर्क का सिद्धांत**—यह सिद्धांत इस मान्यता पर आधारित है कि नियंत्रण प्रभावी हो सकता है यदि नियंत्रक एवं नियंत्रित (नियंत्रित होने वाले लोग) के मध्य प्रत्यक्ष सम्पर्क हो।

**(vi) सांगठनिक अनुकूलता (उपयुक्तता/सानुकूल्य) का सिद्धांत**—यह भली–भांति समझ लेना चाहिये कि नियंत्रण संगठन के हित के लिये होता है। अतः किया जाने वाला नियंत्रण सांगठनिक आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिये।

**(vii) लोचशीलता का सिद्धांत**—अदृश्य आकस्मिकताओं को सम्मलित (निगमि) करने हेतु नियंत्रण प्रणाली को लोचशील होना चाहिये।

**(viii) दक्षता का सिद्धांत**—नियंत्रण अपने प्रणाली एवं उप–प्रणाली की दक्षता के आधार पर ही प्रभावी (दक्ष) हो सकता है।

**(ix) लागत–प्रभावोत्पादकता का सिद्धांत**—वास्तव में लाभदायक सिद्ध होने हेतु नियंत्रण को लाभ–प्रभावोत्पादकता सिद्धांत पर आधारित होना चाहिये। लागत–लाभ विश्लेषण, किसी भी नियंत्रण प्रणाली का, प्रभावोत्पादकता के दृष्टिकोण से अति–महत्वपूर्ण है।

**(x) अपवाद द्वारा प्रबंधन का सिद्धांत**—नियंत्रण प्रणाली को अपवाद द्वारा प्रबंधन का सिद्धांत का पालन करना चाहिये। कतिपय सामान्य एवं सामान्य अपरिहार्य विचलन होते है और इन विचलनों को नही प्रतिवेदित (संज्ञान में रखना) किया जाना चाहिये। महज अपवदातात्मक विचलन कार्य व ध्यान में लाने चाहिये, तथा कार्यवाही हेतु अभिस्वीकृत एवं प्रतिवेदित किये जाने चाहिये।

**(xi) योजना, दृष्टिकोण एवं ध्येय के परावर्तन का सिद्धांत**—प्रणाली को संगठन के योजनाओं, दृष्टिकोणों एवं ध्येय के अनुसार कार्य करना चाहिये। अतः नियंत्रण को संगठन के योजना, दृष्टि एवं ध्येय को परावर्तित करने वाला होना चाहिये।

**(xii) कार्यवाही का सिद्धांत**—नियंत्रण हेतु कार्यवाही आवश्यक हैं यदि निश्चित लक्ष्यों एवं प्राप्त उपलब्धि के मध्य विचलन है तो इन दोनों के अंतर को पाटने के लिये कार्यवाही की जानी चाहिये।

## 4.10 नियंत्रण का प्रतिरोध

नियंत्रण एक नकारात्मक संकल्पना है तथा कोई भी नियंत्रण का स्वागत नहीं करता हैं नियंत्रण का प्रतिरोध होता हैं मानव मनोविज्ञान इसी प्रकार का हैं नियंत्रण के बारे में एक सामान्य कथन है आप अधिक पर्यवेक्षित एवं नियंत्रण करेंगे, मैं अल्प कार्य करूँगा।

इन प्रतिरोधों के मूलभूत कारण निम्नलिखित है :

**संदेह (अविश्वास) संलक्षण**—कर्मचारी नियंत्रण को नियोक्त के उनके प्रति अविश्वास के रूप में देखते है।

**अतिशय नियंत्रण**—नियंत्रण के नाम पर अत्यधिक नियंत्रण भारित किया जाता है, यह अतिशयता अधीनस्थों की स्वतंत्रता में बाधा उत्पन्न करती है तथा लोचशीलता को न्यून करती है।

**अव्यवहारिक मानक**—कभी–कभी अव्यवहारिक एवं अप्राप्तनीय मानक निर्धारित कर दिये जाते है जो गुणवत्त का जहाँ तक सवाल है आग में ईधन का कार्य करते है।

**अ–सटीक एवं अनुचित मानक**—अनुचित, अदक्ष एवं अ–सटीक मानकों से श्रेष्ठतर यह है कि मानक हो ही नहीं अनुचित मानक कभी भी किसी रूप में उद्देश्य की प्राप्ति नहीं करायेंगे।

**जबाबदेयत एवं उत्तरदायित्व का भय**—जो प्रदर्शन (निष्पादन) नहीं कर सकते वे सदा ही नियंत्रण के विचार का विरोध करेगें क्योंकि वे अच्छे एवं निष्पादन करने वाले कर्मचारियों से तुलना होने पर मुश्किल में रहेंगे।

## 14.11 नियंत्रण के प्रतिरोध को दूर करने के उपाय

नियंत्रण के प्रतिरोध को शंका की निवृत्ति तथा ख्याति के वातावरण के निर्माण द्वारा वशीभूत किया जा सकता है, इस हेतु कर्मचारियों (श्रमिकों) को यह बताना (समझाया जाना) चाहिये कि नियंत्रण उनकी कार्यात्मक स्वायत्तता को अस्त व्यस्त करने (अशांत करने) की भावना से नहीं किया जा रहा वरन अपव्ययों, (बर्बादी) को समाप्त कर लागत नियंत्रण हेतु है। यह निम्नलिखित उपायों के द्वारा किया जा सकता है।

**1. नियंत्रण के औचित्य को स्पष्ट करके**—श्रमिकों को यह समझाया जाना चाहिये कि नियंत्रण संगठन की आवश्यकता है। नियंत्रण न होने की (न रखने की) लागत, नियंत्रण रखने की लागत से बहुत अधिक हो सकती है।

**2. तर्कसंगत एवं यथार्थवादी मानक**—मानक तर्क–संगत एवं व्यवहारिक होने चाहिये जिससे कि वे प्राप्त होने योग्य रह सकें।

**3. नियंत्रण में लोचशीलता**—नियंत्रण दृढ़ एवं अलोचशील नहीं होने चाहिये। लोचशील मानक का अर्थ यह है कि मानक समय की आवश्यकतानुसार परिवर्तित होने चाहिये।

**4. पारितोषिक (पुरस्कार) आधारित निष्पादन आगणन**—नियंत्रण स्वीकारणीय होगा यदि निष्पादन का परिणाम प्रतिफल पारितोषिक एवं पुरस्कार के रूप में हो।

**5. मानकों का पुर्नमूल्यांकन एवं पुनरीक्षण (संशोधन)**—मानकों को और अधिक व्यवहारिक एवं स्वीकारणीय बनाने हेतु इन्हें समय–समय पर विचारित (अवलोकित) पुर्नमूल्यांकित तथा पुनरीक्षित (संशोधित) किया जाना चाहिये।

## 14.12 नियंत्रण की तकनीकें

नियंत्रण प्रबंध का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है। यह कहा जाता है कि नियोजन आगे की ओर देखना है जबकि नियंत्रण पीछे की ओर देखना है। कृत को अकृत नहीं किया जा सकता किंतु नियंत्रण तकनीकें इसलिये विकसित की

जाती है जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि ये दुर्घटना एवं विसंगतियाँ भविष्य में नहीं होगी। नियंत्रण की तकनीके दो प्रकार की होती है।

**14.12.1 नियंत्रण की परम्परागत तकनीकें**—निम्नलिखित तकनीकों को पारंपरिक तकनीक कहा जाता है :

1. व्यक्तिगत प्रेक्षण;
2. वित्तीय विश्लेषण;
3. गुणवत्त नियंत्रण।

**1. व्यक्तिगत प्रेक्षण**—प्रेक्षकों द्वारा व्यक्तिगत प्रेक्षण नियंत्रण की आधारभूत तकनीक है। पर्यवेक्षक अथवा प्रेक्षक अधीनस्थों को यह अनुभव कराते है, कि वे देखे जा रहे (अवलोकन मे/दृष्टि में) है। यदि कोई अदक्षता (कमी) है। तो वह चिन्तित की जा सकती है तथा शीध्र अवलिम्ब सुधारी जा सकती है।

किन्तु यह विधि लघु एवं मध्यम संगठनों में सहायक होती है, बड़े संगठन एवं विशाल व्यावसायिक घटाने इस विलासिता को नहीं वहन कर सकते।

**2. वित्तीय विश्लेषण**—नियंत्रण की यह विधि वित्तीय आंकड़ों के विश्लेषण पर आधारित है। इस विश्लेषण के प्रमुख अस्त्रों को निम्नांकित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकते है :

(a) बजटिंग

(b) तुलनात्मक विवरण

(c) अनुपात विश्लेषण

(d) सम–विच्छेद बिंदु

(e) सारणीबद्ध (तालिका के रूप में) रेखाचित्रिय एवं आरेखी प्रस्तुति

**(a) बजटिंग**—बजट किसी व्यावसायिक घराने का आय, व्यय, उत्पादन, विक्रय एवं लाभ इत्यादि का पूर्व–आकलन (प्रावकलन) है। वास्तविक निष्पादन की बजट के आंकड़ों से तुलना होती है। इस प्रकार बजट कमी, विसंगति मापने हेतु एक माप दण्ड प्रदान करता है तथा जिसके द्वारा विचलन के कारणों को विश्लेषित किया जा सकता है तथा भावी अवधि में इन्हें होने के बचाया जा सकता है। बजटिंग नियंत्रण युक्ति का एक प्रमुख अस्त्र है।

**(इ) तुलनात्मक विवरण**—तुलनात्मक विवरण दो भिन्न अवधियों के तथ्य एवं आंकड़े की तुलना के उद्देश्य से बनाये जाते है। यह आंकड़े अंतर को जानने तथा विचलन के कारणों का विश्लेषण करने में सहायक होते है। इस प्रकार नियंत्रण में सहायता करते है।

**(ब) अनुपात विश्लेषण**—अनुपात दो वित्तीय चरों के मध्य के सम्बन्ध होते हैं। दो भिन्न अवधि के अनुपातों की तुलना विंगति के बारे में बताती हैं तथा विचलन कारणों के विश्लेषण में सहायता करती है। इसलिये अनुपातों को नियंत्रण की तकनीक के रूप में प्रयोग किया जाता है।

**(क) सम–विच्छेद बिंदु**—सम–विच्छेद विश्लेषण अथवा लागत मात्रा लाभ विश्लेषण लागत, विक्रय, मात्रा एवं लाभ के मध्य के सम्बन्ध को परिभाषित करती है। सम–विच्छेद बिंदु न लाभ–न हानि का बिंदु होता हैं यह सीमांत सुरक्षा के बिंदु को निर्धारित करता है। सम विच्छेद बिंदु यह निर्धारित करता है कि किसी मात्रक में

लाभ अर्जन हेतु विक्रय की क्या मात्रा होनी चाहिये। व्यवसाय लाभ क्षेत्र में तभी प्रवेश करता है जब वह सम–विच्छेद बिंदु के पार जाता है।

**(म) सारणीबद्ध (तालिका के रूप में) रेखाचित्रिय एवं आरेखी प्रस्तुति**—आंकड़ों का सांख्यिकीय प्रस्तुतिकरण तालिका रेखाचित्र अथवा आरेख के माध्यम से किया जा सकता है। यह प्रस्तुतिकरण तुलनात्मक होता है तथा अवलोकन (देखने वाले) की दो अवधियों के विचलन को जानने में सहायता करता है।

**3. गुणवत्ता नियंत्रण**—गुणवत्ता नियंत्रण परिचालन प्रबंध की एक प्रमुख तकनीक है। इसका उद्देश्य निर्माण प्रक्रिया के प्रत्येक चरण (स्तर) में उत्पादों की गुणवत्ता बनाये रखना होता है। वर्तमान युग शून्य दोष उत्पाद प्रक्रिया का है। गुणवत्ता नियंत्रण से आंशय ऐसे प्रणाली को खोजना है। जिसमें उत्पादित एवं विक्रित उत्पाद गुणवत्ता मानकों के मानदण्डों के अनुसार हो तथा यह नियंत्रण निम्नलिखित चरणों के अंतर्गत होता है।

(a) आगत सामग्री

(b) उत्पादन प्रक्रिया एवं

(c) अंतिम उत्पाद

संपूर्ण (कुल) गुणवत्त प्रबंध का उद्देश्य संगठन में कार्यरत व्यक्ति उत्पादित एवं विक्रित उत्पादों में सतत सुधार से है। यह गुणवत्ता वृत्तें के द्वारा सम्पादित किया जाता है।

**14.12.2 नियंत्रण की आधुनिक तकनीके**—निम्नलिखित तकनीकों को आधुनिक तकनीके कहा जाता है :

1. प्रबंध सूचना प्रणाली (एम.आई.एस.)
2. प्रबंध अंकेक्षण अथवा स्वामित्व अंकेक्षण
3. संतुलित प्राप्तांक (अंक) पत्रक (बैलेन्सद्र स्कोर कार्ड)
4. उत्तरदायित्व लेखांकन
5. आर्थिक उपयोगिता जोड़ना (इकोनामिक वैल्यू एडेड)

1. **प्रबंध सूचना प्रणाली (एम.आई.एस.)**—प्रबंध सूचना प्रणाली निर्णयन प्रक्रिया को सुगम बनाने तथा संगठन के नियोजन नियंत्रण एवं परिचालन क्रियाओं के सफल संचालन हेतु सशक्त (सक्षम) बनाने हेतु प्रबंधन को सटीक एवं समयानुसार सूचनायें प्रदान करने के उद्देश्य से सूचनाओं का संग्रहण, एकीकरण एवं प्रदान करना है।

2. **प्रबंध अंकेक्षण अथवा स्वामित्व अंकेक्षण**—प्रबंध कार्यों अथवा प्रक्रिया के अंकेक्षण को प्रबंध अंकेक्षण कहते है। प्रबंध अंकेक्षण यह निश्चित करता है कि संगठन के संसाधन अनुकूलतम ढंग से उपयोंग में आ रहें है, कामगारों की अनुपस्थिति दर एवं कुल बिक्री दर निम्न है। उचित मात्रा में इच्छित गुणवत्ता की वस्तु उत्पादित है, समस्त प्रबंधक अपने कर्तव्यों का निर्वहन प्रभावी एवं लागत प्रभावी ढंग से कर रहे हैं अतः समस्त लाभार्थी तथा स्कंधधारक संतुष्ट है। प्रबंध अंकेक्षण को स्वामित्व अंकेक्षण के नाम से भी जाना जाता है।

3. **संतुलित प्राप्तांक (अंक) पत्रक (बैलेन्स स्कोर कार्ड)**—बैलेन्स स्कोर कार्ड नियंत्रण की एक नवीन तकनीक है। यह एक निष्पादन मापक अस्त्र है जो

चार क्षेत्रों उपभोक्ता, व्यक्ति, प्रक्रिया एवं वित्त पर ध्यान देता है। यह संगठन के निष्पादन का मूल्यांकन वित्तीय एवं गैर–वित्तीय दोनों प्राचलों (मापदण्डों) पर करता हैं यह समस्त क्षेत्रों में संतुलित वृद्धि के दर्शन पर आधारित है।

4. **उत्तरदायित्व लेखांकन**—उत्तदायित्व लेखांकन का अर्थ लेखांकन सिद्धांतों के समस्त प्रमुख परिणाम क्षेत्रों में अनुप्रयोग से है। यह इस सिद्धांत पर आधारित है कि समस्त संगठन को छोटी छोटी इकाइयों में विभक्त किया जाये तथा प्रत्येक इकाई का प्रबंधक अपनी इकाई के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु उत्तरदायी हो। प्रमुख उत्तरदायित्व केस निम्नांकि है ;
   (a) लागत केस
   (b) आगम केस
   (c) लाभ–केस
   (d) निवेश केस

5. **आर्थिक उपयोगिता जोड़ना (इकोनामिक वैल्यू एडेड)**—ई.वी.ए. व्यावसायिक संगठन की सफलता मापन की प्रमुख तकनीक हैं यह संगठन द्वारा सृजित कुल सम्पत्ति या मूल्य को संकेत करता (दर्शाता) है। इसका प्रमुख कार्य अंश धारकों की सम्पत्ति को अधिकतम करना है।

   ई.वी.ए. धनात्मक एवं ऋणात्मक (सकारात्मक अथवा नकारात्मक) दोनों हो सकते है। सकारात्मक अथवा धनात्मक ई.वी.ए. से अर्थ है कि व्यवसाय प्राप्तियों को प्राप्त करने हेतु आवश्यक लागतों से अधिक प्राप्ति दे रहा है। इसका अथवा है कि कम्पनी अपने अंशधारियों के लिये मूल्य सृजित कर रहीं है। नकारात्मक ई.वी.ए. से अभिप्राय यह है, कि कम्पनी लागत से अल्प अर्जित कर रही है। ई.वी.ए. कम्पनी की वास्तविक लाभदायकता माने का अस्त्र है।

**मानक लागत निर्धारण.**—मानक लागत निर्धारण लागत नियंत्रण की एक तकनीक है। मानक मूल्यों के आधार पर सामग्री, श्रम एवं उपरिव्ययों की मानक लागत निर्धारित की जाती है तथा तब गणित वास्तविक लागत की तुलना मानक लागतों से की जाती है। यदि दोनो के मध्य कोई विचलन होता है तो विचलनों के कारणों का विश्लेषण किया जाता है तथा इनका समाधान किया जाता है। यह नियंत्रणीय विचरणों के नियंत्रण में सहायक होता है।

**क्रांतिक–पथ विधि (सी0पी0एम0).**—सी0पी0एम0 किसी परियोजना के प्राप्ति हेतु गतिविधियों के तार्किक अनुक्रम के नियोजन एवं नियंत्रण हेतु प्रयुक्त होता है। सी.पी.एम. न परियोजनाओं में जो समय–रेखीय हो प्रयोग किया जा सकता है। सी.पी.एम. मूलतः परियोजना प्रबंध की एक तकनीक है जो नियोजन अनुसूची एवं नियंत्रण में सहायता करती है।

**कार्यक्रम मूल्यांकन एवं पुनरीक्षण तकनीक (P.E.R.T.) (पर्ट).**—पी.ई.आर.टी. एक मूलभूत तंत्र (जाल) तकनीक है जो परियोजना के नियोजन, अनुश्रवण, एवं नियंत्रण को सम्मिलित करता है। सी.पी.एम. की भांति पी.ई.आर.टी. परियोजना प्रबंध की एक तकनीक है।

पी.ई.आर.टी. नये विशाल परियोजनाओं के आरम्भ जहाजों के निर्माण, विशाल इमारतों एवं राजपथों के निर्माण में प्रयुक्त होता है।

## 14.13 सारांश

नियंत्रण प्रबंध का अंतिम वह सर्वश्रेष्ठ कार्य हैं यह संगठन के प्रबंधकीय कार्यों की प्रभावोत्पादकता को सुनिश्चित करता हैं नियंत्रण का उद्देश्य वर्तमान निष्पादन की पूर्व–निर्धारित लक्ष्यों के सापेक्ष जांच है।

सच कहें तो नियंत्रण घटनाओं को योजनाओं की सुनिश्चितीकरण हेतु बाध्यकरिता है। नियंत्रण का क्षेत्र अति व्यापक तथा संगठन के समस्त कार्यों एवं परिचालन तक विस्तारित हैं नियंत्रण की आवश्यकता एवं महत्व को अच्छी रीति से न्यामोचित किया गया है। नियंत्रण के तीन प्रकार है, सामरिक नियंत्रण प्रबंध के उच्च स्तर पर, कार्य–नीति नियंत्रण प्रबंध के मध्य स्तर पर, तथा परिचालन नियंत्रण प्रबंध के निम्न स्तर पर। नियंत्रण क्रमिक प्रकृति का होता है क्योंकि नियंत्रण एक प्रक्रिया नहीं वरन कार्यों की एक श्रृंखला हैं प्रभावी होने हेतु नियंत्रण को कतिपय निश्चित मजबूत सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिये। बजटरी नियंत्रण मानक लागत निर्धारण, बैल सड स्कोर कार्ड, इकोनोमिक वैल्यू एडीशन, सम–विच्छेद विश्लेषण, गुणवत्ता नियंत्रण, प्रबंध सूचना प्रणाली, प्रबंध अंकेक्षण उत्तरदायित्व लेखांकन इत्यादि, नियंत्रण की विविध प्रभावी अस्त्र एवं तकनीके हैं किसी संगठन की सफलता काफी हद तक उसके नियंत्रण प्रणाली पर निर्भर करती है।

## 14.14 शब्दावली

**नियंत्रण**—यह वास्तविक कार्य के नियोजित कार्यों के बद्ध होने की सुनिश्चितता की प्रक्रिया है।

**अपवाद द्वारा प्रबंधन**—अपवाद द्वारा प्रबंधन वह व्यवहार है जिसके अंतर्गत केवल उन बजट या योजना विचलनों को प्रबंध के संज्ञान में लाया जाता है। जो अति महत्वपूर्ण होते है।

**उत्तरदायित्व लेखांकन**—उत्तरदायित्व लेखांकन एक प्रणाली है जिसमें सम्पूर्ण संगठन को कई छोटी इकाईयों में विभाजित किया जाता है तथा प्रत्येक ईकाई को विशेष उत्तरदायित्व आवंटित किये जाते है।

**इकोनोमिक वैल्यू एडेड**—ई.वी.ए. एक आंतरिक निष्पादन मापक है जो कुल परिचालन लाभ की तुलना कुल पूँजी लागत से करता है।

## 14.15 बोध प्रश्न

**रिक्त स्थान की पूर्ति करे :**

1. .............................का अर्थ उद्देश्य एवं प्राप्ति के मध्य विचलन एवं विसंगतियों को न्यून करना है।
2. कार्यबल के कार्यों की जांच एवं सुधार की प्रक्रिया .........................कहलाती है ।
3. .....................स्तर नियंत्रण भौतिक वित्तीय मानव एवं सूचना संचार प्रक्रिया से सम्बन्धित हे।

4. ..................... एक मूलभूत संजाल तकनीक है, जो परियोजना के नियोजन, अनुश्रवण एवं नियंत्रण को सम्मिलित करती है।

## 14.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

| | | | |
|---|---|---|---|
| (1) | नियंत्रण | (2) | नियंत्रण |
| (3) | परिचालन | (4) | पी.ई.आर.टी. (पर्ट) |

## 14.17 स्वपरख प्रश्न

1. नियंत्रण से आपका क्या आशय है?
2. नियंत्रण के उद्देश्यों को सूचीबद्ध कीजिये।
3. नियंत्रण की आवश्यकता एवं महत्व को न्यायोचित ठहराइये।
4. नियंत्रण की प्रक्रिया को परिभाषित कीजिये।
5. प्रभावी नियंत्रण प्रणाली की आवश्यकताओं को बताइये।
6. नियंत्रण को प्रक्रिया क्यों कहा जाता है?
7. नियंत्रण में सम्मिलित विभिन्न चरणों को बताइये?
8. नियंत्रण की विभिन्न पारंपरिक तकनीकों को बताइये?
9. नियंत्रण की कम से कम पांच आधुनिक तकनीकों को बताइये।
10. नियंत्रण के प्रमुख सिद्धांत का वर्णन कीजिये।
11. नियंत्रण किस प्रकार नियोजन से जुड़ा है?
12. नियंत्रण की सीमायें बताइये?
13. व्यक्ति नियंत्रण का विरोध क्यों करते है?
14. नियंत्रण के प्रतिरोध को कैसे समाप्त कर सकते है?
15. एक प्रभावी नियंत्रण प्रणाली के गुणों का वर्णन कीजिये?

## 14.18 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Essentials of Management: Josheph L. Massue, Prentiee Hall of India Put
2. Management Harold koonts and cyril Q Donnell *Me Graw* Hall
3. Management : Theory and practice of Management E most Dale, *Me Graw* Hall

# इकाई 15 संगठनात्मक परिवर्तन एवं विकास का प्रबन्ध

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 संगठनात्मक परिवर्तन: अर्थ एवं परिभाषा
15.3 संगठनात्मक परिवर्तन की विशेषतायें
15.4 परिवर्तन को प्रभावित करने वाले घटक
15.4.1 बाह्य घटक
15.4.2 आंतरिक घटक
15.5 परिवर्तन की प्रक्रिया
15.6 (असुरक्षा) परिवर्तन का प्रतिरोध
15.6.1 आर्थिक घटक
15.7 परिवर्तन के प्रतिरोधक को कैसे समाप्त करें?
15.7.1 उचित संदेश वाहन
15.7.2 सहभागिता एवं सम्मिलितीकरण
15.7.3 सौदेबाजी एवं शिक्षा
15.7.4 परिवर्तन तभी जब यह आवश्यक हो
15.7.5 परिवर्तन क्रमिक होना चाहिये
15.7.6 सुनिश्चित (कुशल/चतुर) संचालन
15.7.7 प्रत्यक्ष (मुखर) एवं परोक्ष अवपीड़न यदि आवश्यक हो
15.8 परिवर्तन का प्रकार
15.8.1 परिवर्तन योजना की संकल्पना बनाना
15.8.2 परिवर्तन हेतु योजना निर्माण
15.8.3 योजना का क्रियान्वयन
15.8.4 अनुश्रवण
15.8.5 परिवर्तन प्रतिरोध को दूर करने का प्रयत्न
15.9 संगठनात्मक विकास की संकल्पना एवं निहितार्थ (तात्पर्य)
15.9.1 संगठनात्मक विकास की संकल्पना
15.9.2 संगठनात्मक विकास का निहितार्थ
15.10 संगठनात्मक विकास : अर्थ एवं परिभाषा
15.11 संगठनात्मक विकास की विशेषतायें
15.12 संगठनात्मक विकास की मान्यतायें अथवा मूल्य
15.13 संगठनात्मक विकास विचार के विविध मत (सम्प्रदाय)
15.14 संगठनात्मक विकास के उद्देश्य
15.15 संगठनात्मक विकास प्रक्रिया
15.16 संगठनात्मक विकास एवं प्रबंध विकास
15.17 परिवर्तन प्रबंध एवं संगठनात्मक विकास की पूर्व आवश्यकतायें
15.18 सारांश
15.19 शब्दावली
15.20 बोध प्रश्न
15.21 बोध प्रश्नों के उत्तर

15.22 स्वपरख प्रश्न
15.23 सन्दर्भ पुस्तकें

## उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- परिवर्तन एवं संगठनात्मक विकास की संकल्पना को कर्मचारी एवं संगठन दोनों के दृष्टिकोण से समझ सकें।
- परिवर्तन प्रबंध के क्या, क्यो, एवं कैसे का वर्णन कर सकें।
- परिवर्तन एवं विकास के प्रभाव का विश्लेषण कर सकें।
- सांगठनकि विकास एवं प्रबंध विकास के मध्य अंतर स्पष्ट कर सकें।

## 15.1 प्रस्तावना

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। व्यकित्त के समान संगठन भी परिवर्तन होंते है। व्यावसयिक पर्यावरण के परिवर्तन के साथ व्यावसायिक संगठन से संरचना एवं कार्य–संस्कृति में परिवर्तन की आवश्यकता होती है। व्यावसायिक इकाईयों की वृद्धि एवं अस्तित्व में रहने हेतु परिवर्तन आवश्यक है।

कभी–कभी संगठन में किसी भाग में अन्य परिवर्तन आवश्यक होता है। कभी–कभी व्यापक (समर्थ) परिवर्तन, कभी समग्र (सम्पूर्ण) परिवर्तन, सम्पूर्ण परिवर्तन आवश्यक होता है। यह परिवर्तन कार्य–बल के आकार, पूँजी–निवेश, उत्पादन प्रक्रिया, विपणन रणनीति इत्यादि के रूप में आवश्यक हो सकता है। उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने संगठनों में परिवर्तन की आवश्यकता को गति प्रदान की है। सतत उभरती प्रतिस्पर्धा ने नवीन चुनौतियाँ और भय सृजित किये है। और परिवर्तित वातावरण से तालमेल हेतु संगठनों में अधिक परिवर्तन आवश्यक है जो परिवर्तित होता नहीं वास्तव में नही बढ़ता है। परिवर्तन पुरानी व्यवस्था को त्यागने की इच्छा है।

## 15.2 संगठनात्मक परिवर्तनः अर्थ एवं परिभाषा

संगठनों में परिवर्तन अपरिहार्य है। नवीन युग में पुरानी व्यवस्था कार्य नहीं करते अतः नये समय की चुनौतियों एवं भय (आशंकाओं) का सामना करने हेतु संगठन को पर्याप्त सक्षम बनाने हेतु संगठन को नवीन व्यवस्था के अनुसार निश्चित (तय/परिवर्तित) करना चाहिये। परिवर्तन यथास्थिति से अलग कार्य करने की अवस्था है।

रेसिस लिकर्ट ने उचित ही कहा है कि प्रत्येक संगठन परिवर्तन की अवस्था में हैं। कभी–कभी परिवर्तन बड़े एवं कभी कभी लघु होते है। परिवर्तन की आवश्यकता संगठन के अंदर तथा बाहर से भी आती है। अधिक स्पष्ट एवं विशिष्ट रूप में कहे कि परिवर्तित समय के क्रम में व्यावसयिक धरानों के सम्पूर्ण निष्पादन एवं पादकता को उन्नत करने के क्रम में संगठन में कार्यरत व्यक्तियों की भूमिका एवं उत्तरदायित्व सम्बन्ध एवं व्यवहार में परिवर्तन आवश्यक है।

अलबेनिज के अनुसार, संगठनात्मक परिवर्तन संगठनात्मक उत्तर जीवन, वृद्धि एवं प्रभावोत्पादकता हेतु आवश्यक परिवर्तित आवश्यकताओं के प्रति विवेकपूर्ण प्रतिक्रियाशील है। एक प्रबंधशाली ने संगठनात्मक परिवर्तन को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित किया है।

"संगठनात्मक परिवर्तन संगठन की संरचना व्यवहार एवं तकनीक में परिवर्तन (बदलाव) के द्वारा व्यक्तियों, समूहों एवं संगठन के कुल निष्पादन को उन्नत करने हेतु प्रबंध का सुविचारित प्रयत्न (प्रयास) है।" संगठनात्मक परिवर्तन को पर्यावरण की शक्तियों के प्रति प्रतिक्रियाशीलता के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है।

संगठनात्मक परिवर्तन को संगठन में कार्यरत व्यक्तियों के रवैये, मूल्यों, व्यवहार में परिवर्तन के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है। संगठनात्मक परिवर्तन अग्रसक्रिय अथवा प्रतिक्रियात्मक हो सकता है। परिवर्तन अग्रसक्रिय होता है यदि परिवर्तन प्रबंध द्वारा संगठन के कुल निष्पादन को उन्नत करने के उद्देश्य से स्वयं आरम्भ किया जाता है। जब प्रबंध वाहय या अंर्तघटकों के कार्य परिवर्तन की आवश्यकता का अनुभव करते है, तब इसे प्रतिक्रिया द्वारा परिवर्तन कहा जाता है। यद्यपि परिवर्तन प्रत्येक संगठन की आवश्यकता है, लेकिन प्रायः इसे स्वागत योग्य कदम नहीं माना जाता।

## 15.3 संगठनात्मक परिवर्तन की विशेषतायें

व्यवसायिक संगठन समस्त वातावरणीय परिवर्तनों को उजागर करते है। यदि संगठन के बाहर परिवतर्न होते है तो संगठन के भीतर भी परिवर्तन होना चाहिये। परिवर्तन पूर्णतः या अंशतः हो सकते हैं, किन्तु परिर्वन अपरिहार्य है। परिवर्तन की मूलभूत चारित्रिक विशेषतायें निम्नलिखित है :

1. परिवर्तन निमित्त व्यवहार है।
2. परिवर्तन नियोजित एवं अनियोजित हो सकता है।
3. परिवर्तन पूर्णतः (हितकारी) अथवा अंशतः हो सकता है।
4. परिवर्तन एक सतत अथवा न समाप्त होने वाली प्रक्रिया है।
5. परिवर्तन अधिशिक्षक प्रक्रिया है।
6. परिवर्तन वाहय, आंतरिक या दोनों हो सकते है।
7. परिवर्तन प्रायः प्रतिरोध का सामना करते है।
8. कतिपय परिवर्तन एजेण्ट (प्रतिनिधि) परिवर्तन लाते है।
9. परिवर्तन आपकों व्यावसायिक जगत में नेता सिद्ध कर सकते है।
10. परिवर्तन का प्रबन्ध व्यवसाय में सफलता की कुंजी है।
11. परिवर्तन प्राकृतिक प्रक्रिया है। अतः अपरिहार्य है। कोई भी परिवर्तन से दूर नहीं रह सकता। वे जो परिवर्तित नहीं होते सदैव परिवर्तित होने के खतरे को दर्शाते है।

## 15.4 परिवर्तन को प्रभावित करने वाले घटक

दो घटक अंतः एवं बाहय संगठन में परिवर्तन को अनिवार्य बनाते है।

**15.4.1 बाह्य घटक**—बाहय घटक संगठन को विवश करते है, कि वह संगठन की संरचना कार्य संस्कृति, प्रणाली या कार्य पद्धति में परिवर्तन करे। प्रमुख वाहय घटक निम्नांकित है।

(1) सामाजिक घटक
(2) आर्थिक घटक
(3) राजनैतिक घटक
(4) तकनीकी घटक

(5) प्राकृतिक घटक
(6) वैश्विक घटक

**15.4.2 अंतः घटक (आंतरिक घटक)**—ये घटक स्वयं संगठन से सम्बन्धित होते है तथा निम्नलिखित में से सबसे या किसी एक घटक से सम्बन्धित होते है।

(a) परिर्वतन अधिशिक्षक प्रक्रिया है;
(b) परिर्वतन बाहय् आंतरिक या दोनो हो सकता है;
(c) परिर्वतन का प्रायः प्रतिरोध होता है;
(d) कतिपय परिर्वतन एजेण्ट (प्रतिनिधि) होते है जो परिवर्तन लाते है;

## 15.5 परिवर्तन की प्रक्रिया

परिवर्तन तब होता है जब कुछ समाप्त होता है और कुछ नवीन या पृथक (विशेष) आरम्भ होता है। सफल परिवर्तन उन निर्णयों जो कठोर (दृढ़) एवं लचीले (मृदु) क्षेत्रों के आसपास के ही होते है को जोड़ते है।

तथाकथित कठोर क्षेत्र के अंतर्गत परियोजना नियोजन, साफ्टवेयर क्रियान्वयन नये कम्प्यूटर (संगठक) नेटवर्क (संजाल) को अवस्थापित (लगाना) करना सम्मिलित है।

मृदु (लचीला) क्षेत्र व्यक्तियों का क्षेत्र के अंतर्गत वे निर्णय जो कर्मचारियों को नवीन प्रविधि तकनीकी (प्रौद्योगिकी) तथा कार्य–पद्धति को अंगीकार (अपनाने) करने में सहायता करने हेतु अभिकथित किये गये हो सम्मिलित है। परिवर्तन प्रबंध का सैद्धांतिक प्रतिदर्श त्वरित परिवर्तन की सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने का आरम्भ बिंदु है। हालांकि वर्तमान दशाओं के फलस्वरूप ये प्रबंध प्रतिमान आरंभिक परिवर्तनों के सफल क्रियान्वयन हेतु विचारित नहीं किये जा रहे है।

वर्तमान परिवर्तन प्रतिमान प्रत्येक संगठन के वर्णन (विशिष्ट वर्णन) हेतु विचारित (संज्ञान में लिये जा रहे) किये जा रहे। कुर्ट लेविन ने एक त्रि–स्तरीय (तीन चरण की) परिवर्तन सिद्धांत प्रस्तावित किया है, जिसे सामान्यतः नियंत्रण हटाना (अनफ्रीज) परिवर्तन (संक्रमण/अवस्थातर) सख्त हो जाना (फ्रीज) से जाना जाता है।

नियंत्रण हटना (अनफ्रीज) परिवर्तन (संक्रमण) (अवस्थातर) सख्त हो जाना (फ्रीज)

## 15.6 (असुरक्षा) परिवर्तन का प्रतिरोध

असुरक्षा की भावना परिवर्तन के प्रतिरोध का एक घटक है, क्योंकि व्यक्ति परिवर्तित वातावरण में असुरक्षा का अनुभव करते है।

**15.6.1 आर्थिक घटक**—परिवर्तन व्यक्तियों की वित्तीय हानि (प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में) का कारण हो सकता है जिसके लिये वे तैयार नहीं होते।

**संगठनात्मक प्रतिरोध**—व्यक्तियों की भांति संगठन भी परिवर्तन का प्रतिरोध निम्नलिखित कारणों से करते है।

**वित्तीय घटक**:—परिवर्तन की लागत बहुत अधिक हो सकती है। (क्योंकि इसमें वित्तीय कार्यान्वयन सम्मिलित होते है) अतः संगठन परिवर्तन नहीं लागू करते।

**कर्मचारियों के विरोध का भय**—संगठन कभी कभी परिवर्तनों को नहीं लाते (करते) क्योंकि वे कर्मचारियों की ओर से विरोध की आशंका रखे है। वे समूह निष्क्रियता (जड़ता) से डरते है।

**पूर्वज्ञात भय (आशंका)**—संगठन परिवर्तन करने (लाने) की स्थिति में सत्ता सम्बन्ध स्थापना संसाधन आवंटन एवं प्रभुतव में आशंका रखते है।

## 15.7 परिवर्तन के प्रतिरोधक को कैसे समाप्त करें?

परिवर्तन का प्रतिरोध प्राकृतिक है किंतु परिवर्तन आवश्यक है इसलिये परिवर्तन के प्रतिरोध दूर करने के ढंग एवं साधन अवश्य ही अपनाये जाने चाहिये, इस हेतु कुछ उपाय निम्नलिखित है।

### 15.7.1 उचित संदेश वाहन—

परिवर्तन से प्रभावित होने वाले समस्त लोग यह जानकर राहत का अनुभव करेंगे कि परिवर्तन क्यों किया जा रहा है। उचित संदेशवाहन से उन्हे अवश्य ही विश्वास में लिया जाना चाहिये।

### 15.7.2 सहभागिता एवं सम्मिलितिकरण.—

परिवर्तन व्यक्तियों के ऊपर थोपा नहीं जाना चाहिये वरन यह समस्त सम्बन्धित पक्षों के भीतर सहभागिता एवं सम्मिलितीकरण के द्वारा लाया जाना चाहिये। यदि यह व्यापक रूप से व्यक्तियों की स्वीकृति एवं भागिता रखता है। तो परिवर्तन का नियोजन एवं क्रियान्वयन सुगम हो जाता है।

### 15.7.3 सौदेबाजी एवं शिक्षा—

परिवर्तन कार्यक्रमों को इसके लाभ (सर्वोत्तम उपयोग) वर्णित करते हुय समस्त सम्बन्धित पक्षों को संसूचित किया जाना चाहिये। यदि कोई सौदेबाजी (यदि आवश्यक हो) ही उसे उपाय में लाना चाहिये। यदि आवश्यक हो संभावित विरोधियों से उनकी लिखित सहमति ले लेनी चाहिये जिससे किसी अप्रिय स्थिति से बचा जा सके।

### 15.7.4 परिवर्तन तभी जब यह आवश्यक हो —

परिवर्तन केवल परिवर्तन हेतु नहीं करना चाहिये। परिवर्तन की वित्तीय रूप से एवं अन्य लागत बहुत अधिक हो सकती है। अतः परितवर्तन अंतिम विकल्प होना चाहिये।

### 15.7.5 परिवर्तन क्रमिक होना चाहिये—

परिवर्तन का अर्थ सम्पूर्ण परिवर्तन अथवा आकस्मिक परिवर्तन नहीं होता वरन यह धीरे एवं क्रमिक होना चाहिये। क्रमिक परिवर्तन पचाने एवं स्वीकार करने में सरल होता है। परिवर्तन यह भाव देने वाला नहीं होना चाहिये कि मेरा कार्य पूर्णतः परिवर्तित हो गया है।

### 15.7.6 सुनिश्चित (कुशल/चतुर) संचालन—

प्रबंध को प्रतिरोध को सुनियोजित एवं चतुराई पूर्वक संचालित (संभावना) चाहिये। जब व्यक्ति विरोध/प्रतिरोध करते है तो प्रबंध जोड़ तोड़ नीति अपना सकता है।

### 15.7.7 प्रत्यक्ष (मुखर) एवं परोक्ष अवपीड़न यदि आवश्यक हो —

यदि कोई अन्य सूत्र कार्य न कर रहा हो (प्रभावी न हो पा रहा हो) तो प्रत्यक्ष एवं परोक्ष अवपीड़न लागू (अपनाना) किया जाना चाहिये। स्थानांतरण, पदोन्नति, निलम्बन, निष्कासन, बर्खास्त (पदच्युत) करना यदि व्यक्तियों को परिवर्तन स्वीकार करने को राजी (तैयार) कर सकते है।

## 15.8 परिवर्तन का प्रकार

नियोजन, संगठन, क्रियान्वय एवं अनुश्रवण ये चार प्रमुख प्रबंध चर है। परिवर्तन के उचित प्रबंधन हेतु निम्नलिखित चरण आवश्यक है।

### 15.8.1 परिवर्तन योजना की संकल्पना बनाना—

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, कि महज परिवर्तन के लिये परिवर्तन नहीं होना चाहिये। परिवर्तन पर्याप्त विचार पर आधारित होना चाहिये। परिवर्तन के नियोजन के पूर्व परिवर्तन की संकल्पना का निर्माण होना आवश्यक है। S.W.O.T. (शक्ति, कमजोरी, अवसर, भय) विश्लेषण अवश्य ही सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिये।

लागत लाभ विश्लेषण के द्वारा परिवर्तन आरोपण (क्रियान्वयन) के नफे–नुकसान (लाभ–हानि) का मूल्यांकन एवं गणना की जानी चाहिये।

### 15.8.2 परिवर्तन हेतु योजना निर्माण—

यदि परिवर्तन आवश्यक है तब परिवर्तन हेतु उचित योजना–निर्माण किया जाना चाहिये। यह तैयारी (योजना–निर्माण) आवश्यकता, संसाधन, समय, श्रम–शक्ति, व्यक्तियों की गुणवत्ता, संसाधन–वितरण आदि पर आधारित होना चाहिये। योजना समय–रेखीय होनी चाहिये।

### 15.8.3 योजना का क्रियान्वयन—

निर्मित योजना का उचित क्रियान्वयन किया जाना चाहिये। परिवर्तन की सफलता परिवर्तन की योजना के क्रियान्वयन पर निर्भर करती है। कौन परिवर्तन कार्यान्वित करेगा? किस प्रकार (कैसे) परिवर्तन क्रियान्वित होगा? परिवर्तन की प्रक्रिया क्या होगी? इन प्रश्नों का उचित रीति से समाधान किया जाना आवश्यक होता है। यह परिवर्तन की योजना के प्रभावकारी क्रियान्वयन को सुनिश्चित करता है।

### 15.8.4 अनुश्रवण—

अनुश्रवण अथवा नियंत्रण प्रभावी प्रबंध के सफलता की कुंजी है। परिवर्तन को सावधानीपूर्वक अनुश्रवित किया जाना चाहिये। संगठन के विभिन्न चरों पर परिवर्तन के प्रभाव का उचित एवं समयानुसार पुनरीक्षण किया जाना चाहिये। विसंगतियों एवं विचलनों को यत्नपूर्व निकाल (दूर करना) के बाहर करना चाहिये।

### 15.8.5 परिवर्तन प्रतिरोध को दूर करने का प्रयत्न—

परिर्वतन के वास्तविक प्रबंध से अभिप्राय परिवर्तन को सफलतापूर्वक एंव प्रभावी ढंग से प्रबंधित करना। कोई भी व्यक्ति परिवर्तन से अप्रसन्न नहीं होना चाहिये। परिवर्तन के प्रतिरोध को समाप्त करने हेतु समस्त संभव कदम उठाने चाहिये। यदि प्रतिरोध को समाप्त कर दिया जायेगा तो व्यक्ति परिवर्तन को प्रसन्नतापूर्वक, इच्छापूर्वक तथा स्वागत मुद्दा में स्वीकार करेंगे। उचित प्रयत्न एवं सावधानी से परिवर्तन संगठन में कार्यरत व्यक्तियों को स्वीकार हो सकता है, क्योंकि उन्हें समझाया/बताया गया होता है कि परिवर्तन व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों ढंग से, रूप में उनके लिये लाभप्रद (लाभ दायक) होगा।

## 15.9 संगठनात्मक विकास की संकल्पना एवं निहितार्थ

### 15.9.1 संगठनात्मक विकास की संकल्पना (सिद्धांत)—

विकास एक व्यापक वर्णक्रम (स्पेक्टम) अवधारणा है, जो उन समस्त चीजों का विकास, जो संगठनात्मक विकास सुनिश्चित करते है, सुनिश्चित करता हैं समस्त प्रबंधकीय व्यवहार का विकास–केन्द्रित होना आवश्यक हैं संगठनात्मक विकास के सिद्धांत का अभ्युदय साठ के दशक में हुआ था तथा वर्तमान में यह अच्छी तरह से अभिस्वीकृति सिद्धांत है।

**15.9.2 संगठनात्मक विकास का निहितार्थ** (इस प्रकार अध्ययनित हो सकता है).

**संगठनात्मक विकास का निहितार्थ कर्मचारी के दृष्टिकोण से**

(1) प्रशिक्षण एवं विकास के माध्यम से व्यक्तिगत वृद्धि अगले उच्च पदों पर पदोन्नति को अग्रगामी होता है।

(2) वर्द्धित उत्पादकता एवं वेतन बढ़ोत्तरी

**संगठनात्मक विकास का निहितार्थः संगठन के दृष्टिकोण से**

(1) अधिगम (ज्ञान) संगठन संस्कृति की सूचना

(2) सहयोगी वातारण की रचना;

(3) कर्मचारी अनुबंध (वाग्दान) वचनबद्धता, एवं सहभागिता के उच्च अंश (मात्रा) का उत्पादन;

(4) प्रबंध के मानवीय चेहरे को प्रोत्साहन

(5) ह्रदय से प्रबंधन

(6) परिवेदना निवारण तथा समस्या सामाधान प्रशासन एवं रचना तंत्र की स्थापना;

(7) कार्य–जीवन एवं संगठनात्मक प्रभावोत्पादकता के उच्च गुणवत्ता को प्राप्त करना।

## 15.10 संगठनात्मक विकास : अर्थ एवं परिभाषा

संगठनात्मक विकास प्रभावोत्पादकता की प्रगति (स्तर) को श्रेष्ठतर करने हेतु परिवर्तन की एक नियोजित प्रक्रिया है। संगठनात्मक विकास व्यवहारिक विज्ञान तकनीकों के प्रयोग का अंतिम परिणाम है।

वरेन ब्लेनिस के अनुसार, संगठनात्मक विकास को परिभाषित किया जा सकता है, परिर्वतन के प्रतिक्रियाशीलता के रूप में, मान्यताओं को परिवर्तित करने के निमित्त जटिल शैक्षणिक रणनीति के रूप में, संगठन के रवैये, मूल्य एवं संरचना के रूप में जिससे कि वे नवीन तकनीकों, बाजारों को श्रेष्ठतर तरीके से स्वीकार (अंगीकार) कर सके तथा घूमती परिवर्तन दर को भी स्वीकार कर सकते है।

संगठनात्मक विकास संगठनात्मक प्रभावोत्पादकता को समुचित करने हेतु संगठनात्मक रणनीतियों, संरचना एवं प्रक्रियाओं के नियोजित विकास एवं मजबूती प्रदान करने हेतु व्यवहारिक विज्ञान ज्ञान का व्यापक प्रणालीकृत अनुप्रयोग है। संगठनात्मक विकास प्रबंध द्वारा अपनायी जाने वाली दीर्घावधि एवं दूरचालित दर्शन है।

वर्क के संगठनात्मक विकास को, व्यवहारिक विज्ञान, तकनीक शोध एवं सिद्धांत के प्रयोग द्वारा संगठन की संस्कृति के परिवर्तन की नियोजित प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया है। तकनीकी रूप से यह संगठन के मानवीय संसाधन एवं परिवर्तन के प्रबंध से सम्बन्धित है। संगठनात्मक विकास मूल्य आधारित प्रणालीकृत, सहयोगी प्रक्रिया है, जो व्यवहारिक विज्ञान ज्ञान पर आधारित है तथा संस्कृति से सम्बन्धित है। यह संगठनात्मक प्रभावोत्पादकता से सम्बन्धित है।

डेल.एस. बीच के मतानुसार, संगठनात्मक विकास प्रयुक्त व्यवहारिक विज्ञान के ज्ञान एवं तकनीक के प्रयोग से व्यक्ति एवं समूह व्यवहार, संस्कृति एवं संगठन के प्रणाली के संशोधन द्वारा संगठन की प्रभावोत्परान्त एवं स्वास्थ्य को उन्नत बनाने को अभिकथित नियोजित प्रक्रिया है।"

सारांश रूप में, संगठनात्मक विकास संगठन की क्षमता एवं योग्यता को विकसित करने की सचेतन (उद्देश्यपरक) एवं नियोजित प्रक्रिया है जिससे संगठन समय की मांग के अनुसार, आवश्यकताओं का सामना कर सके तथा यह एक अनुकूलतम, यदि अधिकतम न हो पाये, निष्पादन स्तर प्राप्त कर सके।

## 15.11 संगठनात्मक विकास की विशेषतायें

संगठनात्मक विकास की विशेषतायें निम्नलिखित है :

1. संगठनात्मक विकास एक नियोजित एवं सचेतन प्रयत्न है।
2. संगठनात्मक विकास एक प्रक्रिया है जिसमें कई कार्य एवं गतिविधियां सम्मिलित होती है।
3. संगठनात्मक विकास का उद्देश्य संगठनात्मक प्रभावीत्पादकता को उन्नत करना है।
4. संगठनात्मक विकास एक प्रणालीकृत (प्रणाली उन्मुख) एवं परिणाम केंद्रित संकल्पना है। संगठनात्मक विकास एक गत्यात्मक एवं अंर्तक्रिया सम्बन्धी (संवादात्मक) प्रक्रिया है।
5. संगठनात्मक विकास मानवीय मूल्यों, नीतिशास्त्र वं शासन (शासन प्रणाली) की शुद्धता में विश्वास करती है।
6. संगठनात्मक विकास संगठन में कार्यरत व्यक्तियों को बढ़ाती है।
7. संगठनात्मक विकास अति–गत्यामक एवं संवादमूलक प्रक्रिया है।
8. संगठनात्मक विकास मानव व्यवहार के मानक (आदर्श) पर आधारित है।
9. संगठनात्मक विकास ज्ञान का निकाय (सिद्धांत एवं व्यवहार दोनों) है।
10. संगठनात्मक विकास परिवर्तन वाहकों (प्रतिनिधि) तथा परिवर्तित हाने वाले व्यक्तियों के मध्य के घनिष्ठ (निकट के) सम्बन्ध पर आधारित है।
11. संगठनात्मक विकास व्यवहार विज्ञान पर आधारित है।
12. संगठनात्मक विकास मानव (व्यक्तियों को) को संगठन में कार्य के उपयुक्त बनाने का यत्न करते है।
13. संगठनात्मक विकास प्रबन्ध के मानवीय चेहरे को परावर्तित करता है।
14. संगठनात्मक विकास विचारण, नियोजन एवं कार्यवाही (कार्य) पर आधारित होता है।
15. संगठनात्मक विकास किसी संगठन की स्थिर (स्थायी) वृद्धि को आगे बढ़ाने, विस्तार देने अथवा प्रोत्साहित करने का अंतिम परिणाम है।

    संगठनात्मक विकास पारस्परिकता पर आधारित है। यथाः अंर्तवैक्तिक सम्प्रेषण, स्वजागरूकता एवं स्व–स्वीकृति, ज्ञान एवं श्रमिकों की योग्यता।

संगठनात्मक विकास के सामन्य चर समस्त सम्बन्धित (संदर्भित) रणनीतियाँ, संरचना, प्रक्रियायें, व्यक्ति एवं समस्या समाधान क्षमतायें है। संगठनात्मक विकास OCTAPACE (ओ.सी.टी.ए.पी.ए.सी.ई.) पर आधारित है, जिसका अर्थ खुलापन, मिलान (सामना) विश्वास (न्यास), प्रामाणिकता, पूर्व–सक्रियता, स्वायत्त्ता, तथा परिवर्तन हेतु सहकार्य है। संगठनात्मक विकास

संगठन को एक प्रणाली की भांति देखता (मानता/व्यवहार देता, उपचारित) है। प्रणाली तार्किक रीति से सम्बन्धित भागों मान्यताओं, मूल्यों एवं सिद्धांतों का क्रमिक रूप से व्यवस्थित समूह होता है। संगठनात्मक विकास संगठन की अंर्तदृष्टि, सशक्तिकरण, ज्ञान, समस्या समाधान प्रक्रिया को उन्नत बनाने हेतु उच्च स्तर प्रबंधन द्वारा समर्थित एवं नीति एक दीर्धकालिक प्रयत्न है।

## 15.12 संगठनात्मक विकास की मान्यतायें अथवा मूल्य

संगठनात्मक विकास की संकल्पना निम्नलिखित मूल्य समुच्चयों अथवा मान्यताओं पर आधारित है।

1. मानव मानवीय (दयालु/कृपालु) होता है। अतः मूलतः उचित प्रतिक्रियाशील एवं सहयोगी होता है।
2. समस्त मानव एक मानव के रूप में पहचाने जाना चाहते है, वे अपने मानव होने की निश्चित स्वीकृति एवं इस तथ्य हेतु सहयोग चाहते है।
3. व्यक्ति व्यक्ति होते है, अतः वे वृद्धि (विकास) करते है, क्योंकि वे नये ढंग सीखने में सक्षम होते है तथा परिवर्तित परिस्थितियों में समायोजन कर सकते है।
4. सामान्यतः व्यक्ति लोचशील एवं खुले हेते है। अतः वे समायोजन कर सकते है एवं व्यवस्थित हो सकते है।
5. प्रत्येक व्यक्ति एक भिन्न (पृथक/विशेष) व्यक्ति होता है, तथा अपना स्वयं का व्यक्तित्व धारण करता है।
6. प्रत्येक व्यक्ति समझता है एवं समझा जाना चाहता है।
7. प्रत्येक व्यक्ति वचन बद्धता एवं सहभागिता की भावना रखता है।

## 15.13 संगठनात्मक विकास विचार के विविध मत

परिवर्तन प्रबंध का सिद्धांत एवं व्यवहार विभिन्न (कई) सामाजिक विज्ञान विषय एवं परंपराओं विचार सम्प्रदाय (मत) में वर्णित (रेखांकित) है। ये मत निम्नलिखित है।

1. व्यक्तिगत दृष्टिकोण;
2. समूह गत्यात्मकता मत;
3. मुक्त प्रणाली मत

**1. व्यक्तिगत दृष्टिकोण**—इस मत सम्प्रदाय के अनुसार संगठनात्मक विकास व्यवहार व्यक्तियों के उनके वातावरण से अंर्तक्रिया का परिणाम है। इस मत–सम्प्रदाया के अनुसार समस्त व्यवहार सीखा गया है तथा मानव (व्यक्ति) बाहय आंकडों का निष्क्रिय प्राप्तकर्ता है। यह सम्प्रदाय (मत) यह भी विश्वास करता है कि व्यक्ति का व्यवहार वातावरण एवं प्रतिक्रिया का उत्पाद है, अपने समझ को परिवर्तित करे तथा परिस्थितियाँ व्यवहार परिवर्तन को संकेत (ओर बढ़ायेगी) करेगी।

**2. समूह–गत्यात्मकता सम्प्रदाय (मत)**—संगठनात्मक विकास के इस सम्प्रदाय में संगठनात्मक परिवर्तन समूह/दर समूह के कारण जन्मता है, न कि व्यक्तियों के कारण इस विचार सम्प्रदाय के अनुसार प्रचलित व्यवहारों एवं मानकों के अनुसार व्यवहार परिवर्तन करना चाहिये तथा यह भी विचारण करना चाहिये कि समूह द्वारा कौन से मूल्य आदर्श (मानक) तथा भूमिका का निर्वहन (धारण) किया जा रहा है।

**3. मुक्त–प्रणाली मत**—संगठनात्मक विकास के इस सम्प्रदाय में संगठनों का निर्माण अंर्त सम्बन्धित उप–प्रणालियों से हुआ है। यह मत यह भी विश्वास रखता है कि प्रणाली के एक भाग में परिवर्तन प्रणाली के अन्य भाग में परिवर्तन कर सकता है। तथा यह सम्पूर्ण निष्पादन एवं सहक्रियता प्राप्त के बारे में हैं इस विचार मत में सम्पूर्ण व्यावसायिक उद्देश्यों को सामूहिक रूप से पाने का प्रयत्न किया जाय तथा संगठन को इसकी पूण्रता में समझा जाना चाहिये।

## 15.14 संगठनात्मक विकास के उद्देश्य

संगठनात्मक विकास के उद्देश्य निम्नलिखित है :

1. श्रेष्ठतर कर्मचारी–नियोक्ता सम्बन्ध के द्वारा औद्योगिक शांति को प्रोत्साहन;
2. अभिप्रेरण एवं प्रेरणा (प्रोत्साहन) द्वारा कर्मचारियों के मनोबल का वर्द्धन करना;
3. विश्वास केंद्रित कार्य–संस्कृति का निर्माणद्ध;
4. संगठन को अधिक मुक्त व पारदर्शी बनाना जिससे संदेशवाहन, उर्ध्वाधर एवं क्षैतिज दोनो दिशाओं का, सुगम एवं प्रभावी हो सके;
5. व्यक्तियों को सशक्त करना तथा उन्हें अधिक प्रतिक्रियाशील बनाना;
6. परस्परता की भावना को प्रोत्साहित करना, समूह (दल) के रूप में कार्य करना तथा संगठन की दक्षता को उन्नत करना।
7. व्यावहारिक विज्ञान, तकनीकों एवं व्यवहारों के प्रयोग द्वारा प्रणाली में परिवर्तन लाना।

संगठनात्मक विकास कार्यक्रम का वास्तविक उद्देश्य व्यक्ति की उत्पादकता एवं संगठन की लाभदायकता वध्रित करना इस प्रकार प्रबंधकीय प्रभावोत्पादकता प्रमाणित करना। उद्देश्य यदि प्राप्त कर लिये गये तो समस्त लाभधारियों एवं स्कंधारितयों हेतु लाभप्रद सिद्ध होंगे। यह श्रेष्ठतर निष्पाद आगणन एवं पुरस्कार आधारित दर्शन की मांग करता है।

संगठनात्मक विकास निम्नलिखित बातों का ध्यान रखता है :

1. व्यक्तिगत एवं सामूहिक विकास;
2. वास्तविक अर्थों में समूह भावना को अंतर्निविष्ट करना;
3. कर्मचारियों को सशक्त करना;
4. संगठन का रूपांतरण एवं प्रतिक्षाधात्मक लाभ प्राप्त करना;
5. उत्पाद (सामग्री) सुपुर्दगी की वर्तमान प्रणाली का मूल्यांकन करना एवं नवीन प्रणाली (यदि आवश्यकताओं) को लागू करना।

## 15.15 संगठनात्मक विकास प्रक्रिया

संगठनात्मक विकास एक अकेली गतिविधि नहीं है वरन यह कार्यों की श्रृंखला को समाहित करती है। संगठनात्मक विकास एक प्रक्रिया है। संगठन प्रणाली निम्नचरणों को समाहित करती है।

1. **संगठनात्मक विकास की आवश्यकता का अनुभव करना**—संगठनात्मक विकास की आवश्यकता की पहचान की जाती हैं यह प्रबंध के उच्चस्तर पर किया जाता है। उच्च प्रबंधकों को यह अवश्य जानना चाहिये कि क्या गलत है? और कहाँ? यह समस्त विभागों और प्रकोष्ठों में पुनरीक्षित किया जाना चाहिये।

2. **समस्या की पहचान**—एक बार जब संगठनात्मक विकास की आवश्यकता स्थापित हो जाने के पश्चात समस्या की पहचान की जाती है उचित जाँच (पहचान) समस्या के उचित निदान को अग्रसारित (संकेत) करती है।
3. **समस्या का चिन्हीकरण (पता लगाना)**—उचित जांच के द्वारा सटीक समस्य चिन्हित की जाती है। समस्या का यह चिन्हिकरण समस्या एवं समस्या मोचक के मध्य सम्बन्ध स्थापन करती है।
4. **संगठनात्मक विकास कार्यक्रम का निर्माण**—समस्या के निवारण हेतु विशेषओं एवं अनुभवी व्यक्तियों की सहायता से संगठनात्मक विकास कार्यक्रम का निर्माण किया जाता है।
5. **संगठनात्मक विकास कार्यक्रम का क्रियान्वयन**—इच्छित परिणामों की प्राप्ति के अर्थ एवं भावना से संगठनात्मक विकास कार्यक्रम कार्यान्वित किये जाते है।
6. **पुनरीक्षण एवं मूल्यांकन**—क्रियान्वयन के पश्चात् सतत आधार पर उचित अनुश्रवण, पुनरीक्षण एवं मूल्यांकन किया जाता है।

## 15.16 संगठनात्मक विकास एवं प्रबंध विकास

संगठनात्मक विकास सिद्धांततः प्रबंध विकास से भिन्न है।

प्रबंध विकास संगठन विकास का भाग है। प्रबंध विकास विभिन्न क्रियात्मक क्षेत्रों के प्रबंधनों के विकास का ध्यान रखता है जबकि संगठनात्मक विकास सम्पूर्ण संगठन के विकास एवं प्रबंधकीय प्रभावोत्पादकता को उन्नत करने का प्रयत्न करता है।

इस प्रकार जे.बी. मिनिटर ने इस अंतर को उचित प्रकार से स्पष्ट किया है। उनके अनुसार, संगठनात्मक विकास मानवों के लिये संगठन को समुचित बनाता (उपयोज्य) हैं, वहीं प्रबंध विकास व्यक्तियों को संगठन के वर्तमान उद्देश्य एवं संरचना केसंदर्भ मेंउपयोज्य बनाने का प्रयास करता है। प्रबंध विकास बहतर निष्पाद हेतु प्रबंधकों के प्रशिक्षण एवं पुर्नविकास पर ध्यान केंद्रित करता है। जबकि संगठनात्मक विकास संगठन की प्रभावोत्पादकता को उन्नत करने पर केंद्रित होता है। चूंकि प्रबंध विकास एक लघु–कार्यक्षेत्र (सीमा) का प्रयास है। अतः यह अल्प–कालिक नियोजन एवं कार्यक्रम रखता है, जब कि संगठनात्मक विकास एक दीर्घकाल तक चलने वाली दीर्घावधि उद्देश्य की प्रक्रिया है।

प्रबंध विकास की प्रक्रिया वर्तमान आंतरिक प्रबंध द्वारा क्रियान्वित किया जा सकता है। जबकि संगठनात्मक विकास प्रक्रिया के क्रियान्वयन हेतु वाह्य परिवर्तन प्रतिनिधियों की आवश्यकता होती है। प्रबंध विकास तकनीकी दक्षता से सम्बन्धित है जबकि संगठनात्मक विकास व्यवहारिक विज्ञान, समस्या समाधान दक्षता के साथ, से सम्बन्धित है। प्रबंध विकास मानव–संसाधन विकास का एक अस्त्र है, जबकि संगठनात्मक विकास का उद्देश्य मानवीय एवं गैर–मानवीय संसाधन, दोनों का, विकास करना है।

## 15.17 परिवर्तन प्रबंध एवं संगठनात्मक विकास की पूर्व आवश्यकतायें

संगठनात्मक विकास संगठनात्मक परिवर्तन का एक विशेष उपागम है जिसमें कर्मचारी आवश्यक परिवर्तन का निर्णय एवं क्रियान्वयन स्वयं करते है।

सफल परिवर्तन प्रबंध एवं संगठनात्मक विकास की कतिपय पूर्व आवश्यकतायें निम्नलिखित है।

1. अत्यावश्यकता की भावना का फैलाव व्यक्तियों को यह अनुभव कराये कि परिवर्तन एवं विकास अत्यावश्यक है।
2. यह समस्त सम्बन्धित पक्षों की वचन बद्धता एवं भागीदारी पर आधारित होना चाहिये।
3. प्रयोजित कार्य को करने हेतु दक्ष दल तथा प्रभावी समूह नेता होने चाहिये।
4. संगठन को मुक्त एवं पारदर्शी बनाने हेतु समत संवाद एवं सम्प्रेषण होना चाहिये।
5. साक्षा दृष्टिकोण आवश्यक है। परिवर्तन एवं विकास का इनाम (पारितोषिक) सबके द्वारा साक्षा किया जाना चाहिये।
6. गतिविधियों (कार्यो का) का सतत अनुश्रवण संगठन के लक्ष्य एवंपक्ष में विचलन मुक्तता को सुनिश्चित करने हेतु आवश्यक है, तथा यह अवश्य किया जाना चाहिये।

मस्तिष्क का अनुकूलन, सतत प्रशिक्षण, नियमित प्रयास संगठन की नियमित विशेषता होने चाहिये।

## 15.18 सारांश

संगठनात्मक परिवर्तन तथा संगठनात्मक विकास प्रबंधकीय प्रभावोत्पादकता के सर्वप्रमुख चर है। संगठन में परिवर्तन उस दशा में आवश्यक हो जाता है जबकि बाह्य जगत (संगठन/व्यवसाय से सम्बन्धित) में परिवर्तन हुये हो। यह परिवर्तन व्यक्तियों के व्यवहार एवं प्रयुक्त तकनीकी, दोनों, में आवश्यक होता है। अपने संवहनीय हेतु (टिकाऊ रहने) संगठन को परिवर्तित होने की आवश्यकता होती है।

व्यक्ति प्रायः (सामान्यतया) परिवर्तन शासनतंत्र (परिवर्तन कार्य–योजना तंत्र) का प्रतिरोध करते है, किंतु चीजें अच्छी तरह से (उचित रीति) निर्धारित (तय) की जा सकती है। संगठनात्मक विकास परिवर्तन प्रबंध का अंतिम परिणाम है। संगठनात्मक विकास व्यवहार विज्ञान तकनीक, शोध एवं अवक्षेपण के प्रयोग से संगठन की संस्कृति में परिवर्तन की नियोजित प्रक्रिया है। संगठनात्मक विकास मूल्य आधारित प्रणालीकृत सहकार्य (सहकारित) प्रक्रिया है। यह मुख्यतः संगठनात्मक प्रभावोत्पादकता से सम्बन्धित है। सफलतापूर्वक आगे बढ़ने हेतु संगठनात्मक विकास अवश्य ही संगठन के व्यक्तियों के विकास के परिणाम मूलक होना चाहिये।

## 15.19 शब्दावली

**परिवर्तन.**—वह कार्य या प्रक्रिया जिससे कोई विशेष (पृथक) हो जाता है।

**संगठनात्मक परिवर्तन.**—संगठनात्मक परिवर्तन प्रबंध संरचना एवं व्यावसायिक प्रक्रियाअें के पुनरीक्षण एवं परिवर्तित (संशोधित) से सम्बन्धित है।

**विकास.**—विशिष्ट उद्देश्यों अथवा आवश्यकताओं की पूर्ति (प्राप्ति) हेतु वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान का सुव्यवस्थित (प्रणालीकृत) प्रयोग।

## 15.20 बोध प्रश्न

**रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये—**

1. संगठन में कार्यरत व्यक्तियों के रूरब, मूल्यों एवं व्यवहार में परिवर्तन को .. ............. के रूप में जाना जाता है.
2. .........................घटक संगठन को कार्य–पद्धति, प्रणाली संरचना, कार्य, संस्कृति में परिवर्तन को बाध्य करते है।
3. .......................व्यक्ति को संगठन में प्रचलित उद्देश्यों एवं संरचना के अनुरूप व्यवस्थित करने का प्रयास करता है।

## 15.21 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. बाह्य 2. संगठनात्मक विकास 3. प्रबंध विकास

## 15.22 स्वपरख प्रश्न

1. परिवर्तन से आपका क्या आशय है?
2. व्यक्ति परिवर्तन का प्रतिरोध क्यों करते है?
3. परिवर्तन के प्रतिरोध को कैसे समाप्त किया जा सकता है?
4. परिवर्तन प्रक्रिया को परिभाषित कीजिये।
5. क्या परिवर्तन सदैव श्रेष्ठतर होता है?
6. परिवर्तन प्रबंध की संकल्पना को परिभाषित कीजिये।
7. संगठनात्मक विकास के सिद्धांत को परिभाषित कीजिये।
8. कर्मचारियों के दृष्टिकोण को संगठनात्मक विकास के निहितार्थ को बताइये।
9. संगठनात्मक विकास की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
10. संगठनात्मक विकास का प्राथमिक उद्देश्य क्या है?
11. संगठनात्मक विकास प्रक्रिया का वर्णन कीजिये।
12. संगठनात्मक विकास एवं प्रबंध विकास के मध्य क्या सम्बन्ध है?
13. संगठनात्मक विकास की मान्यताओं अथवा मूल्यों का वर्णन कीजिये।
14. परिवर्तन के प्रकारों की व्याख्या कीजिये।
15. परिवर्तन प्रबंध के चरणों का वर्णन कीजिये।

## 15.23 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Essentials of Management: Josheph L. Massue, Prentiee Hall of India Put
2. Management Harold koonts and cyril Q Donnell *Me Graw* Hall
3. Management : Theory and practice of Management E most Dale, *Me Graw* Hall